घर छोड़ने, मौन धारण करने और देशवृत्ति-महावृत्ति का भेष धारण कर लेने मात्र से कल्याण नहीं, कल्याण का कारण तो अन्तरंग की निर्मलता से है ।

अंक : 28

भगवान महावीर का
2589 वां जयन्ती समारोह

महावीर जयन्ती स्मारिका

1991

प्रधान सम्पादक :
ज्ञानचन्द बिल्टीवाला

प्रवन्ध सम्पादक :
महेन्द्रकुमार पाटनी

मुद्रक :
शीतल प्रिन्टर्स
फिल्म कॉलोनी, चौड़ा रास्ता,
जयपुर–302003

प्रकाशक :
रतनलाल छावड़ा
मन्त्री
राजस्थान जैन सभा, जयपुर

राजस्थान जैन सभा, जयपुर

कार्यकारिणी वर्ष-1991

श्री राजकुमार काला	अध्यक्ष
श्री ताराचन्द्र साह	उपाध्यक्ष
श्री रमेशचन्द गगवाल	उपाध्यक्ष
श्री रतनलाल छाबडा	मंत्री
श्री प्रकाशचन्द ठोलिया	संयुक्त मंत्री
श्री महेन्द्रकुमार पाटनी	संयुक्त मंत्री
श्री कैलाशचन्द शाह	कोषाध्यक्ष
श्री महावीरकुमार बिन्दायक्या	सदस्य
श्री कैलाशचन्द सौगाणी	सदस्य
डा० लल्लूलाल जैन	सदस्य
श्री प्रेमचन्द छाबडा	सदस्य
श्री अरुण काला	सदस्य
श्री भागचन्द छाबडा	सदस्य
श्री राकेशकुमार छाबडा	सदस्य
डा० सुभाष गगवाल	सदस्य
श्री सुबोधचन्द पाण्ड्या	सदस्य
श्री विजय जैन	सदस्य
श्री अरुण सोनी	सदस्य
श्री शांतिकुमार गोधा	सदस्य
श्री अरुण कोडीवाल	सदस्य
श्री कमल बाबू जैन	सदस्य

मैं दिगम्बर नग्नता से दूर, उज्ज्वल आचरण हूँ।
वस्त्र तन पर बिना पहने, आत्म रूप अनावरण हूँ।
मैं अतीन्द्रिय, वासना के वसन से हूँ, मुक्त हर दम।
लाज से जो हीन, उनकी लाज, अशरण की शरण हूँ।

कोटा
आ. विद्यानन्द
दि. 23.3.91

शुभ सन्देश

आज चारों ओर हिंसा का प्रसार हो रहा है। मानव की परीग्रह लिप्सा बढ़ रही है, पद-लिप्सा बढ़ रही है और सिद्धान्त विहीन होकर मानव अपने क्षुद्र स्वार्थपूर्ति हेतु हत्या जैसे जघन्य अपराध भी खुलकर कर रहा है। वैज्ञानिक साधनो के सहयोग से हिंसा आज अति भयानक हो गई है। बस, रेल में यात्रा करना खतरनाक हो गया है, बैंक लूटना सामान्य सी बात हो गई है, भीड़ भरे बाजार में आये दिन बम विस्फोट होते हैं।

इस हिंसा और भय का इलाज केवल अध्यात्म प्रेरित अहिंसा और अपरिग्रह के पास है। मुझे प्रसन्नता है कि राजस्थान जैन सभा तीर्थकरो का जीव मात्र के हितकारी, मानव का जीवन सार्थक करने वाले, उसे दुःख से गर्त से निकालकर अन्तर्बाह्य सुख से भर देने वाले तत्त्व-दर्शन, चिंतन को स्मारिका के रूप में प्रतिवर्ष प्रकाशित करता है। श्रुत समुद्र अथाह हैं। इस वर्ष भी उसमें अवगाहन कर स्मारिका नूतन बोध-मणि प्रकाश में लायेगी और मानव का स्थितिकरण होगा, ऐसी आशा है। राजस्थान जैन सभा के सभी कार्यकर्ताओ को मेरा मगल आशिर्वाद है कि वे भगवान महावीर के सिद्धान्तों जो जन जन तक पहुंचाएं।

विद्यानन्द

जयपुर
दिनाक 24 मार्च 1991

शुभ सन्देश

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि राजस्थान जैन सभा भगवान महावीर स्वामी की पावन जयन्ती पर एक वृहत स्मारिका का प्रकाशन कर रही हैं।

आज सर्वत्र अशांति व्याप्त है वह हिंसा झूठ चोरी, कुशील एव जमाखोरी जसी अनैतिक प्रवृत्तियो के कारणो से है। शाति के नाम पर लाखो लोगो का नरसहार हो रहा है/ मित्रता के नाम पर शोषण एव स्वार्थी भावनायें पनप रही है। नैतिकता का पतन जिस वग से हो रहा है वह कल्पनातित है। बहुमुखी पतन एव अशाति की इस विभीषिका में भगवान महावीर के अहिंसा सत्य, अपरिग्रह, अनेकान्त एव सर्वोदय सम्बन्धी सिद्धान्त निश्चित ही सन्मार्ग दिखा सकते हैं।

स्मारिका उन सिद्धान्तों का प्रचार एव प्रसार करेगी इसी भावना के साथ मैं स्मारिका की सफलता चाहता हू तथा सभा के कार्यकर्त्ताओ को साधुवाद देता हू।

आचार्य सुबाहू सागर

उपाध्याय मुनि भरत सागर
सोनागिरिजी
20-3-91

शुभ-संदेश

अत्यन्त ही प्रसन्नता का विषय है कि हर वर्ष की भांति राजस्थान जैन सभा महावीर जयन्ती के पुनीत अवसर पर स्मारिका का प्रकाशन कर रही है। विगत वर्षों में राजस्थान जैन सभा ने स्मारिकाओं के माध्यम से जिनवाणी की खूब सेवा की है तथा लेखों के माध्यम से सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों को जन सामान्य तक पहुंचाया है।

राजस्थान जैन सभा के सभी कर्मठ कार्यकर्त्ताओं को मेरा मंगल आशीर्वाद है कि वे अपनी पूरी शक्ति लगाकर जैन धर्म के सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुंचाए।

भरत सागर

* ॐ अर्हम् *

PRAVARTAK

Mahendra Muni "Kamal"

लाल भवन
जयपुर 27-3-91

शुभ-संदेश

यह अवगत कर हार्दिक सतोष एव सुख की अनुभूति हुई कि आप विश्वज्योति भगवान् महावीर की ज म जयती के अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन करने जा रहे हैं।

आज सत्साहित्य के माध्यम से भगवान् महावीर के अमर सिद्धान्तो के अधिकाधिक प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है। भगवान् महावीर के सिद्धान्तो से जुडकर ही ससार मे स्वस्थ वातावरण की स्थापना की जा सकती है।

एक बार पुन आपके प्रस्तुत पवित्र प्रयास के लिए मगल कामनाए।

प्रवर्तक महेन्द्र मुनि "कमल"
द्वारा अनिल कुमार जैन

सत्यमेव जयते

राज भवन, जयपुर

27 मार्च, 1991

सन्देश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि राजस्थान जैन सभा के तत्वावधान में 28 मार्च, 1991 को जयपुर में भगवान महावीर जयन्ती समारोह का आयोजन किया जा रहा है।

वर्तमान विषम एवं अशान्त परिस्थितियों में भगवान महावीर के अहिंसा, त्याग, संयम, अपरिग्रह, अनेकान्त तथा क्षमा जैसे श्रेष्ठ सिद्धान्तों का विशेष महत्व है और मानव-कल्याण एवं शान्ति के लिए इनका अधिकाधिक प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए।

मैं समारोह की सफलता की कामना करता हूँ।

डी० पी० चट्टोपाध्याय

मुख्य मंत्री
राजस्थान
जयपुर, 27 मार्च, 91

सन्देश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि राजस्थान जैन सभा, जयपुर की ओर से महावीर जयन्ती स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित सत्य, अहिसा और अपरिग्रह के सिद्धान्त भारतीय दर्शन के महत्वपूर्ण अग हैं और आज की परिस्थितियो मे उनकी प्रासागिकता और भी मूल्यवान है।

मुझे विश्वास है कि प्रकाश्य स्मारिका में महावीर स्वामी के जीवन और सिद्धान्तो पर उपयोगी और प्रेरक सामग्री का समावेश किया जायेगा।

मैं स्मारिका प्रकाशन की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभ-कामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

भैरोंसिंह शेखावत

प्रति वर्ष की भाँति सभा द्वारा प्रकाशित और आदरणीय स्वनामधन्य पं० चैनसुख दास जी न्यायतीर्थ द्वारा आरम्भ की गई स्मारिका का यह 28 वां अंक पाठक वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत है।

गत वर्षो की भाँति यह पाँच खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में महावीर का जीवन, सिद्धान्त और परम्परा चर्चित हुए है। प्रथम लेख में महावीर के पूर्व भवों की चर्चा है। मुक्ति की लक्ष्य सिद्धि एक जन्म का नहीं अनेक जन्मों का कार्य है। महावीर जब तक इस लक्ष्य से हटे रहे वे संसार चक्र में जन्म मरण करते ही रहे, जब इस ओर उन्मुख हुए तो कुछ जन्मों में लक्ष्य साध पाये। जैनाचार्य मानव जीवन की सार्थकता मुक्ति लक्ष्य के प्रति प्रमुखतः प्रतिबद्ध होने में मानते हैं। जब हम इसके प्रति लक्ष्यबद्ध होते है तो, जैसे 100 योजन एक दिन में चलने वाला आधा कोस तो चल ही लेता है, हमारी दैहिक–लौकिक जीवन की सभी समस्यायें स्वतः समाधान प्राप्त कर लेती है; तब हम कैसे परिग्रह सचय में अपनी शान समझेंगे, अनर्गल उपभोक्तावादी बनेंगे, धर्म-सम्प्रदाय के नाम पर लड़ेंगे/लडायेंगे, एक दूसरे से घृणा करेंगे घृणा फैलायेंगे, धर्म आचरण की वस्तु न होकर कैसे केवल वचन-विलास की वस्तु रह जायेगी, नारी हो चाहे पुरुष कौन किसका शोषण करेगा और कैसे शोषित होगा ? प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से प्रवाहमान श्रमण परम्परा किसी एक सृष्टिकर्त्ता में विश्वास नहीं करती, वरन् जन-जन को स्वय का सृष्टा और अन्य का सहयोगकर्त्ता स्वीकार करती है। मनोहारी सृष्टि कौशल साधारण कार्य नही है। तीर्थंकर महापुरुष स्वयं को परमात्मा बनाने मे सफल हो सके तो उनके विग्रह जगह जगह विराजमान कर पूजे गये हैं/जा रहे हैं और स्तुतियां गाकर कवियो ने अपना जीवन सार्थक किया है/कर रहे है।

द्वितीय खण्ड में षट्खण्डागम के सत्प्ररूपणा और द्रव्य प्रमाणानुगम सूत्र, कषाय पाहुड की गाथा रुप परमानन्द पाहुड़, तथा कुन्दकुन्द के बारस अणुवक्खा, नियमसार

ग्रौर ग्रष्ट पाहुड रूप ग्रानन्द पाहुड गद्य मे प्रस्तुत हुए हैं। ग्रा० ग्रमृतचन्द्र के लघुतत्त्व-स्फोट का चतुर्थ सर्ग हिन्दी पद्य मे सग्रहित किया गया है।

तृतीय खण्ड मे जैन मूर्ति निर्माण के विकास क्रम की चर्चा के साथ जिनके विग्रह पूज्य रहे हैं उन महापुरुषो को तप-ध्यान ग्रादि द्वारा ग्रन्तर्बाह्य मे रासायनिक परिवर्तन घटित होने की ग्रन्तर्दृष्टि थी कि उन्होने ग्रपने सब पाप कर्मो का या तो क्षय कर दिया या पुण्य रूप सक्रमित कर दिया, की भी चर्चा हुई है। लौकिक जनो ने रासायनिक परिवतन का कोई भौतिक लाभ लेने के प्रयत्न किये हो, पर हम जानते हैं उनके लाभो के साथ हानियाँ भी भयकर हुई, ग्रौर हो रही है। श्रमण साधक इस प्रक्रिया के ग्राध्यात्मिक लाभ प्राप्त कर स्वय सर्व दु ख मुक्त हो गये ग्रौर उन्होने ग्रन्यो को ग्रपने सानिध्य से ग्रभय दिया, पेड पौधो तक को नूतन उमग प्रदान की। इसी खण्ड मे 'सुदसण चरिउ' काव्य की सूक्तियाँ तथा कवि हरखचन्द के महावीर भक्ति के पद पाठक को विभोर करते है।

चतुर्थ खण्ड मे जार्ज बर्नाड शा की यह स्वीकृति महत्वपूर्ण है कि भूख, प्यास, नींद, थकान ग्रादि रूप हमारी प्राथमिक गुलामी है ग्रौर यह गुलामी ग्रन्य गुलामियों का जन्म देती है। तीर्थंकरो की श्रमण साधना इस मूल गुलामी से ही स्वय को, ग्रन्य को मुक्त करने की साधना है।

ग्राग्ल भाषा के पचम खण्ड मे स्वीकार हुग्रा है कि जैन पूजा मे त्याग की प्रेरणा है ग्रौर ग्राराध्य से एकत्व कर ग्रपने को ग्राराध्य सम बनाने का प्रयत्न है। स्पष्ट है इस महान पुरुषार्थ मे लगा जिनेन्द्र का तथा श्रुत देवता का ग्राराधक सात्विक ग्राहार ही ग्रहण करेगा, मास-मद्य ग्रादि के ग्रहण से तो उसके सब किये कराये पर, वह जानता है, पानी ही फिर जायेगा। वह तो ऐसे ग्रात्म जागरण की बात करता है जो छद्मस्थ के ग्रनुभव ग्रौर तक को गोचर नही है, ग्रौर उसे दु ख है कि उसकी सन्तानें ग्राज की शिक्षा का भारी बोझा ढोहती हुई ग्रसमय मे ही बूढी हुई जा रही है, पर जरा-मरण को जड से उखाडने वाली तीर्थंकरो की इस महान सस्कृति के सस्कारो से वचित रह रही है।

इस ग्रक के पृष्ठ पृष्ठ पर बहते ज्ञान सलिल का श्रेय तो सन्तो ग्रौर विद्वानों को है। ग्रल्प समय मे प्रकाशन का श्रेय सहयोगी सम्पादक डा० प्रेमचन्द रॉवका, श्री विनयचद पापडीवाल, श्री प्रेमचन्द हैदरी के ग्रथक श्रम को है। स्थानाभाव से हम जिन विद्वानो की रचनायें इस ग्रक मे सम्मिलित न कर सके उनसे हम क्षमा प्रार्थी है।

ग्रन्त मे, सभा के ग्रध्यक्ष, मत्री एव कार्यकारिणी के ग्रन्य सदस्यो के हम ग्राभारी हैं कि उन्होने सम्पादन के पुनीत काय का हमे ग्रवसर प्रदान किया।

बिल्टी वाला

अध्यक्षीय

आज वैज्ञानिक भौतिकवाद की होडा-होड़ चल रही है। विज्ञान ने मनुष्य से ईश्वर का काल्पनिक आधार छीन लिया है। परमाणु का अविष्कार कर विज्ञान ने मानव को असीम शक्ति प्रदान की है। वही उसने सुख और शान्ति भी छीन ली है। सभी नैतिक मूल्य चरमराकर गिर पड़े हैं। वैज्ञानिक अनुसंधानो से मानवता के लिये विनाश का खतरा उत्पन्न हो गया है। विज्ञान ने परमाणु बम का आविष्कार कर मानवता को विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। दो महा युद्ध और अभी के खाड़ी युद्ध ने विज्ञान की विभीषिका के दर्शन करा दिये हैं। विज्ञान ने दावा किया था कि वह सृष्टि के रहस्यों का उद्घाटन करके रहेगा किन्तु इस क्षेत्र में विज्ञान के दावे झूठे प्रतीत हो रहे हैं।

आधुनिक युग की विडम्बना ने मानवता के समक्ष एक विकट प्रश्न उपस्थित किया है कि आखिर रास्ता क्या है, उपाय क्या है ? चूंकि विज्ञान मानवता को सुख और शान्ति दिलाने मे असफल रहा है. इसलिये धर्म से ही आशा की जा सकती है। लेकिन इस युग मे वही धर्म दर्शन उपादेय हो सकता है जो एक ओर दृष्टिकोण में वैज्ञानिक हो और दूसरी ओर वह आध्यात्मिकता द्वारा विज्ञान की बुराइयों और दुष्परिणामो को दूर करने की क्षमता रखता है।

जैन धर्म/दर्शन की यह विशेषता है कि उदारवादी दृष्टिकोण रखता है। वह ऋषभदेवादि महान् तीर्थंकरों की साधना परम्परा है। इसमे रूढिवादिता, संकीर्णता, साम्प्रदायिकता, जातिवाद आदि मानवता को बांटने वाली दीवारो का वस्तुत: कोई स्थान नही है। यह तो जीव मात्र का कल्याण करने वाली संस्कृति है। इसके समता मूलक चिन्तन का, साधना का जन-जन मे गहरा प्रचार हो और मानव की चित्त शुद्धि हो इस हेतु दस लक्षण पर्व के पावन दिनो मे, महावीर निर्वाणोत्सव, प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और सम्राट भरत की जयन्ती आदि अवसरो पर सभा द्वारा विचार गोष्ठियों एवं अन्य कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। सभा अपने विविध कार्यक्रमों द्वारा समाज मे विभिन्न क्षेत्रो मे वैचारिकी क्रान्ति उत्पन्न करने का प्रयास करती है और समाज मे व्याप्त कुरीतियो के निराकरण हेतु समाज को अग्रसर करती है।

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। सामाजिक सम्प्रेषण का कार्य साहित्य सहज रूप से करता है। प्रत्येक काल का साहित्य उस समय का दर्पण होता है। जैन साहित्य भारतीय साहित्य

एव सास्कृतिक जीवन की महत्वपूर्ण धरोहर है। तीर्थंकरों के अमरतत्वों के अवधारक एव प्रचारक आचार्यों का लिपिबद्ध साहित्य जन जीवन को सन्मार्ग की ओर उन्मुख करता है। राजस्थान जन सभा गत 28 वर्षों से तीर्थंकरों एव आचार्यों के वाङ्मय को जन-जन तक पहुचाने की दृष्टि से प्रतिवर्ष स्मारिका का विशाल रूप मे प्रकाशन करती है, जिसका सूत्रपात स्वनाम धन्य प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् प० चनसुखदास न्यायतीर्थ की सुमेधा मे सम्पन्न हुआ। उनके प्रति हमारी हार्दिक विनयांजलि है।

स्मारिका का सम्पादन गत दस वर्षों से दार्शनिक विद्वान् प० श्री ज्ञानचन्द जी बिल्टीवाला करते आ रहे हैं। इसके विद्वतापूर्ण सम्पादन में श्री बिल्टीवाला जी की प्रखर श्रम-साधना है। मैं इनका एव सहयोगी सम्पादक श्री प्रेमचन्द रावका, श्री विनयचन्द्र पापडीवाल एव श्री प्रेमचन्द हैदरी के प्रति हार्दिक आभारी हू। मेरा आभार प्रबन्ध सम्पादक श्री महेन्द्रकुमार पाटनी एव प्रबन्ध मण्डल के सदस्यों के प्रति स्वाभाविक है, जिन्होने प्रबन्धव्यवस्था मे पूर्ण सहयोग दिया है।

सभा के मत्री श्री रतनलाल जी छाबडा के प्रति किन शब्दो मे आभार व्यक्त किया जावे। वे सभा एव समाज-सेवा के प्रति समर्पित व्यक्तित्व है। महावीर जयन्ती एव सभा के अन्य कार्यक्रमो मे सहयोगी श्री प्रकाशचन्द ठोलिया, श्री ताराचन्द शाह श्री रमेशचन्द्र गगवाल श्री कैलाशचन्द्र शाह एव कार्यकारिणी के सभी सदस्यो तथा श्री नवीन कुमार बज श्री ताराचन्द रांवका श्री बुद्धिप्रकाश भास्कर, श्री विमलचन्द गोधा, देवकुमार शाह श्री महेश काला श्री प्रेमचन्द सोगानी श्री राकेश छाबडा डा हुकमचन्द भारिल्ल प० मिलापचन्द शास्त्री श्री रमेशचन्द्र पापडीवाल, श्री सुनील डाड्या, श्री प्रवीणचन्द्र जी छाबडा एव प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से सहयोग देने वाले सभी महानुभावो का हार्दिक आभार व्यक्त करता हू।

सद्भावों सहित स्मारिका का यह 28वा पुष्प आपके हाथो मे सादर सप्रेम समर्पित करते हुये हम आनन्द की अनुभूति है।

राजकुमार काला
अध्यक्ष

आभार

राजस्थान जैन सभा द्वारा इस वर्ष भी स्मारिका के प्रवन्ध सम्पादन का कार्य मुझे सौंपा गया। मै इसके लिए राजस्थान जैन सभा के पदाधिकारियो तथा कार्यकारिणी के सदस्यों का आभारी हूँ।

स्मारिका के प्रवन्ध सम्पादक रूप में मुझे सभा की कार्यकारिणी के सभी साथियों का सहयोग प्राप्त हुआ। उन्ही के सहयोग एवं मार्ग दर्शन से स्मारिका का प्रकाशन सम्भव हो सका। सभा द्वारा प्रकाशित स्मारिका का यह 28वां अक है। भगवान महावीर की 2589 वी जयंती के पावन अवसर पर यह स्मारिका आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

इस वर्ष भी स्मारिका के प्रधान सम्पादक श्री ज्ञानचन्दजी विल्टी वाला है। गत कुछ वर्षों मे स्मारिका का सम्पादन इन्ही के निर्देशन में हो रहा है। स्मारिका का रूप उत्तरोत्तर निखरता जा रहा है। इन्हीं के सुयोग्य सम्पादन के कारण इस स्मारिका का स्थान देश में प्रकाशित होने वाली अन्य महत्वपूर्ण स्मारिकाओं में भी उच्च स्थान पर है। मैं श्री ज्ञान चन्दजी विल्टी वाला तथा इनके सहयोगी श्री डा० प्रेमचन्द जी रांवका व श्री विनय चंदजी पापड़ीवाल तथा सभी लेखक गणो का अत्यन्त आभारी हूँ।

स्मारिका प्रकाशन का कार्य बहुत ही खर्चिला हो गया है। हमारे सम्मानीय विज्ञापन दाताओं के सहयोग विना यह कार्य सम्भव नहीं है। मैं उन सभी विज्ञापन दाताओं का आभारी हूँ जिन्होने अपने व्यापारिक प्रतिष्ठानों के माध्यम से आर्थिक सहयोग प्रदान कर इस कार्य को सम्पन्न कराने मे महत्वपूर्ण योग दिया।

मैं सभा के अध्यक्ष श्री राजकुमारजी काला, उपाध्यक्ष श्री तारा चन्दजी साह, श्री रमेशजी गंगवाल, एवं मत्री श्री रतनलालजी छावड़ा का कृतज्ञ हूँ जिन्होंने स्मारिका प्रकाशन हेतु निरन्तर मार्ग दर्शन प्रदान किया तथा स्मारिका प्रकाशन, व आर्थिक सहयोग जुटाने में पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

स्मारिका के लिए विज्ञापन के रूप में आर्थिक सहयोग जुटाने में सर्व श्री देशभूषणजी सोगाणी, शान्ति कुमार जी गंगवाल, सुरेन्द्र कुमारजी सेवा वाले, कैलाश चन्द जी दूदू वाले, सुमेर कुमार जी जैन, ए. के. जैन, श्यामलालजी जैन, के. सी. छावड़ा, पुष्पेन्द्र कुमार जी काला, वी. के. जैन, प्रेमचन्दजी छावड़ा, सुधीर जैन दिल्ली, वावूलालजी सेठी, श्री विनोद

कुमार बड़जात्या, श्री ए के साह, कमल बाबू जी, सुभाषजी चौधरी, अरुणजी कोडीवाल, अजय सोगाणी, श्री अनिल जैन, श्री वी डी शर्मा, राजेशजी पापडीवाल, आर के जैन, रतनलालजी नृपत्या आदि सभी साथियो का तथा जिनके नाम का उल्लेख नही हो पाया है, उनका भी अत्यन्त आभारी हूँ।

मैं सर्व श्री जी सी जैन, श्री आर सी जैन, श्री बी एल छाबडा, श्री एन एल जैन, श्री एम के जैन का स्मारिका के लिए प्रदत्त सहयोग के लिए बहुत ही आभार मानता हूँ तथा आशा करता हूँ कि भविष्य मे भी इनका सभा को इसी प्रकार सहयोग प्राप्त होगा।

प्रबन्ध मडल के मेरे सभी साथियो का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने इस गुरुतर उत्तर दायित्व के वहन करने मे अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

श्री प्रकाश चदजी ठोलिया का मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने स्मारिका के लिए विज्ञापन तो करवाये ही अपितु इस हेतु जहा भी जाने की आवश्यकता हुई—सम्पर्क की आवश्यकता हुई बराबर मेरे साथ जुटे रहे। श्री कैलाशचद जी सोगाणी के प्रति भी मैं आभारी हूँ जिन्होने मुझे स्मारिका के लिए अपना निरन्तर सहयोग प्रदान किया।

श्री प्रेमचद जी हैदरी व श्री विनय चदजी पापडीवाल का अकथनीय सहयोग ही स्मारिका को समय पर प्रकाशन योग्य बना पाया है। दोनों ही महानुभाव स्मारिका के प्रकाशन मे प्रारम्भ मे ही जुडे तथा प्रेस सम्बधी सभी कार्यों का निष्ठा पूर्वक सम्पादन किया।

शीतल प्रिन्टर्स के सचालक श्री हुकमचद जी ने अपने प्रेस के कार्यकर्त्ताओ के सहयोग से समय पर सुन्दर ढग से स्मारिका मुद्रित की इनका मैं आभारी हूँ।

स्मारिका मे यदि किसी भी प्रकार की त्रुटि हो तो कृपया उदार हृदय से क्षमा करे तथा त्रुटियों व आपके सुझावो से भी अवगत कराने का कष्ट करें।

अन्त मे मैं भविष्य मे सहयोग की कामना करते हुए स्मारिका प्रकाशन मे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जुडे सभी महानुभावो के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करता हूँ।

महेन्द्र कुमार पाटनी
D 127, पाटनी भवन
सावित्री पथ, बापू नगर, जयपुर
प्रबन्ध सम्पादक

क्षमापन पर्व समारोह 1990

राजस्थान जैन सभा के अध्यक्ष श्री राजकुमार काला स्वागत भाषण करते हुये—मंच पर माननीय मुख्य मंत्री श्री भैरोंसिंह शेखावत एवं पास में न्यायाधिपति श्री नगेन्द्र जैन

भगवान ऋषभ देव एव उनके पुत्र चक्रवर्ती सम्राट भरत के जन्मोत्सव वर्ष (1991) पर श्री ज्ञानचन्द बिल्टी वाला अपने विचार प्रकट करते हुए।

ऋषभ जयन्ती समारोह वर्ष 1991 पर आयोजित प्रभात फेरी का दृश्य

महावीर जयन्ती समारोह 1991 के अवसर पर आयोजित निबन्ध प्रतियोगिता का दृश्य

मुख्य मंत्री माननीय श्री भैरोंसिंह शेखावत समाज को सम्बोधित करते हुए

राजस्थान जैन सभा द्वारा रामलीला मैदान पर आयोजित क्षमा पर्व समारोह में मंच पर आसीन आचार्य श्री सुबाहु सागर जी महाराज, आचार्य सुधर्म सागर जी महाराज एवं मुनी श्री नमी सागर जी महाराज

प्रथम खण्ड

महावीर : जीवन, सिद्धान्त और परम्परा

जीव और अजीव का ज्ञान द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव से भले प्रकार हो सकता है।
इनकी भिन्नता व स्वतन्त्रता को समझना मोक्षमार्ग का साधन है।

महावीर स्वामी

□ रचि० देवेन्द्र कुमार पाठक 'अचल'

(1)

जिनका नाम ध्यान में आते भग जाते हैं दूर कषाय।
जिनकी विमल कीर्ति के गाते पाप वृत्ति होती असहाय।।
जिस प्रभु महावीर स्वामी के गुण सुनते भगती हिंसा।
अपनी आत्म ग्लानि ज्वाला में स्वयं झुलस जलती हिंसा।।

(2)

जिनके क्षण भर के रुकने से भूधर बनकर तीर्थ विशाल।
बाँट रहे अध्यात्म सम्पदा मुठी खोल होकर खुश हाल।।
दूषित और मलिन मन धारी जिस द्वारे होता पावन।
रहे सदा अनुकूल हमारे वही वीर प्रभु मन भावन।।

(3)

आज उन्हीं जिनवर चरणों में सहज झुका अपना माथा।
गाता हूँ वाणी विलास कर अमल विमल गौरव गाथा।।
करता हूँ कर जोड़ विनय हे महावीर! हो शीघ्र दयाल।
वेग शमन कर दो जगती से हिंसा सम्पुट कष्ट कराल।।

(4)

छोड़ आपके दिव्य द्वार को और कहाँ जाऊँ स्वामी।
गेय आपका ही केवल गुण फिर किसका गाऊँ स्वामी।।
त्रिशला नन्दन फिर त्रिताप की बाधा जग से हरण करो।
अपने अनुगामी पावन दल बीच-अचल' का वरण करो।।

(5)

करदीजे प्रशस्त फिर वह पथ जहाँ मनुज होता है धन्य।
धन्य धन्य कहता भू अम्बर उससा धन्य न होता अन्य।।
सोते जगते चलते फिरते एक चाह केवल स्वामी।
आती जाती श्वास अहर्निश बोले महावीर स्वामी।।

अन्तिम तीर्थकर महावीर के पूर्वभव

आ सुबाहु सागर

महापुरुषों का अतीत स्मरणीय एव शिक्षाप्रद होता है। केवल ज्ञानी परमात्मा एक बार हो जाने के बाद तो वे सदा ही भविष्य मे केवलज्ञानी परमात्मा रहेंगे, पर उसके पूर्व वे कभी ज्ञानी तो कभी अज्ञानी कभी महान बलवान तो कभी दुर्बल आदि अनेक ऊँची नीची अवस्थाओ को प्राप्त होते रहे है सदा एक से नहीं रहे। ससार दशा में एक समान आज तक कोई नही रहा, महावीर भी नही रहे।

पुराणो मे महावीर के अतीत का वर्णन पूर्व विदेह मे पुण्डरीकणी नदी के मधुवन मे पुरुरवा भील राज से आरम्भ होता है। मासाहारी भीलराज सागरसेन मुनिराज को मृग समझकर मारने ही वाला था कि अपनी कालिका स्त्री द्वारा रोक दिया गया। मुनिराज से मद्य मास और मधु का त्याग ग्रहण कर वह देव बना और फिर प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव का पौत्र और प्रथम चक्रवर्ती भरत का पुत्र मारीचिकुमार बना। ऋषभदेव को धर्म तीर्थ के प्रणयन से मनुष्य और देवताओ से पूजा जाता देख उसने भी पूजा प्राप्ति हेतु अपना मत स्थापित किया और मरकर ब्रह्म स्वर्ग मे देव हुआ।

ब्रह्म स्वर्ग से च्युत होकर अयोध्या मे जटिल ब्राह्मण हुआ परिव्राजक बना—मरकर सौधर्म स्वर्ग मे देव हुआ—फिर स्थूणागार नगर मे पुष्यमित्र ब्राह्मण हुआ परिव्राजक बना—पुन सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ—फिर सूतिका ग्राम मे अग्निसह ब्राह्मण हुआ साधु बना—पुन स्वर्ग प्राप्त किया—फिर मन्दिर ग्राम मे अग्निमित्र ब्राह्मण हुआ, परिव्राजक बना—मर कर माहेन्द्र स्वर्ग म देव हुआ—फिर मन्दिर नगर म भारद्वाज ब्राह्मण हुआ और त्रिदण्डी साधु बना और माहेन्द्र स्वर्ग मे देव हुआ।

यहाँ तक देव तथा मनुष्य भवों की कथा कह कर पुराणकार गणनातीत काल तक इस महान आत्मा को एकेन्द्रिय पेड पौधे से लेकर पचेन्द्रिय पशु पक्षी आदि भवग्रहण की बात कहते हैं और पुन विशेष कथा राजगृह नगर मे स्थावर ब्राह्मण से आरम्भ करते है जो परिव्राजक के रूप मे साधना कर माहेन्द्र स्वर्ग मे देव बना।

माहेन्द्र स्वर्ग से यह आत्मन च्युत होकर राजगृह राज्य का विश्वभूति राजपुत्र हुआ। इसने जैन मुनि वन तपस्या की और महाशुक्र स्वर्ग में देव हुआ तथा वहाँ से च्युत होकर पोदनपुर नगर में इस काल का प्रथम अर्वच की त्रिपृष्ठ वना—मरकर सप्तम नरक का नारकी वना—फिर गंगा तट पर सिंह, और मरकर प्रथम नरक का नारकी वना—फिर हिमवन पर्वत पर सिंह हुआ।

सिंह के इस भव को पुराणकार संसार चक्र से मुक्त हो परमात्मा वनने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ मानते है, तथा उसमें भी उन क्षणों को जब वह एक हिरण को खाकर अपनी भूख मिटाने में लगा हुआ था। आकाश मार्ग से जाते अजितंजय तथा अमितगुण नाम के दो करुणामूर्ति मुनिराज का उपदेश सिंह का हृदय परिवर्तन करता है और आजीवन मांस भक्षण का वह त्याग कर देता है, मुनिराज की करुणा से अभिभूत हो उनकी प्रदक्षिणा देता है, अश्रु पूरित नेत्र हो पुन: पुन: उन्हें नमन करता है और सन्यास मरण कर प्रथम स्वर्ग मे सिंहकेतु नामक देव होता है।

स्वर्ग से च्युत होकर यह आत्मा कनकप्रभ नगर मे कनकोज्ज्वल राजपुत्र हुआ तथा मुनि वनकर तप तपा और सातवें स्वर्ग मे देव हुआ—फिर अयोध्या मे हरिषेण राजपुत्र हुआ, मुनि वना और आयु समाप्त कर महाशुक्र स्वर्ग मे देव हुआ—फिर धात की खण्ड द्वीप में प्रियमित्र चक्रवर्ती हुआ।

सहस्त्रार स्वर्ग से च्युत होकर यह आत्मा छत्रपुर नगर मे नन्द नामक राजपुत्र हुआ। प्रोष्ठिल नामक गुरु से दीक्षित होकर नन्द राजा मुनिराज वन गये तथा दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओ का चिंतन कर 'तीर्थंकर' नाम कर्म का बँध किया और आयु समाप्त कर अच्युत स्वर्ग मे इन्द्र हुआ। यह ही इन्द्र अपनी दीर्घ आयु समाप्त कर विहार में कुण्डपुर–अधिपति सिद्धार्थ और माता त्रिशाला की सन्तान अन्तिम तीर्थ कर भगवान महावीर हुआ।

महावीर के पूर्व भवों की इस तालिका पर दृष्टि डालने मे हमारे सामने दो महत्त्वपूर्ण तथ्य आते हैं—

(1) पुन: पुन: तपस्या कर महावीर पूर्वभवों मे स्वर्ग प्राप्त करते हैं, पर केवलज्ञानी परमात्मा वनने का कार्य पूर्वभव मे अपनी तपस्या द्वारा न तो परिव्राजक आदि वनकर कर पाते न निर्ग्रन्थ मुनि वन कर।

(2) जैनाचार्य पुन: पुन: स्वर्ग प्राप्ति की एक सीमा स्वीकार करते हैं और फिर 2000 सागर के अन्त में पुन: व्यक्ति को एकेन्द्रिय स्तर के पेड़ पौधे आदि इस ससार मे वनना ही होता है। अत: स्वर्ग को साध्य वनाकर तपस्या करना आधी अधूरी साधना ही है। जीव के दु:खों की आत्यन्तिक निवृत्ति तो अन्तर्वाह्य सर्व परिग्रह का त्यागी वन आत्म गुणो के उत्कृष्ट जागरण से ही सभव है जो महावीर ने जब अपनाया तो परमात्मा वन गये। यह कार्य भी स्यात् एक भव का नही कुछ भव लेता है पर एक दिन अवश्य पूरा हो जाता है।

□

* महावीर के जीव को भी अनेक बार स्वर्ग प्राप्ति के वाद भी पुन पुन: एकेन्द्रिय होना पड़ा।

भारतीय समाज को भगवान महावीर की देन

– आचार्य तुलसी

भगवान महावीर ने शाश्वत सत्य की खोज की और उसी का प्रतिपादन किया। वे कोरे युगद्रष्टा नही थे। युगद्रष्टा केवल सामयिक सत्य को देखता है। जो शाश्वतदर्शी होता है वह युगदर्शी तो होता है, किन्तु युगातीत दर्शी भी होता है। शाश्वत सत्य का प्रस्फुटन युग के सन्दर्भ में भी होता है और उससे परे भी होता है। महावीर भारत की मिट्टी में जन्मे। भारतीय समाज उनका अपना समाज था। उनके पिता लिच्छविगण के एक सदस्य थे। वशाली का विपुल वैभव और प्रभुत्व उनके आसपास परिक्रमा कर रहा था। वे जिस समाज मे पले पुसे वह समाज उन दिनों भारतीय समाज कहलाता था और आज वह हिन्दू समाज कहलाता है। उस समाज में धर्म की दो धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं—वैदिक और श्रमण। महावीर ने दोनो धाराओं का निकटता से परिचय प्राप्त किया। तीस वर्ष की अवस्था मे श्रमण बने। साढे बारह वर्ष तक उन्होंने दीर्घ तपस्या और ध्यान साधना की। उसके बाद उन्हें केवल-ज्ञान-प्राप्त हुआ। उन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया। जनहित के लिए उन्होंने धर्म की व्याख्या की। उन्होंने बताया—समता धर्म है। राग और द्वेष—ये दोनों विषमता के बीज हैं। अन्तर्जगत की जितनी समस्याएँ हैं उनका मूल हेतु राग-द्वेष ही है। सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर भी जो समस्याएँ उभरती हैं, उनके पीछे भी राग द्वेष का बहुत बडा हाथ होता है। राग द्वेष पर विजय पाए बिना समता नहीं सध सकती और समता की सिद्धि हुए बिना धर्म प्राप्त नही हो सकता। जहाँ जितनी और जो विषमता है, वह सब अधर्म है। जहाँ जितनी और जो समता है वह सब धर्म है। इस कसौटी पर उन्होंने धर्म को कसा और समाज की प्रचलित धारणाओं मे जहाँ जहा विषमता देखी उसका प्रतिरोध किया। कुछ विद्वान कहते हैं कि वैदिक धर्म में प्रचलित रूढियों का विरोध करने के लिए महावीर समाज के सम्मुख एक सुधारक के रूप मे प्रस्तुत हुए। उनकी प्रवृत्तियों और धार्मिक प्रेरणाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है। किन्तु मेरी दृष्टि मे यह यथार्थ नही है। उन्होंने अवश्य ही विषमता-पूर्ण रूढियो का प्रतिरोध किया, पर वे प्रतिरोध करने के लिए एक सुधारक के रूप मे प्रस्तुत नही हुए वे समतामय धर्म की समग्र धारणा को लेकर समाज के सामने प्रस्तुत हुए और प्रासंगिक रूप मे प्रतिरोध भी उनके लिए अनिवार्य हो गया। समाज का बहुत बडा भाग जन्मना जाति मे विश्वास

करता था। वह विषमतापूर्ण सिद्धान्त था। जाति से यदि आदमी ऊंचा और नीचा हो सकता है तो फिर पुरुषार्थ का महत्त्व ही नही रहता। जाति से कोई आदमी नीचा है तो फिर वह अच्छा आचरण करने पर भी नीचा ही रहेगा और उच्च जाति वाला बुरा आचरण करने पर भी ऊंचा रहेगा। इस व्यवस्था मे पुरुषार्थ और आचरण शून्य हो जाते है। जाति ही सब कुछ हो जाती है। इस व्यवस्था के पीछे जो छिपा हुआ पक्षपात था, वह समता धर्म के अनुकूल नही हो सकता। धर्म से मनुष्य तटस्थता की अपेक्षा रखता है। वही धर्म यदि पक्षपात और रागद्वेष का पाठ पढाए तो धर्म की प्रयोजनीयता ही समाप्त हो जाती है। महावीर ने प्रचलित जातियो को अस्वीकृत नही किया। जाति व्यवस्था के पीछे रहे हुए मनोवैज्ञानिक कारणो की उपेक्षा नही की। उन्होने केवल जन्मना जाति के सूत्र को बदल कर कर्मणा जाति के सूत्र प्रस्तुत किया। इसके अनुसार एक ही मनुष्य एक ही जन्म मे ब्राह्मण भी हो सकता है, क्षत्रिय भी हो सकता है और कुछ भी हो सकता है। पिता क्षत्रिय और पुत्र वैश्य हो सकता है। वैश्य पिता का पुत्र शूद्र भी हो सकता है। कर्मणा जाति की इस परिवर्तनशील व्यवस्था मे ऊंच-नीच और छुआछूत का भेद नही पनप सकता।

समता के दो मुख्य प्रतिफलित हैं – अहिंसा और अपरिग्रह।

अहिंसा का सिद्धान्त अपनी आत्मा के प्रति जागरूक रहने का सिद्धान्त है। अपनी आत्मा के प्रति जागरूक वही रह सकता है, जो आत्मा के परमात्म-स्वरूप को जानता है। ऐसा व्यक्ति दूसरे के प्रति विषमतापूर्ण व्यवहार कर ही नही सकता। इसी आधार पर भगवान महावीर ने पशु बलि का अनौचित्य ठहराया और अनिवार्य हिंसा को भी हिंसा बताया। कर्म के नाम पर हिंसा विहित नही हो सकती।

वनस्पति का आहार जीवन की अनिवार्यता है या हो सकती है, किन्तु मांस का भोजन जीवन की अनिवार्यता नही हो सकती। उससे सात्विक वृत्तियो का उपघात भी होता है। भगवान महावीर ने मांसाहार के प्रति जनता मे अवांछनीयता की भावना पैदा की और भारतीय समाज में मांसाहार-विरोधी दृष्टिकोण प्रभावशाली हो गया।

भगवान महावीर ने कर्मकाण्डो को आध्यात्मिक रूप दिया है। उस समय यज्ञ-संस्था बहुत प्रभावशाली थी। भगवान महावीर ने यज्ञ के प्रति होने वाले जनता के आकर्षण को समाप्त नही किया, बल्कि यज्ञ की आध्यात्मिक योजना कर उसे रूपान्तरित कर दिया।

हिंसा का विधान स्वर्ग के लिए किया गया था। भगवान महावीर ने निर्वाण के विचार को इतनी प्रखरता से प्रस्तुत किया कि स्वर्ग की आकांक्षा और स्वर्ग के लिए की जाने वाली हिंसा — दोनों के आसन हिल गए। हिंसा का अर्थ केवल प्राण हरण ही नही है। घृणा भी हिंसा है, स्वतंत्रता का अपहरण भी हिंसा है। तत्कालीन समाज-व्यवस्था मे स्त्रियो और शूद्रो को अपने संघ मे दीक्षित कर भगवान महावीर ने उनको समानता के आसन पर प्रतिष्ठित किया। उन्हें अन्य वर्गों की स्वतंत्रता का समभागी बना मानवीय एकता की आधार भूमि प्रशस्त की।

इस समय वैचारिक हिंसा का दौर भी चल रहा था। अपने से भिन्न विचार रखने वाले पर प्रहार करना, उनके विचारों की असत्यता प्रमाणित करना धर्म-सम्प्रदायों मे भी मान्य था। एक धर्म के लोग दूसरे धर्म वालो पर कटाक्ष करते थे। भगवान महावीर ने अनेकान्त का दर्शन

प्रस्तुत कर जनता को समझाया कि सत्य की उपलब्धि समन्वय और सापेक्षता के द्वारा ही हो सकती है। एकांगी दृष्टि से प्रस्तुत किया जाने वाला कोई भी विचार पूर्ण सत्य से विच्छिन्न होने के कारण सत्य नहीं हो सकता। इस अनेकान्त की धारा ने साम्प्रदायिक संकीर्णता के स्थान पर उदार विचार, सवग्राही दृष्टिकोण और समन्वय की प्रतिष्ठा की।

ढाई हजार वर्ष पहले समाज को आर्थिक स्वतन्त्रता अधिक प्राप्त थी। कोई व्यक्ति चाहे जितना धन अर्जित कर सकता था। राजकीय कर भी बहुत कम थे। कुछ व्यक्ति धनकुबेर थे। कुछ बहुत दरिद्र भी थे। आर्थिक विषमता के प्रति कोई सामाजिक चिन्तन विकसित नहीं हुआ था। सामान्य जनता में यह धारणा थी कि जो धनी बना है, उसने पूर्व जन्म में अच्छे कर्म किए हैं। जो गरीब है उसने पूर्व जन्म में बुरे कर्म किए हैं। अपने अपने किए हुए कर्मों का फल भुगतना पडता है। इस धारणा के आधार पर गरीब के मन में अमीर के प्रति आक्रोश नहीं था। सामाजिक स्तर पर भी वह विषमतापूर्ण व्यवस्था मान्य थी। किन्तु समता की कसौटी पर वह खरी नहीं उतर रही थी। इसीलिए भगवान महावीर ने अपरिग्रह का सिद्धान्त समझाया। उन्होंने कहा—प्रत्येक गृहस्थ को व्रती बनना चाहिए और जो व्रती बने उसे परिग्रह की सीमा अवश्य करनी चाहिए। अर्जन के साधनों की शुद्धि परिग्रह की सीमा और उपभोग का संयम—इन तीनों को शृंखलित कर धर्म की एक ऐसी दिशा का उद्घाटन किया, जिसकी व्यावहारिक परिणति आर्थिक समानता में होती है।

उस युग की समाज व्यवस्था में धन की भांति मनुष्य का भी परिग्रह होता था। स्त्री-पुरुष बिकते थे। बिका हुआ आदमी दास होता था और उस पर मालिक का पूर्ण अधिकार रहता था। भगवान महावीर ने इस प्रथा को हिंसा और परिग्रह-दोनों दृष्टियों से अनुचित बताया और जनता को इसे छोडने के लिए प्रेरित किया। दास प्रथा उन्मूल अपरिग्रह मानवीय एकता स्वतन्त्रता, समानता सापेक्षता सहअस्तित्व आदि समता के विभिन्न पहलुओं की मूलधारा भगवान महावीर के वचनों तथा प्रयत्नों में खोजी जा सकती है। उन्होंने जनभाषा में अपनी बात कही और उनकी बात सीधी जनता तक पहुंची। जनता ने उसे अपनाया, पर कोई भी पुराना संस्कार एक साथ नहीं टूट जाता। ढाई हजार वर्षों के बाद हम अनुभव कर रहे हैं कि महावीर-वाणी के वे सारे स्फुलिंग आज महाशिखा बन कर न केवल भारतीय समाज को किन्तु समूचे मानव-समाज को प्रकाश दे रहे हैं।

———

जन्म-दिन : एक समूची सृष्टि का

महाश्रमणी साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा

आज हम भगवान महावीर की जन्म-जयन्ती मना रहे हैं। क्यो ? क्या ढाई हजार वर्ष की लम्बी कालवधि को आर-पार उद्भासित करने वाला भगवान महावीर का व्यक्तित्व अपने पीछे कोई जीवन्त आहट जोड गया है या अतीत के व्यामोह से अनुबन्धित होकर हम ऐसा कर रहे हैं ? अतीत बहुत सुनहरा होता है। यह जितना दूर और जितना अज्ञात रहता, उसके प्रति आकर्षण उतना बढ़ता है। क्या इसी हेतु की प्रेरणा से हजारों वर्ष पहले जन्में व्यक्ति को मनाने का यह उपक्रम है या वर्तमान के सन्दर्भ मे भी इसकी कोई उपयोगिता है ?

उपर्युक्त प्रश्न को सामने रख कर मे जब विचार करती हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है कि महावीर के प्रति लोक मानस मे जो आकर्षण है, वह केवल अतीत के अनुराग से नही है। वह इसलिए है कि महावीर-दर्शन की आज उपयोगिता है। वह केवल श्रद्धा और परम्परा के बल पर ही महत्त्वपूर्ण नही हैं। उसमे जीवन की अहम समस्याओ का समाधान हैं। जो धर्म या जन-जीवन की समस्याओं को अनदेखा छोड़ देता है, वह दीर्घकाल तक अपने अस्तित्व को सुरक्षित नही रख सकता।

भगवान महावीर न शाश्वतवादी थे और न अशाश्वतवादी। शाश्वतवादी का प्राचीनता मे विश्वास होता है। अशाश्तवादी का विश्वास नवीनता मे जुडा हुआ रहता है। महावीर प्राचीनता और नवीनना दोनो से परे थे। उन्हे न प्राचीनता से कोई व्यामोह था और न ही था नवीनता मे कोई आकर्षण। उनके दर्शन के अनुसार हर नवीनता प्राचीनता से अभिन्न होती है और हर प्राचीनता मे नवीनता के बिम्ब तैरते रहते हैं। जैसे हर अतीत वर्तमान के वातायन से झांकता रहता है तथा हर वर्तमान अतीत से सबद्ध होता है। इसी प्रकार प्राचीनता और नवीनता साथ-साथ चलती है।

भगवान महावीर ने ऐसी समन्वयी प्रक्रिया को प्रस्तुत किया, जिसमे किसी एक पक्ष को छोर पर नहीं देखा जा सकता। इसका अर्थ यह होता है कि महावीर के दर्शन मे कोई काना नही है, कोई नंगता नहीं है। जबकि आज की सबसे बड़ी समस्या कानापन और नंगापन है।

इस समस्या को निरस्त करने के लिए महावीर के दर्शन को समझना जरूरी है, उसे दर्शन के तार्किक धरातल से ऊपर उठा कर अनुभूति के स्तर पर समझना जरूरी है।

वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में धर्मनीति, समाजनीति या राजनीति किसी भी क्षेत्र की उलझन यह है कि वहां कोई भी निर्णय सर्वांगीण नहीं होता। एकांगी सत्य को पूर्ण सत्य मान कर चलने से समस्या उलझेगी नहीं तो और क्या होगा? महावीर ने अपने युग को इस समस्या के प्रति बहुत सावधान किया था। उनका युग अतीत और अनागत दोनों से प्रतिबद्ध था इस दृष्टि से उन्होंने ऐसे त्रैकालिक सत्यों का उद्घाटन किया जो हर युग की त्रासदी को तोड़ने वाले थे। उन्होंने कहा—किसी भी सापेक्ष मूल्य को निरपेक्ष मान कर मत चलो। सापेक्षता शून्य निरपेक्षता आग्रह को जन्म देती है और उलझनों को बढ़ाती है। इसलिए निश्चय और व्यवहार सत्य को अपनी-अपनी भूमिकाओं पर ही समझने का प्रयत्न होना चाहिये।

व्यवहार स्थूल सत्य या पर्याय को अभिव्यक्ति देता है और निश्चय सूक्ष्म सत्य को स्थापित करता है। मनुष्य समाज मुख्यतः व्यवहाराधीन रहता है। किन्तु समस्या सुलझाने के लिए केवल व्यवहार ही पर्याप्त नहीं होता। मन की उलझन सुलझाने की दृष्टि से वह सर्वथा अपर्याप्त है। जब तक व्यक्ति को वस्तु सत्य उपलब्ध नहीं होता तब तक उसकी हर समस्या असमाहित रहती है।

भगवान महावीर ने निश्चय और व्यवहार की सापेक्षता का प्रतिपादन करते हुए कहा—मनुष्य स्थूल जगत् में जीता है, पर वही अंतिम सत्य नहीं हैं। उसे सूक्ष्म सत्य की खोज का प्रयत्न निरन्तर चालू रखना चाहिए। आज विज्ञान एक से एक उपलब्धियों की शृंखला को आगे बढ़ा रहा है। क्यों? इसलिए कि सूक्ष्म सत्य की खोज में निरत है। वह जहां तक पहुँचा है उसे ही अन्तिम सत्य मान कर रुकता नहीं है। भौतिक जगत् में होने वाले विकास का भी एक मात्र यही हेतु है। अब रही बात दार्शनिक लोगों की। उन्होंने सूक्ष्म सत्य की खोज बन्द कर दी। वे केवल स्थूल सत्य को आधार मान कर चले फलतः समस्याएं बढ़ीं, पर उनका सही निदान और सही चिकित्सा हाथ नहीं लगी।

यह तथ्य निर्विवाद है कि उलझनें सूक्ष्म जगत से आती हैं। मनुष्य की अपनी वृत्तियाँ आवेग प्रियता अप्रियता की अनुभूति आदि चेतना के सूक्ष्म स्तरों पर घटित होने वाली स्थितियाँ हैं। इनका समाधान स्थूल सत्य के माध्यम से खोजने का प्रयास होता है तब जीवन में विसंगति पैदा हो जाती है। यह कोरा दार्शनिक सत्य नहीं है। समस्त जगत् को प्रभावित करने वाला तत्त्व यही है इसलिए इसको दार्शनिक कह कर उपेक्षित नहीं किया जा सकता। जब तक स्थूल और सूक्ष्म सत्य के मध्य में सेतु का निर्माण नहीं किया जाता, इस सचाई का अनुभव भी नहीं हो सकता। इस अनुभूति के अभाव में न तो समस्या को समाधान ही मिल सकता हैं और न ही महावीर का दर्शन समझ में आ सकता है।

महावीर को समझने का अर्थ है सूक्ष्म सत्य की अनुभूति। महावीर को पहचानने का अर्थ है स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रयाण। महावीर को जानने का अर्थ है बहिर्मुखता से अन्तर्मुखता की

ओर गति। महावीर को विश्लेपित करने का अर्थ है अन्धकार से प्रकाश की उपलब्धि। महावीर का जन्म-दिन मनाने का अर्थ है महावीर की भांति जीवन जीने का संकल्प। इस संकल्प की आंशिक या सम्पूर्ण स्वीकृति करने वाले व्यक्ति ही अपने आप को भगवान महवीर के अनुयायी मान सकते हैं। वे ही उनके दर्शन को समझ सकते है और वे ही उनके जन्म-दिन मनाने की प्रक्रिया को क्रियान्वित कर सकते हैं।

महावीर के अनुसार मानव जगत् के प्रति ही नही, सम्पूर्ण प्राणी जगत् के प्रति समत्व की अनुभूति होनी चाहिये। वे प्राणी स्थूल हों या सूक्ष्म, चर हों या अचर, सवल हों या निर्वल— उन सव मे प्राणशक्ति है, चैतन्य है। यदि इनमे से किसी भी प्रकार के प्राणियों का सन्तुलन गड़बड़ाता है तो सारे संसार की स्थिति गडवड़ा जाती है। आज की भाषा मे जिसे इकोलोजी कहा जाता है, वह भगवान महावीर के ममत्वमूलक दृष्टिकोण का एक प्रतिविम्ब हैं। समता का यह सिद्धान्त जव व्यवहार में फलित होता है तभी व्यक्ति जीने का सही आनन्द पा सकता है।

इकोलोजी के सन्दर्भ मे अहिंसा की व्याख्या की जाए तो कुछ नयी दृष्टियाँ और नया चिन्तन हमारे सामने आता है। जैसे एक तथ्य है जगल काटने का। जंगल काटना हिंसा है और हिंसा त्याज्य है, इतना कह कर किसी व्यक्ति को हिंसा से विरत नही किया जा सकता। किन्तु इसी तथ्य को सांगोपांग रूप से निरूपित किया जाए तो सहज भाव से समझ मे आ जाता है कि एक जंगल काटने मात्र से समस्त जगत् की व्यवस्था किस प्रकार अस्त-व्यस्त हो जाती है। जिस क्षेत्र का जंगल काटता है, उसके पाश्वर्ती भू-भाग में वर्षा कम होती है। वर्षा की कमी का प्रभाव कृषि पर पड़ता है। फसल पर्याप्त नही होती है तो पेट नही भरता है और ससार मे अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। वनस्पति की उत्पादकता मे कमी होने से जीव-जगत् पर प्रतिकूल प्रभाव होता है, वह केवल संयम की दृष्टि से नहीं, जागतिक व्यवस्था की दृष्टि से भी चिन्तनीय है। वर्तनों की पंक्ति के नीचे से यदि एक वर्तन को खिसकाया जाता है तो वह पूरी पक्ति अव्यवस्थित हो जाती है। मकान की ईट को इधर-उधर कर देने से पूरा मकान को खतरा हो जाता है। इसी प्रकार जगत् की सहज व्यवस्था मे एक पदार्थ को इधर-उधर कर देने से समूची जागतिक व्यवस्था प्रभावित होती है, फिर चाहे वह पदार्थ पानी, पृथ्वी या वनस्पति कोई भी हो।

भगवान महावीर ने अहिंसा के निरूपण में जीव संयम की वात पर जितना वल दिया, उतना ही वल अजीव संयम पर भी दिया। इस क्रम में अचेतन पदार्थों का दुरुपयोग भी हिंसा की कोटि में परिगणित है। महावीर के इस दर्शन से गाधीजी की पूर्ण सहमति की परिभाषा किसी प्राणी के प्राण-वियोजन तक ही सीमित न रह कर समूचे जगत् की व्यवस्था से सम्बद्ध हो जाती है। ऐसी स्थिति मे हिंसा की समस्या युग की समस्या वन विश्व की समस्या वन जाती है। इस समस्या को निरस्त करने के लिए अहिंसा को उसके सूक्ष्म स्तरो पर ही समझना होगा।

अहिंसा भगवान महावीर के जीवन का दूसरा पर्याय है। उन्होंने प्राणी मात्र मे रही हुई जिजीविषा, स्वतन्त्रता और सुखेप्सा की वृत्ति को समझा, वैसे ही अचेतन जगत् की प्रवृत्तियों को

भी ग्रात्मसात् कर लिया। इस दृष्टि से उनका जन्म दिन समूची सृष्टि का जन्म-दिन है। मौत की ओर अग्रसर विश्व को जीवन की नई व्याख्या देकर उसके महत्त्व से परिचित कराना है। जीवन की भव्यता और दिव्यता को समझ उसका सदुपयोग करने वाला तथा युगीन समस्याओं के सामने चुनौती बन कर अडिग रहने वाला व्यक्ति ही महावीर जयन्ती की सार्थकता को प्रमाणित कर सकता है।

इस अवसर पर जो व्यक्ति विश्व चेतना के साथ तादात्म्य की अनुभूति कर लेता है, वह किसी भी प्राणी की व्यथा को अपनी व्यथा अनुभव करता है। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत तुकाराम कहीं जा रहे थे। मार्ग मे उन्होंने एक भैंसे का वध होते देखा। उस दृश्य को देख कर उनकी आत्मा प्रकम्पित हो गई। उनके रोम-रोम मे सिहरन व्याप गई। वे वहीं खडे रह गए और बोले—भाई! इस भैंसे का वध मत करो। वध करने वालो ने पूछा—क्यों? संत तुकाराम ने अपने मन की पीडा को अभिव्यक्त करते हुए कहा—तुम इसका वध करते हो, तब मुझे ऐसा महसूस होता है कि मेरा वध हो रहा है मुझे पीडा हो रही है और भीतर से मेरी आत्मा कराह रही है। यह बात उनकी समझ नही आई तो उन्होंने कहा—भाई! संसार के जितने जीव जन्तु हैं, उन सबके साथ मेरा तादात्म्य हैं। उनकी आत्मा मे मुझे अपनी आत्मा का दर्शन होता है। उनकी सुखानुभूति से मैं सुखी होता हूँ तो उनकी कष्टानुभूति मुझे व्यथित क्यों नहीं करेगी? यह बात सुनने वाले लोग चकित थे क्योंकि उन्होंने भगवान महावीर के दर्शन को नहीं समझा था। महावीर दर्शन मे विश्वास रखने वाला व्यक्ति प्राणी मात्र के प्रति एकत्व की अनुभूति सहज रूप से कर लेता है।

"सकल दानान्तराय के क्षय से अनन्त प्राणीगण का अनुग्रह करने वाला अभयदान होता है।" अशेष लाभान्तराय के नाश मे केवली भगवान के परम शुभ पुद्गलो का ग्रहण रूप लाभ होता है। सम्पूर्ण भोगान्तराय के तिरोभूत हो जाने से परम प्रकृष्ट भोगों की प्राप्ति होती है। इसी से पाँच वर्ण के सुगन्धित पुष्पों की वृष्टि विविध दिव्य गंध, चरण धरने के स्थान पर सात कमलो की पंक्ति सुगन्धित धूप, सुखद शीतल वायु का चलना आदि होता है सम्पूर्ण उपभोगान्तराय के नष्ट हो जाने पर क्षायिक उपभोग होते हैं। इससे सिंहासन चमर अशोक वृक्ष तीन छत्र प्रभामण्डल गम्भीर स्निग्ध स्वर देव दुन्दुभि आदि प्राप्त होते हैं वीर्यान्तराय के अत्यन्त क्षय से अनन्त वीर्य होता है।"

तत्त्वार्थवार्तिक 2/4 की टीका

विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय और आपसी झगड़े

□ मुनी नमिसागर

प्रत्यक्ष मे मतभेद नही होता, परोक्ष मे मतभेद हो जाते हैं। साधारणजन इन्द्रियो द्वारा जो प्रकट देखते है उसके सम्बन्ध मे एक मत होते हैं, वैज्ञानिक भी जो वात यन्त्रों और प्रयोगो द्वारा जान लेते हैं उनके बारे मे एक मत ही होते हैं। एक जल की बून्द में आज सूक्ष्म दर्शक यन्त्र की सहायता से हजारो जीव देखे जाते हैं तो इसमे मतभेद कैसे सम्भव है ? हां जो इन्द्रियों से, यन्त्रो से प्रत्यक्ष नही हो पाता है उस परोक्ष भूत कारण जगत के सम्बन्ध में छद्मस्थ मानव चाहे वैज्ञानिक हो चाहे दार्शनिक, अपने-अपने नाना सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं। इस प्रकार सिद्धान्तो, मान्यताओ के नानापन से नाना सम्प्रदाय धर्म और दर्शन मे बन जाते हैं। आज के विज्ञान मे नाना सम्प्रदाय न हो पर दर्शन-धर्म मे तो अनेक सम्प्रदाय बने हुये हैं ही।

जब प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा ग्रहण की थी तो उनके साथ ही चार हजार राजा भी उनकी भक्ति वश अनुकरण मे घर बार त्याग नग्न हो गये थे। बाहर से उन्होने ऋषभदेव की नकल करली, पर मौन ऋषभदेव किस का ध्यान करते हैं, यह कैसे जानते; और उन्होने तब ही अपने-अपने कुल मिलाकर 363 मत बना लिये। परोक्ष ज्ञानी ऋषभदेव केवल ज्ञान प्राप्त कर लोकालोक के प्रत्यक्ष ज्ञाता बन गये और उनके उपदेशों का उनके शिष्य गणधरों ने जन-जन को ज्ञान भी दिया, पर फिर भी परोक्ष तो परोक्ष ही था, जिसे समझ में नही आया उसने नही माना और अनेक सम्प्रदाय बनते रहे, बिगड़ते रहे। इतिहास मे, पुराणो में इन सम्प्रदायो के आपस मे झगड़े हुए हैं, और प्रत्यक्षदृष्टा तीर्थंकरो की परम्परा के श्रमणो और श्रावको को भी उनका विरोध ही नहीं, आक्रमण भी सहन करने पड़े है।

तीर्थंकरो की परम्परा का अनेकान्त और अहिंसा मूल आधार है। कुन्दकुन्द कहते हैं— 'नाना जीव हैं, उनके नाना कर्म है, उनकी नाना योग्यतायें है अतः अपने धर्म वालो और अन्य धर्म वालो के साथ विवाद मत करो।'

अतीत काल मे धार्मिक सम्प्रदायो की लडाई से मानव समाज की बहुत हानि हुई है। सत्य की खोज मे निष्पक्ष भाव से तर्क वितर्क चलना बुरा नही, अच्छा है, पर अपनी सख्या बढाने सम्पत्ति और सत्ता हथियाने के लिये धर्म जैसी आत्म कल्याणकारी वस्तु को बहाना बनाकर हिंसा और घृणा फैलाना महान् पाप है। जो धर्म गुरु का बाना धारण कर भोले नासमझ लोगो को अपना और दूसरो के भले का, दुखी की सेवा का उपदेश न देकर अन्यों से घृणा करना सिखाते हो वे धर्म गुरु नही कहे जा सकते।

जो हुआ, बहुत हो चुका है। धर्म जीव मात्र का भला करने वाली औषधि है, हमे इसे मनुष्य और अन्य जीवो को नष्ट करने वाला विष नही बना देना चाहिये।

भैया ! बन्दे वीरम् बोलो

अनसमझी की हटा अगला,
आतम् का पट खोलो।

(1)

पर मे रति ही दुर्गति दाता
स्वानुराग है सुगति विधाता,
ऐसा जान सँभलजा भ्राता,
कर्मों का मल धोलो।
भैया! बन्दे वीरम बोलो॥

(2)

किसका काम कौन से सरता
अपने ही भावो का करता,
जीव नही पुद्गल से मरता
निज मे निज को तोलो।
भैया! बन्दे वीरम् बोलो॥

(3)

सज्जन सच्चाई मे चाले,
शील शौच सयम व्रत पाले,
काम क्रोध के कूकड काले,
पापी को पग पोलो।
भैया! बन्दे वीरम् बोलो॥

(4)

'धर्म' आत्मा का स्वरूप है,
राग-द्वेष की धार धूप है
सम्यग्दर्शन सही सूप है,
घट मे अमृत घोलो।
भैया! बन्दे वीरम् बोलो॥

प्रसन्न कुमार सेठी

प्राकृत साहित्य में महावीर प्रसंग
या
आगम-उपाङ्गों में महावीर प्रसंग

-डॉ. शोभनाथ पाठक

मानवता के मङ्गल के लिए भगवान महावीर के मुख से निकले उपदेशो-ज्ञानामृतो के स्रोतों को गणधरो ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से संग्रहीत कर एक अद्भुत थाती के रूप में जो समाज को सौपे वही आगम-अङ्ग उपाङ्ग आदि अपनी-अपनी उत्तमता में अद्वितीय हैं जिनकी महत्ता को आंकना सम्भव नही है। महावीर जयन्ती के पावन प्रसंग पर यहाँ जैन आगमों में महावीर की महत्ता को उजागर करने वाले उद्धरणों-सन्दर्भों को संक्षिप्ततः प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्राकृत वाङमय की वरीयता मे आगम, षटखंडागम उपांग प्रकीर्णक, छेदसूत्र, मूलसूत्र, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी, टीका, कथा, चरित्र, स्तुति स्तोत्र आदि का अपने-अपने क्षेत्र मे विशिष्ट स्थान है जिनमें जग कल्याण की असीम थाती संजोयी गई है। आज के युग में इस थाती से दिशा निर्देश लेना स्वयं के लिए व समाज के लिए श्रेयस्कर है तथा प्राकृत वाङ्मय की वरीयता को परखना आज की आवश्यकता है। इस परिप्रेक्ष्य मे महावीर जयन्ती की महत्ता के मान मे हम उक्त साहित्य से तत्सम्बन्धी प्रसंगो को उद्धृत कर पाठकों के मनन-चिंतन हेतु प्रस्तुत कर रहे हैं।

आयारांग (आचारांग सूत्र)—द्वादशागों में इसका विशिष्ट स्थान है इसलिए इसे अंगों का सार कहा गया है तभी तो भद्रबाहु ने कहा है—

> अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गन्थन्ति गणहरा निउणं।
>
> सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्तं पवत्तेइ॥ (आ. नि. 92)

आचारांग सूत्र के नवें 'उपधानश्रुत' मे महावीर के प्रसंग बड़े आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं। महावीर की चर्या, शय्या, सहिष्णुता और तपस्या का बड़ा मार्मिक विवरण इसमें दिया गया है। प्रथम उद्देशक का यह श्लोक देंगे :—

एवाद सनि पढिमेह, निसम ताईं से पमिनाय ।
परिवज्जियमाणु विहरित्था इति गथाएँ से महावीरे ।।

अर्थात शिशिर ऋतु की कड़ाके की ठंड में तथा भयानक गर्मी की तपन में भी वे अवधूत सब कुछ सहते हुए अपने पथ पर अग्रसर रहते । कभी विचलित नहीं हुए । अन्य उद्देशों में भी महावीर के बड़े मार्मिक प्रसंग प्रस्तुत किये गये हैं जिसमें लाढ देश की यात्रा का वर्णन तो रोमांचित कर देने वाला है ।

सुयगडंग (सूत्र कृतांग) स्वसमय और परसमय का भेद बताने के कारण इसकी विशेष महत्ता है । इसके दो श्रुतस्कंधों क्रमश सोलह और सात अध्ययनों में महावीर प्रसंग बड़ी रोचकता से प्रस्तुत किये गये हैं । 'वीर-स्तुति' में महावीर को ऐरावत, सिंह, गंगा व गरुड की उपमा से अलंकृत किया गया है और उन्हें सर्वोत्तम रूप में सराहा गया है । 'धम अध्ययन' "समाधि-अध्ययन" 'मार्ग अध्ययन' में महावीर की उत्तमता को उजागर करते हुए महावीर द्वारा बताये मार्ग को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है ।

ठाणाङ्ग (स्थानाङ्ग) सूत्र 10 अध्ययनों में विभक्त है । पाँचवें अध्ययन में पांच महाव्रतों का वर्णन है । आठवें अध्ययन में महावीर द्वारा उपदेशित (दीक्षित) 8 राजाओं का प्रसंग बड़ा रोचक है ।

समवायाङ्ग —इस श्रुताङ्ग में 275 सूत्र हैं । महावीर प्रसंग इसमें पार्श्वनाथ के साथ पूर्ववर्ती चौदह पूर्वों के ज्ञाता मुनियों के निर्देश में आया है जो बड़ा सारगर्भित है । कुलकर-तीर्थकर-चक्रवर्ती आदि का वर्णन भी बड़ा रोचक है ।

वियाहपण्णत्ति (व्याख्या प्रज्ञप्ति)—श्रुतांग का दूसरा नाम भगवती सूत्र है । प्रज्ञप्ति का तात्पर्य है प्ररूपण । जीवादि पदार्थों की व्याख्याओं के साथ महावीर स्वामी का जीवन चरित्र प्रचुरता व रोचकता के साथ प्रस्तुत किया गया है । गौतम गणधर के प्रश्नों के उत्तर महावीर ने बड़ी कुशलता से दिये हैं जिसकी शैली अत्यधिक आकर्षक है । इस श्रुतांग में महावीर को वेसालिय (वैशाली) कहा गया है । रेवती प्रसंग भी रोचक हैं ।

नायधम्मकहाओ (ज्ञातृधर्मकथा)—इसका नाम ही महावीर की महत्ता से मंडित है अर्थात् ज्ञातृपुत्र महावीर द्वारा उपदिष्ट धर्मकथाओं का प्ररूपण । महावीर और मेघकुमार की चर्चा अत्यधिक रोचक है । नन्द श्रेष्ठी व श्रेणिक प्रसंग बड़े रोचक हैं ।

उवासगदसाओ—इसमें महावीर के दस उपासकों के आचार का वर्णन है । प्रथम अध्ययन में ही "वीर" की वरीयता का बखान किया गया गया है यथा महावीरेण वीरयति पराक्रमते मोक्षानुष्ठाने इति वीर श्री वर्धमानस्वामिनस्तय" अर्थात् मोक्ष के अनुष्ठान में जो पराक्रम करता है अथवा जो चार घातिया कर्मरूप रज हटा देता है अथवा जो प्राणियों को संयम आदि

के अनुष्ठानों से विशेष प्रेरित करता है उसे "वीर" कहते हैं और जो वीरो में वीर है वह महावीर है।

अ.तगडदमाओ—अर्जुन माली का प्रसंग इसमें बहुत ही प्रेरक है जब उसे शांति महावीर के उपदेशो से ही मिलती है। और वह प्रवज्या ग्रहण कर लेता है। श्रेणिक राजा की रानियाँ महावीर से दीक्षा लेकर अपने जीवन को धन्य मानती हैं। यह प्रसग भी अत्यधिक रोचक है।

अनुत्तरोपपातिक दशा—इसमे अभयकुमार का प्रसंग बड़ा मार्मिक है जब वे महावीर से दीक्षा ले असीम वैभव समृद्धि के जीवन को ठोकर मारते हैं; यही नही वरन् धारिणी रानी के सात पुत्र व चेलना के दो पुत्र भी महावीर से दीक्षा लेकर अपने जीवन को धन्य मानते है।

विवागसुय (विपाक सूत्र)—पाप और पुण्य के विपाक का इस सूत्र ग्रंथ मे विवेचन है। इसके दो श्रुतस्कंध हैं दुःख विपाक व सुख विपाक। महावीर प्रसंग इसमे गौतम गणधर के प्रश्नो मे आया है। महावीर ने दुःखी जनो के पूर्व भवो का वर्णन करके गौतम को सतुष्ट किया।

दिट्ठिवाय (दृष्टिवाद)—यह बारहवाँ अंग है। विभिन्न दृष्टियों का प्ररूपण होने के कारण इसे यह नाम दिया गया। इसके उपदेश के लिए बीस वर्ष की प्रवज्या आवश्यक है।

पण्हवागरणाई (प्रश्न व्याकरण) प्रश्नों का उत्तर होने के कारण यह नाम दिया गया है।

षट्खंडागम

पट्खंडागम को सत्कर्मप्राभृत, खंडसिद्धान्त अथवा पटखंडसिद्धान्त कहा गया है। इसके छः खड है। प्रथम खड का नाम जीवट्ठाण, द्वितीय का खुद्दाबंध, तृतीय का बंधस्वामित्वविचय; चतुर्थ वेदना, पंचम वर्गणा तथा षष्टम खंड का नाम महाबंध है। भूतबली ने महाबध के तीस हजार श्लोक प्रमाण की रचना की। यही बाद में महाधवल कहा गया। इन सबमे महावीर के प्रसंग विविध रूपो मे है।

वीरसेन आचार्य ने इन छहो खंडों पर 72 हजार श्लोकों की धवला टीका की रचना की। "कषाय प्राभृत" पर आचार्य वीरसेन ने टीका लिखी जो "जयधवला" नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ मे बताया गया है कि महावीर ने 29 वर्ष, 5 मास, 20 दिन तक (ऋषि, मुनि, यति और अनगार) इन चार प्रकार के श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका, सहित धर्म प्रचार हेतु देशभर मे यात्रा की।

महावीर के सर्वज्ञ, अर्हन्त बनने के विविध विधानों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। 12 वर्ष, 5 मास, 15 दिन तक घनघोर तपस्या करने के पश्चात् उन्होंने प्रथम शुक्ल ध्यान की योग्यता प्राप्त की। इसके बाद, मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय चार घातिया कर्मों का क्षय अन्तर्मुहूर्त में करके सर्वज्ञ, वीतराग, जीवन्मुक्त, परमात्मा पद प्राप्त किया।

तिलोयपण्णत्ति (त्रिलोकप्रज्ञप्ति)—यह प्राकृत का आठ हजार श्लोकों वाला अद्वितीय ग्रंथ है। यतिवृषभ आचार्य की यह कृति है जिसमें महावीर के शरीर विषयक रोचक प्रसंग है। महावीर के कुमार अवस्था में तप स्वीकार करने का वर्णन भी अद्वितीय है। महावीर के निर्वाण-काल निर्धारण में भी यह ग्रंथ उपयोगी है।

उपांगसाहित्य

उपांगों की रचना स्थविरों ने की। उपांग संख्या में बारह है जिनमें महावीर प्रसंग पर्याप्त मात्रा में हैं। यथा—

उववाइय (आववाइय औपपातिक)—इसमें महावीर के समवशरण की विवेचना अत्यधिक भावपूर्ण रूप से प्रस्तुत की गई है जिसमें कुणिक व अन्य राजे महाराजे व रानियाँ भाग लेते हैं।

रायपसेणइय (राजप्रश्नीय)—इसमें दो भागों में 217 सूत्र हैं। पहले भाग में सूर्याभदेव का महावीर के दर्शनार्थ आना वर्णित है। राजा सेय की महावीर के प्रति असीम भक्ति का मनोहारी वर्णन है।

जीवाजीवाभिगम—इसमें महावीर और गौतम गणधर के प्रश्नोत्तर, जीव-अजीव विषयक दार्शनिक वर्णन अद्वितीय है।

पन्नवणा (प्रज्ञापना)—इसमें 349 सूत्र हैं जिसमें महावीर व गौतम के प्रश्नोत्तर प्रस्तुत किये गये हैं।

चंदपण्णत्ति (चन्द्रप्रज्ञप्ति)—इसके 20 प्राभृतों में चन्द्र के परिभ्रमण का वर्णन है। महावीर व गौतम के प्रश्नोत्तरों की शैली विशेष मनोहारी है।

इसी प्रकार प्रकीर्णक छेदसूत्र मूलसूत्र, नियुक्ति भाष्य, चूर्णी, टीका साहित्य, कथा चरित साहित्य आदि महावीर प्रसंग से परिपूर्ण है। आज आवश्यकता है महावीर विषयक इन प्रसंगों को हिंदी के विविध विधाओं में सरलतम रूप से समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना जिससे सभी लोग इस थाती से लाभान्वित हो सकें।

एच $\frac{1}{60}$ 1100 आवासगृह
महावीरनगर
भोपाल (मध्य प्रदेश)

अपरिग्रह : परमो धर्म :

☐ युवाकार्य महाप्रज्ञ

आकाश को गुंजाने वाला यह स्वर बहुत बार सुना गया है—अहिंसा परमो धर्मः। अपरिग्रह : परमो धर्म : का स्वर बहुत कम सुना गया है। अहिंसा परमो धर्म : का उल्लेख दशवैकालिक चूर्णि मे मिलता है। महाभारत में भी इसका उल्लेख मिलता है—अहिंसा परमो दम : अहिंसा परमं दानम्। यह घोष बहुत पुराना है। आज एक नए घोष की जरूरत है – अपरिग्रह : परमो धर्म :

हिंसा का कारण : आर्थिक विषमता

अहिंसा और अपरिग्रह—दोनो को अलग-अलग देखेंगे तो पूरी बात समझ में नही आएगी। अपरिग्रह के बिना अहिंसा को नही समझा जा सकता। अहिंसा को समझने के लिए अपरिग्रह को समझना जरूरी है, और अपरिग्रह को समझने के लिए अहिंसा को समझना जरूरी है।

आदमी हिंसा किसलिए करता है ? शरीर के लिए, परिवार के लिए, भूमि और धन के लिए सत्ता के लिए। ये सब क्या है ? ये सारे परिग्रह है। हिंसा का मुख्य कारण है—परिग्रह। कोई अहिंसा करना चाहे और अपरिग्रह करना न चाहे, यह कभी संभव नहीं है। इच्छा, हिंसा और परिग्रह—तीनो मे परस्पर संबंध हैं, तीनो साथ-साथ चलते है। एक व्यक्ति धन कमाना चाहता है। क्या हिंसा के बिना धन का अर्जन संभव है ? आज अपरिग्रह को एक नया संदर्भ मिला है। इस शताब्दी मे दुनिया के अनेक विचारको ने देखा, हिंसा बहुत है, समाज मे असतोष बहुत है, क्रांतिया और रक्तपात हो रहा है। चिन्तन के बाद उन्हे लगा, इसका कारण परिग्रह है। आर्थिक विषमता के कारण ये स्थितियाँ बन रही है।

मार्क्स और गांधी

आज अहिंसा हमारे चिन्तन का गौण विषय हो गया, परिग्रह मुख्य विषय बन गया। आज चिन्तन की सारी धारा आर्थिक समानता और आर्थिक विषमता—इन दो बिन्दुओं पर टिकी हुई है।

आर्थिक विषमता रहेगी तो समाज मे हिंसा बढेगी। आर्थिक समानता रहेगी तो समाज म हिंसा कम होगी, अहिंसा का विकास होगा। एक ओर साम्यवादी विचार धारा के प्रवर्तक मार्क्स ने इस बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित किया तो दूसरी ओर अहिंसा के प्रबल समर्थक महात्मा गाधी ने भी इस विषय पर चिन्तन मथन किया। मार्क्स अहिंसा की दृष्टि से मुख्य चिन्तन धारा मे नहीं थे। गाधी के पास अहिंसा के चिन्तन के अलावा कोई विकल्प नही था। किन्तु दोनो का चिन्तन बिन्दु एक रहा और वह है आर्थिक समानता। इस बिन्दु पर गाधी और मार्क्स—दोनों ने विचार किया, आर्थिक समानता की दो प्रणालिया प्रस्तुत हो गई।

प्रश्न आर्थिक समानता का

गाधी की प्रणाली रही ट्रस्टीशिप की और मार्क्स की प्रणाली का आधार था—व्यक्तिगत स्वामित्व की समाप्ति। साम्यवाद ने प्रयोग किया व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त करने का और गाधी ने प्रयोग किया ट्रस्टीशिप का। किन्तु लगता है दोनो ही प्रयोग सफल नही हुए। आर्थिक समानता का प्रश्न बडा जटिल है। यदि हम विधायक रूप मे चलें तो सारी व्यवस्था गडबडा जाती है। समानता का आधार क्या हो ? एक परिवार में दो लडके हैं और एक परिवार में आठ लडके है, समानता क्या काम आएगी ? समानता का अर्थ है—सबके पास समान धन और समान साधन। एक परिवार में केवल पति पत्नी—दो ही सदस्य और एक परिवार मे दस से इस प्रणाली के सामने इतनी उलझनें आई कि व्यक्तिगत स्वामित्व के सीमाकरण की बात सफल नहीं हो पाई। व्यक्तिगत स्वामित्व को बद करने का परिणाम आया—अर्थ की प्रेरणा कम हो गई कमाने की प्रेरणा कम हो गई। आज उसे भी बदलना पड रहा है।

ट्रस्टीशिप वाली बात जनता के गले ही नहीं उतरी। जो बने मालिक बने सरक्षक कोई बना ही नही है। बडे-बडे उद्योगपति जो गाधीजी के निकट रहने वाले थे उन्होने अपने लिए इसका उपयोग किया। उद्योग चले मिले चली। ऐसे मालिक और सरक्षक बने कि अपने लिए लाखो करोडों की लागत के गेस्ट हाउस और बगले बना लिए, मजदूरो के लिए झोपडियो भी पूरी नही बनी। आर्थिक समानता क सदर्भ म ट्रस्टीशिप की बात भी सफल नही हुई।

अपरिग्रह इच्छा परिमाण

हमे मूल बिन्दु को पकडना होगा। भगवान महावीर की वाणी मे वह बिन्दु उपलब्ध होता है। यदि हम विधायक रूप मे आर्थिक समानता की बात करेंगे तो इस समस्या का समाधान नही होगा। हम निषेध के द्वारा इस समस्या को समाधान दे सकते हैं। कही कही निषेध बहुत काम का होता है। सब जगह विधायक बात सफल नहीं होती। अहिंसा की व्याख्या विधायक रूप मे करें तो बडी उलझनें हैं। अपरिग्रह की व्याख्या भी विधायक रूप मे करें तो उलझने कम नही हैं। हमे निषेध से चलना होगा। किसी को मत मारो एक गृहस्थ के लिए यह अहिंसा की सबसे अच्छी परिभाषा हो सकती है। इच्छा का परिमाण करो एक गृहस्थ के लिये यह अपरिग्रह की सबसे अच्छी परिभाषा हो सकती है। गृहस्थ का अपरिग्रह मुनि का अपरिग्रह नहीं है। गृहस्थ के लिए है—इच्छा परिमाण।

उलझा हुआ प्रश्न

आज भी परिग्रह और अपरिग्रह का प्रश्न, आर्थिक समानता और विषमता का प्रश्न बहुत उलझा हुआ है। यदि धर्म इस समस्या का समाधान नही दे सकता, तो शायद दूसरा कोई भी इस समस्या का समाधान देने में समर्थ नही है। यदि धर्म इस समस्या का समाधान नही देता है तो वह अपने कर्त्तव्य कहां तक निर्वाह करता है, यह भी एक प्रश्न है। आर्थिक समस्या को समाधान देना बहुत जटिल है। अहिंसक समाज रचना का प्रश्न लम्बे समय से चल रहा है किन्तु अहिंसक समाज रचना अपरिग्रह की समाज रचना के बिना संभव नही है।

हम एक बिन्दु को पकड़े। भगवान् महावीर के दो सूत्र—इच्छा परिमाण और भोगोपभोग परिमाण—आर्थिक समस्या को समाधान दे सकते हैं। जब तक इच्छा और भोग का सयम नही होगा, तब तक न अहिंसक समाज संरचना का सपना साकार होगा और न ही आर्थिक समस्या सुलझ पाएगी। वर्ग—संघर्ष की क्रान्तियां, हिंसक क्रान्तियां इसीलिए होती है कि व्यक्ति लोभी और स्वार्थी बन जाता है, केवल अपने भोगोपभोग की ही चिन्ता करता है, सग्रही और परिग्रही बन जाता है। वह अपने आस-पास की ओर ध्यान ही नही देता है, यह स्थिति ही क्रान्ति को जन्म देती है।

आर्थिक विकास : आर्थिक संयम

आर्थिक व्यवस्था का सबसे बडा सूत्र हो सकता है—पूरे समाज की न्यूनतम आवश्यकताएं पूरी हो जाएं। रोटी, कपड़ा मकान, दवा और शिक्षा के साधन प्रत्येक व्यक्ति को सुलभ हो जाएं। आर्थिक समानता की बात छोड़ दे। सब व्यक्तियों का कमाने का अलग-अलग ढंग होता है, व्यावसायिक कौशल होता है। कोई अधिक कमाता है और कोई कम। आर्थिक समानता का यान्त्रिकीकरण नही हो सकता। सब लखपति हो, यह कभी संभव नही है। इतना हो सकता है—जीवन की प्रारंभिक और मौलिक आवश्यकताएं सबको समान रूप से मिले। अपनी-अपनी विशेष योग्यता से व्यक्ति लाभ कमाए, उसमे दूसरो को आपत्ति न हो। रस्किन और गांधी का मत था कि एक न्यायाधिकारी को जितना मिले, उतना ही एक वकील को मिले। इसका मतलब है, जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकें, उतना तो अवश्य मिले। यह बात भी तब तक सफल नही हो सकेगी, जब तक आर्थिक विकास के साथ-साथ आर्थिक संयम और भोगोपभोग के संयम की बात नही जुड़ेगी।

दो बातें और जुड़ें

समस्या यह हुई कि आर्थिक विकास पर बहुत बल दिया गया, अधिक उत्पादन अधिक आय और समान वितरण—इन पर बहुत ध्यान दिया गया, किन्तु इनके साथ दो बातो को जोड़ना चाहिए था—आर्थिक संयम और इच्छा का संयम इनको नही जोड़ा गया। परिणाम यह आया, आर्थिक समस्या सुलझ नही पाई। इस बिन्दु पर कहा जा सकता है कि धर्म के बिना समाज की व्यवस्था लड़खड़ा जाती है। अगर इन दोनों का योग होता, आज के अर्थशास्त्री आर्थिक

विकास के साथ सयम की बात को जोड देते तो एक नया समीकरण बनता। इच्छा—सयम और भोग सयम के साथ आर्थिक विकास का प्रश्न जुड़ा होता तो गरीब और अमीर के बीच इतना अतर नहीं होता, समाज को नए ढग से साचने का मौका मिलता, भय और परिग्रह की समस्या भयकर नही बनती। हम भारत के बडे शहरों को देखें। एक और आसमान को छूति अट्टालिकाए खडी हैं तो दूसरी ओर ऐसी झुग्गी-झौपडियों की कतारे लगी हैं जिनको देखकर आदमी का मन वितृष्णा से भर जाता है।

जटिल हैं परिग्रह की समस्या

क्या यह अतर मिट सकता है। क्या इस स्थिति मे आर्थिक समानता की बात सफल हो सकती है ? हम देखते हैं, एक और अनेक सभ्रात व्यक्ति शादी ब्याह में लाखो-करोडो रुपये खर्च कर देते हैं। दूसरी ओर लाखो-करोडों लोग भूख से पीडित हैं। यह कितनी भयानक स्थिति है ? कहा इच्छा—परिमाण की बात और कहा अपरिग्रह की बात ? अपरिग्रह की बात करने मे भी सकोच होता है। हिन्दुस्तान में सैंकडो उद्योगपति हैं, हजारों लाखों व्यापारी है। उनमें बहुत सारे ऐसे हैं जिन्होंने अपने जीवन मे इच्छा परिमाण या भोगोपभोग के सयम का स्वर सुना ही नहीं होगा। वे एक ही बात जानते हैं—खूब कमाना, खूब भोगना और शादी ब्याह मे खुले हाथ लुटाना। हिंसा से भी अधिक जटिल है परिग्रह की समस्या। वतमान समस्या को देखने हुए अपरिग्रह पर अधिक बल देना जरूरी है। अहिंसा परमो धम के साथ साथ अपरिग्रह का एक जोडा है उसे काट दिया गया। उसे वापस जोडकर ही हम समाधान की दिशा मे आगे बढ सकते हैं। जिस दिन अहिंसा परमो धर्म के साथ अपरिग्रह परमो धर्म का स्वर बुलन्द होगा, आर्थिक समस्या को एक समाधान उपलब्ध हो जाएगा।

प्रस्तुति मुनि लोकप्रकाश 'लोकेश"
ग्रीन हाउस सी स्कीम जयपुर

भगवंत महावीर की देशना

विचार की कम : आचार की ज्यादा

विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया
एम. ए., पी-एच.डी., डी. लिट्.

अनेक अब्दियों से, दशाब्दियों से और शताब्दियो से भगवंत महावीर की हम—सब जयन्ती मनाते आ रहे हैं। इस अवसर पर आयोजित अनेक आकर्षक आयोजनों द्वारा जन—जीवन मे उत्साह और आनन्द भर जाता है। धर्म की खासी प्रभावना हो जाती है, उनकी जीवंत बातो पर बातें होती और अनेक मुखीविशेषताओ का बखान किया जाता है और अन्ततोगत्वा महोत्सव समाप्त हो जाता है।

भगवंत महावीर ने कोई बात कहने के लिए नही कही, वे व्रत काल में बहुत कम बोले। उन्होने धर्म को बड़ी सावधानी पूर्वक समझा और उसे अपने जीवन में उतारा। उनकी दृष्टि में धर्म वाणी की नही, व्यवहार की सम्पदा है। हमारी प्रत्येक क्रिया में, कलाप में धार्मिकता होनी चाहिए।

धर्म जब जीवन मे प्रतिष्ठित हो जाता है, तब देह देवालय हो जाती है। देवता मुखर हो उठता है। जीवन में रसाप्लावन हो उठता है। जब ज्ञान का रस, आस्था का रस और आचरण का रस पारस्परिक तादात्म्य स्थिर कर लेता है तब जीवन में उल्लास और उत्साह छा जाता है।

चलना, बोलना, खाना-पीना, रखना-उठाना तथा मल-मूत्र का विसर्जन करना मानवी-जीवन की प्रमुख अनिवार्य क्रियाएँ हैं। भगवंत महावीर इन सभी क्रियाओं के समय कर्त्ता को अप्रमादी और अमूच्छित होने की बात कहते हैं। मूर्च्छा अथवा प्रमादयुक्त होने से कोई भी कर्म, शुभ कर्म नही हो सकता, फिर शुद्ध कर्म होने की बात बहुत दूर रही।

मूर्च्छा मुक्त प्राणी जब चलता है तो अपनी अगाड़ी की भूमिका को देख-भाल लेता है। उसे ध्यान रहता है कि चलने से किसी प्रकार से जीवो की विराधना नही होती है।

सावधानी पूवक चलने के लिए जिन वाणी एक शब्द देती है = ईर्या समिति । भगवत महावीर ईर्या समिति पूवक चलने की बात कहते हैं ।

बोलना एक कला है । अन्तरग मे इस कला का जगाएँ बिना प्राणी बोलते हैं उसमे प्रभावना का अभाव तो होता है श्रोताओ को निरथक कष्टापित किया जाता है । भगवत महावीर कहते हैं अनेक दूषणों से वचन के लिए हमे वचन गोपन का अनुसरण करना चाहिए । वाणी म सचाई हो, माधुय हो और हो कल्याण कारी भावना । इन बातो का ध्यान रखकर जो कोई सम्भाषण करता है उसको सुनकर श्रोता तो आनन्दित होते ही है स्वय वक्ता भी सन्तोष और सुख का अनुभव कर उठता है ।

तप और सयम साधना के साथ जो वाणी नि सृत होती है उसमे अथ—अभिप्राय के साथ चारित्रिक सुगन्ध भी विकीण होने लगती है । वाणी चरित्र की प्रतिध्वनि होती है । वचन गुप्ति का अभ्यास हो जाने पर वचन वस्तुत प्रवचन बन जाते हैं और वचन जब प्रवचन बन जाते हैं तो बौद्धिक प्रदूषण समाप्त हो जाता है ।

खाना पीना जब चौकसी के साथ सम्पन्न होता है तब उसे आगामी भाषा मे एषणा समिति' कहा जाता है । इस दृष्टि से हम बडे उदासीन हैं । क्या कब और कैसे खाना चाहिए इस दिशा में हमारा विवेक निस्तेज हो रहा है । मनुज प्रकृति से शाकाहारी है । इस सत्य को हम मानने को तैयार नहीं हैं । इसका परिणाम है कि हम रोगी रहने लग हैं । निरोग और स्वस्थ रहने के लिए हमे मूर्च्छा मुक्त जीवन जीना होगा ।

हमारा भोजन मात्र शाकाहार होन हो अपितु वह चार प्रकार की शुद्धियों से भी अनुप्राणित होना चाहिये । क्षेत्र शुद्धि द्रव्य शुद्धि काल शुद्धि और भाव शुद्धि मिलकर चौका' के रूप को स्वरूप प्रदान करते हैं । चौका से अनुप्राणित जब भोजन किया जाता है तब शरीर शुद्धि के साथ-साथ चित्त शुद्धि की सम्भावना का अभिवद्धन होता है । दुर्भाग्य और चिन्ता का स दम है कि भगवत महावीर की जय बोलने वाले महापुरुष इस दिशा म मूर्च्छित हैं प्रमादी हैं । उन्हें हम सभी को अपनी चर्या से प्रमाणित करना होगा कि हम जन हैं । एषणा समिति' के अनुपालन से हमारी चर्या शुद्ध और सही हो सकती है ।

'रखना उठाना' इसके सम्बन्ध मे भी आज जन-जीवन मे पर्याप्त असावधानी छाई हुई है । घरों मे या कार्यालयो मे जिस वस्तु को जहाँ से उठाया या रखा जाता है यदि तत्काल सावधानी नहीं रखी गई तो वस्तु के भटकने और हानि पहुँचने मे सहायता तो मिलती ही है साथ ही इस पूरी योजना में कृमि-कीडों की विराधना की सम्भावना भी बनी रहती है । महात्मा गाँधी अपने आश्रम मे सभी आश्रमवासियों से इस दिशा में जागरूक रहने की अपील किया करते थे । इस काय के करने में जीवन मे प्रमाणिकता के सस्कार उत्पन्न हुआ करते हैं ।

मल मूत्र के निक्षेपण की क्रिया भी प्राकृत है । आचाय इस दिशा म भी सावधान रहने की बात दुहराते हैं । भगवन महावीर स्वच्छ शुष्क तथा प्रकाशित स्थान पर मौन रहकर मल-मूत्र

निक्षेपण करने की देशना देते है। पजो पर वैठने से शरीर शुद्धि हुआ करती है। आज देखता हूँ कि हमारी चर्या मे इन नियमों का कोई स्थान नही रह गया है। तिर्यंचगति का अनुज... ...कर जाति का जीव भी क्षेत्र-शोध किये विया लघु और दीर्घ शंका से निवृत्त नही होता, तव क्या है मनुष्य गति के जीव तिर्यंच गति के जीव से भी कम सोच रखते हैं ? कम वुद्धि और विवेक रखते है ? अनेनक प्रकार की विपत्तियों से औपत्तियो वचने के लिए हमें भगवंत महावीर द्वारा निर्दिष्ट श्रावकाचार को जीवन-चर्या मे अपना चाहिए।

इस प्रकार आम जीवन की पाँच प्रमुख नैतिक क्रिया-कलापो मे सावधानी वरतने लगे तो हमारी जीवन चर्या मे आमूल चूल परिवर्तन परिलक्षित हो उठेगा। शरीर स्वस्थ और प्रसन्न चित्त रहकर जीवन यापन करने का आस्वाद ही कुछ भिन्न प्रकार का होता है।

सार संक्षेप में कहना इतना भर है कि 'महावीर जयन्ती' के आयोजन प्रयोगात्मक पद्धति पर सम्पन्न होने चाहिए। इस अवसर पर यदि अनुयायी भाई-वहिन छोटे-छोटे मांगलिक संकल्पो को लें तो हमारी चर्या अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक और पवित्रता पूर्ण सम्पन्न हो सकती है। इस प्रकार महावीर जयन्ती का मनाना सार्थक होगा और होगी भगवत महावीर के प्रति हार्दिक वंदनाञ्जलि !

मंगलकलश
394, सर्वोदय नगर,
आगरा रोड़, अलीगढ़
20200।

भारतीय धर्मों पर श्रमण संस्कृति का प्रभाव

कलानाथ शास्त्री
C/8 पृथ्वीराज रोड जयपुर

श्रमण सस्कृति भारत की अत्यन्त प्राचीन सस्कृति है। जैन धम के प्रारम्भ के बारे में विचार करते समय पहले कुछ विद्वान् उसे बौद्ध धर्म से अर्वाचीन मानने के कुछ आधार बताने लगे थे, अब प्राय सभी विद्वान उसे बौद्ध धम से प्राचीन मानते हैं। यह निर्विवाद है कि इन दोनो धर्मों और दर्शनों का प्रभाव परवर्ती सस्कृति एव चिन्तन पर पड़ा है। उसका आकलन अब तक पूरा नही हुआ है और इस दिशा में शोध करने की अब भी गु जाइश है। इस प्रकार की स्थापनायें तो हो ही चुकी हैं कि शकराचाय के दशन पर बौद्ध धम का गहरा प्रभाव था। उनके मायावाद और प्रतिभासिक सत्ता वाले सिद्धान्त पर बौद्ध धर्म का प्रभाव बतलाते हुय उन्हें 'अधर्वैभाषिक' और प्रच्छन्न बौद्ध भी कहा जा चुका है। इसी प्रकार जैन दशन के प्रभाव के सदर्भ में दो बातें विद्वानों द्वारा कही गयी है। एक तो यह कि महावीर का अहिंसा क सदेश का प्रभाव अन्य सभी दशनो एव धर्मों पर गहरा है। अहिंसा का सिद्धात वैदिक कमकाण्ड के विरोध मे जाता था क्योंकि पशु बलि उससे सगत नहीं पडती थी। इसीलिए पशु बलि का विरोध होने लगा। प्रत्येक काय मे अहिंसा का दृष्टिकोण (जो एक सिद्धान्त मात्र न हो कर जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण है) पूरे देश के चिन्तन पर छा गया था। मनु ने धम के लक्षणो मे उन महाव्रतों को गिनाया है जो महावीर ने बताये थे। उससे पूव वैदिक कमकाण्ड आदि में तथा धार्मिक दृष्टिकोण मे अहिंसा का इतना प्रभाव एव उसका पूर्ण क्रियान्वयन नहीं पाया जाता है।

इसी प्रकार एक और स्थापना की गयी है। जन धर्म का दृष्टिकोण शरीर की वृत्तियों का दमन करन के प्रति समर्पित है। उसके कम सिद्धात के अनुसार भी शारीरिक वृत्तियों का दमन आवश्यक है अन्यथा कम बधन का कारण हो जाता है। इसीलिये भारत के सभी धर्मों में इसके प्रभाव के कारण धम के दस लक्षणो मे एक तप को बहुत महत्व दिया गया। इसी का अग है उपवास जिसका सिद्धान्त है शरीर का इस प्रकार सयम करना कि इच्छायें पदा ही न हों। वृत्तियो के इस अनुशासन को तप को, उपवास को जैन धम मे बहुत महत्त्व दिया गया है। इसलिए जीवन में कठोर सयम आचरण के बधन भाति भाति के परीषह (जिन मे क्षुधा तृषा आदि के दमन द्वारा आचरण पर कठोर सयम रखना जरूरी बताया गया है) ये सब जैन आचार के प्रमुख अग हैं। परीषहजय का यह सिद्धात जैन धम की बहुमूल्य देन है। इसी के क्रम में अन्न और जल का त्याग करने

वाले को श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। भोजन के त्याग को उपवास का प्रमुख लक्षण माना गया है। चाहे यह कहा जाता हो कि कषाय, विषय और आहार तीनों के त्याग का नाम उपवास है, केवल भोजन का नही। कृषि प्रधान संस्कृति में यज्ञ, उत्सव, व्रत आदि का वर्णन तो है, उपवास का नहीं इसे श्रमण संस्कृति का प्रभाव ही माना जा सकता है। संभवतः इसी आधार को लेकर परवर्ती हिन्दू धर्म शास्त्रो मे किसी पाप के प्रायश्चित्त के रूप में 'उपवासों' का भी विधान किया जाने लगा जिनमें चन्द्रायण जैसे व्रत आते थे और उनमें यह विधान था कि आहार को किस प्रकार क्रमिक रूप से कम किया जाये जिससे वृत्तियों का दमन होगा और प्रायश्चित हो जायेगा।

इसी क्रम में जैन आचार के कुछ अन्य प्रभाव भी सनातनी संस्कृति पर देखे जा सकते है। श्रमण संस्कृति मे वर्षाकालीन चार महिनों में साधुओं और मुनियों द्वारा चातुर्मास्य किया जाता है अर्थात् वे इन चार महिनों में यात्रा नही करते, एक जगह रहकर धर्मदेशना (उपदेश) करते हैं। महावीर ने गौतम गणधर को प्रथम धर्मदेशना श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को दी थी। जैन आचार्यो के इस चातुर्मास्य के कारण ही वर्षाकालीन चार महिनो में जैनो के सारे प्रमुख धार्मिक पर्व केन्द्रित हो गये हैं। इस चातुर्मास्य की परम्परा का प्रभाव सनातनी संस्कृति पर भी पड़ा लगता है। वेद काल मे ऋषियों या संन्यासियों के चौमासे का कही कोई उल्लेख नही मिलता है। वैसे श्रावण पूर्णिमा को वेद का स्वाध्याय करने का उल्लेख अवश्य मिलता है जिसे 'उपाकर्म' कर्म कहा जाता था, किन्तु चार महिनो मे स्थिर रहने का विधान नहीं मिलता। यह परम्परा बाद मे ही शुरू हुई जिसके अनुसरण में आजकल शंकराचार्य जैसे संन्यासी भी आषाढ़ से कार्तिक तक चातुर्मास्य करते है। यह जैन आचार का प्रभाव इसीलिए माना जा सकता है कि उससे पूर्व के किसी भी सूत्र पुराण या उपनिषद् मे ऐसा उल्लेख नही है। आजकल इन चार महिनों में देवताओं के "सोये होने" की जो अवधारणा मिलती है या विष्णु के शेषनाग पर चार महिनो तक सोये होने की जो अवधारणा है वह श्रमण संस्कृति का प्रभाव मालूम पड़ता है। इसी कारण इन दिनों सनातनियो में विवाह मुहूर्त नही निकलता जबकि धर्म सूत्रों या ब्राह्मण ग्रन्थों मे ऐसा कोई निषेध नही पाया जाता। इन महिनो मे तो जन्माष्टमी, गणेश चतुर्थी, नवरात्र, आदि अनेक उत्सव होते हैं यह मान्यता पहले अवश्य थी कि बरसात मे राजा लोग चढ़ाई नही करते थे। विजयदशमी से ही विजय यात्रा शुरू होती थी (यद्यपि यह परम्परा भी बहुत प्राचीन नही है)। इससेपूर्व उत्तरायण और दक्षिणायन का उल्लेख अवश्य मिलता है और उत्तरायण मे मृत्यु होना अच्छा माना जाता था, किन्तु चातुर्मास्य की परम्परा का उल्लेख इससे पूर्व नही पाया जाता।

इस प्रकार के अनेक अध्ययन किये जा सकते हैं जिनसे श्रमण सस्कृति का प्रभाव अन्य धर्मों पर तलाशा जा सकता है। इसका उद्देश्य केवल वस्तुनिष्ठ अध्ययन ही होना चाहिये, पारस्परिक ऊँच-नीच और तरतमता बताने का कोई आशय नही है। कुछ विद्वानो जिनमे रामधारीसिंह दिनकर प्रमुख है, ने तो यह भी माना कि पूजा की प्रथा भी श्रमण संस्कृति का प्रभाव है, अन्यथा पहले केवल यज्ञ होते थे जो 'पशु-कर्म' है, पूजा जो 'पुष्प कर्म' है, बाद में शुरू हुई। ऐसे अध्ययनों के लिये प्रमाण और पुष्ट आधार खोज कर वस्तुस्थिति सामने रखना विद्वानो की रूचि का एक कार्य हो सकता है। ☐

उपभोक्ता वाद और महावीर

मुनि सुखलाल

उपभोक्तावाद हमारे युग की प्रगतिशीलता का एक मानक बन गया है। आज वही आदमी ज्यादा बडा माना जाता है जो ज्यादा से ज्यादा उपभोग सामग्री जुटा सकता है। एक जमाना था जब आदमी के बडप्पन का मापक-अङ्क सयम था। पर आज उपभोगवाद ने वह आसन छीन लिया है। सादगी और सयम से रहना पिछडेपन की निशानी बन गई है। जब आदमी यह कहता है कि मेरे पास इतने बगले हैं इतनी कारें हैं इतने कल कारखाने हैं तो उसे गौरव होता है। जिसके पास मे नहीं होते वह अपने आपको दीन-हीन मानता है। यद्यपि आज बात सभी समताकी करते है लेकिन मन मे अपने आपकी ऊचाई का एक मानदण्ड बना हुआ है। सम्पन्न आदमी ही नही गरीब आदमी भी उसी ओर बढना चाहता है। खान-पीने या रहने-सहने पहनने ओढने आदि सभी में ज्यादा से ज्यादा वस्तुओ का इस्तेमाल शान की बात समझी जाती है।

भगवान महावीर सयम के प्रबल प्रवक्ता थे। उन्होने सयम पर जितना बल दिया है उतना शायद ही किसी महापुरुष ने दिया होगा। कुछ लोगो को लगता है जैसे महावीर जीवन को नीरस बना देते हैं पर जब हम गहराई म जाकर देखेगे तो पता लगेगा कि उनका सयम का दृष्टिकोण एक त्रैकालिक सत्य है। लगता हैं महावीर का विचार एक व्यापक कालजयी विचार है। आज प्रदूषण एव अन्य समस्याओं पर थोडा दृष्टिपात करने पर भगवान महावीर द्वारा उपदिष्ट भोगोपभोग विरमण—व्रत की उपयोगिता अपने आप मे समझ म आती है। श्रावक के बारह व्रतो में भगवान महावीर ने जिस जीवन शली को रेखाकित किया है वह बहुत सारी आधुनिक समस्याओं का एक समाधान बन सकता है। उन्होन भोगापयोग व्रत मे 26 व्रत तथा व्यापार के लिए 15 कर्मादान का जो विश्लेषण किया है वह आज भी भोगप्रधान औद्योगिक सभ्यता के युग मे एक निदर्शन बन जाता ह। इससे आत्म सयम तो होता ही है राष्ट्र और समाज की आर्थिक नतिक-समस्या भी हल हो जाती है। औद्योगिक विकास से जो बेकारी बढती है उसमे भी अन्तर आ जाता है। उक्त कथन का यह अर्थ नहीं है कि एक सामान्य आदमी सब कुछ त्याग दे पर यदि वह अपनी आवश्यकताओ पर एक सीमा भी लगाता है तो न केवल अपने असन्तोष पर रोक लगाता हैं अपितु समाज व्यवस्था का भी बहुत बडा बल मिलता है।

उपभोग-परिभोग-विरमन व्रत का एक लम्बा चौड़ा विस्तार है। भगवान महावीर की यह अपनी एक अनूठी सूझ है। यदि जैन लोग उसे अपने जीवन में मूर्तिमान कर सकें तो न केवल उन्हें सन्तोष और शान्ति प्राप्त होगी अपितु पूरी दुनियां को महावीर के संदेश की सार्थकता का परिचय मिलेगा। यह एक ऐसी उपलब्धि है जिससे जैन संस्कार की पग-पग पर उपयोगिता को स्पष्ट समझा जा सकता है।

वारह व्रतों में भोगोपभोग के 26 बोल है। उन बोलो के आधार पर महावीर जीवन को ज्यादा से ज्यादा संयत रखने पर वल देते है। जैन परम्परा में प्रतिदिन चौदह नियम विचारने की एक आम प्रथा है। इस प्रथा के अनुसार प्रतिदिन भोगोपभोग मे आने वाली वस्तुओं का परिणाम किया जाता है। पानी के उपयोग परिणाम का भी उसमे प्रावधान आता है। उसके अन्तर्गत यह नियम लिया जाता है कि आज में अमुक परिणाम से ज्यादा पानी का उपयोग नही करूंगा। सचमुच यह बहुत दूर दृष्टि वाली बात है। आज के युग मे तो उसकी अर्थवत्ता और भी बढ गई है।

पानी एक भयंकर समस्या :—

यो साधारणतया हमारी पूरी पृथ्वी के 2/3 भाग मे पानी फैला हुआ है। संसार के 79 प्रतिशत भाग पर महासागरों का विस्तार है। पर सवाल स्वच्छ पीने योग्य पानी का है।

साधारणतया लोग समझते है पानी तो अपार है तब उसके लिए क्यो संकोच किया जाये। पर वास्तव मे स्थिति ऐसी नही है। पानी आखिर सीमित है। वैज्ञानिक गणनाओ के हिसाव से लगभग 16 अरव घन किलोमीटर पानी है। निसदेह यह मात्रा वहुत अधिक है, पर आज आदमी इतने पानी का उपयोग करने लगा है कि उसकी खपत नवीकृत होते रहने वाले स्रोतो की क्षमता के निकट पहुच गई है।

प्रथम दृष्टि मे पानी की खपत मामूली सी लगती है अर्थात् वार्षिक स्थिर वहाव का सिर्फ एक प्रतिशत। लगता है कि इतने से जल स्रोतों के सूख जाने का कोई खतरा नही है। पर बात ऐसी है कि आदमी पानी को जिस तरह से खर्च कर रहा है उससे मानवता के सामने यह एक भयंकर समस्या पैदा हो सकती है; वल्कि पश्चिम के अधिकांश विकसित देशो के सामने तो यह समस्या लगभग सामने आ ही गई है।

विश्व मे सबसे महत्वपूर्ण है जीवन। बिना पानी का जीवन विज्ञान को अभी तक दुनिया मे कही नजर नही आया। एक भी ऐसा जीवधारी नही है जो पानी के बिना जी सके विकसित हो सके। हमारे शरीर मे 65% से अधिक पानी ही है। पानी के बिना हम चंद दिन भी जी नही सकते। हमारे शरीर मे होने वाली सारी प्रतिक्रियाएं जलीय परिवेश मे और जल के सहयोग से ही संभव है। इस दृष्टि से पानी जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण पदार्थ है। प्रारम्भ में दुनिया की जनसंख्या कम व धरती पर पानी के भण्डार अधिक थे, पीने की कोई समस्या नही थी। पर आज जबकि हम जलपान का अंधाधुंध उपयोग किये जा रहे हैं तो पूरी दुनियां मे पीने का पानी कम

समस्या बन गया है। वर्षा के अभाव में भूमिगत जल मे निरंतर कमी आती जा रही है। उसका स्तर बहुत नीचे चला गया है। कई जगह तो जलपूर्ति सप्ताह मे दो दिन ही होपाती है। यदि ऐसा ही रहा तो समव है अनाज की तरह पानी भी बाहर से, बल्कि विदेशों से मगाना पड़े। यदि आदमी ने स्वय अपनी आदतों में सयम नहीं बरता तो पीने के पानी पर भी कंट्रोल करना पड सकता है।

राजस्थान जसे हजारों गावो में तो आज भी पीने के पानी की समस्या बहुत भयकर है। पश्चिमी राजस्थान में पानी की गहराई 400-500 फुट नीचे तक चली गई है। यदि पानी का इस तरह दुरुपयोग होता रहा तो वैज्ञानिकों का कहना है कि यह समस्या पूरे ससार की समस्या बन जायेगी। ऐसी हालत मे आदमी को गटरों के पानी को पुन स्वच्छ बनाकर काम में लेने की नौबत आ सकती है। पर यह समस्या का सही समाधान नही है। इस तथ्य को पर्यावरणीय सदर्भ मे सोचना आवश्यक है क्योंकि धरती मे पानी के भडार सीमित है। जब भी उनका अधाधुध तरीके से दोहन किया जाता है तो उसमे कमी आना सहज समाध्य है।

प्रत्यावर्तन आवश्यक —

पुराने जमाने मे तो लोगों को अपने सिर पर पानी लाना पड़ता था, तो स्वभावत ही उसके उपभोग में भी सावधानी बरती जाती थी। पर आजकल शहरो मे ज्यादा पूर्ति के साधन सुगम हो जाने से इतना फालतू पानी बहता रहता है जिसकी कोई हद नहीं है। कुछ लोग कुल्ला करने में ही इतना पानी खच करते हैं जितने से शायद स्नान भी किया जा सके। स्नान करने मे भी बेहिसाब पानी का उपयोग किया जाता है। बल्कि अल्हड़पन के कारण बहुत बार तो टूटी को ही खुला छोड दिया जाता है जिससे पानी निरर्थकता से बहता रहता है। शहरों की यह आदत आज गावों मे फैलती जा रही है। ज्यादा पानी बहाने को सभ्यता का प्रतीक मान लिया गया है। ज्यादा पानी बहने से तथा जल निकास की सुव्यवस्था न रहने से गावो की गलिया कीचड से भरी रहती है। उससे अनेक प्रकार की बीमारियो के फैलने की भी सभावना बनी रहती है।

हमारे यहा कहा जाता है

'पाणी घणो ढोलो मति, मुहगो सौदो पानी को,
और सौदो ज्याहीं त्याहीं, श्रो सौदो घर गलि को।

अर्थात् ज्यादा पानी मत बहाओ। यह सोदा बहुत महगा है। और सौदे मे क्षतिपूर्ति हो सकती है पर इसमे क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती। असल मे जैन दृष्टि के अनुसार पानी के एक बूद मे असख्य जीव माने गये हैं। उनकी हिंसा से बचने के लिए यह आवश्यक है कि उनका दुरुपयोग नही किया जाये। जितना आवश्यक हो उतना उपयोग तो करना ही पड़ता है, पर यदि दुरुपयोग को बन्द कर दिया जाये तो समस्या काफी हद तक समाहित हो सकती है। यद्यपि वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा भूमिगत जल प्राप्त करने के लिए नित नये उपकरणो का आविष्कार हो रहा है पर पृथ्वी पर जब पानी सीमित है और उसका बेहिसाब उपभोग किया जा रहा है उसका क्या इलाज हो सकता है ?

वैज्ञानिक ई. व पेत्रयानव के शब्दों में—

दुनियां में कुछ भी इतना मूल्यवान नहीं, जितना साधारण सा साफ पानी है। यह एक निराला द्रव्य है। इसके बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। पानी की रक्षा होनी चाहिए यह बात हर आदमी को समझनी और याद रखनी चहिए कि.... ....पानी की अवश्य रक्षा होनी चाहिये। पानी की रक्षा का मतलब है जीवन की रक्षा, स्वास्थ्य की रक्षा, समृद्धि की रक्षा, परिवेश, प्रकृति के सौन्दर्य की रक्षा। यह हर एक का कर्त्तव्य है।

पुराने जैन लोग गन्दगी को पानी मे नहीं छोड़ते थे। निश्चय ही यह एक अहिंसात्मक विधि तो है ही, पर इससे पानी का प्रदूषण भी बचता था। लगता है हमारे पुराने मूल्य नये सिरे से नये बनते जा रहे है। जल स्तर नीचे चले जाने से पेड़ सामान्य गहराई से पानी प्राप्त कर अपना जीवन विस्तार न कर पाने के कारण आज वे अपना अस्तित्व खोते जा रहे हैं। इस तरह जल का यह दुरुपयोग एक पूरी पर्यावरणीय क्षति है। जब वृक्ष और हरियाली नष्ट हो जायेगी तो वर्षा मे भी कमी हो जाना स्वाभाविक है। उससे जल स्तर और नीचा होता जायेगा।

भोगोपभोग व्रत का नियम केवल पानी से ही नहीं हैं। यह एक व्यापक व्रत है। अग्नि, वनस्पति, मिट्टी तथा पहनने ओढ़ने के कपडो पर संयम करना भी उसमें सम्मिलित है। आज जो एक उपभोक्तावाद पूरी दुनियां मे फैल रहा है उससे बचने का इसके सिवाय और कोइ विकल्प नहीं है कि आदमी अपनी आवश्यकताओ पर अंकुश लगाये। यदि ऐसा नहीं हो सका तो धरती के सन्तुलन के बिगड़ने की भी संभावना है। महावीर का व्रत-दर्शन इस अर्थ में एक गहरा जीवन दर्शन है।

असीम उपभोग से न केवल प्राकृतिक भण्डार ही निः शेष होते है अपितु कूड़े-कचरे रूप में गन्दगी का तो अपार ढेर छूट जाता है, वह भी हमारी दुनियां की गहन समस्या है। इस सब संदर्भो ने आज इस व्रत को एक नया अर्थ प्रदान कर दिया है।

जहां देह भी अपनी नहीं है, वहां अपना अन्य क्या है ? हे गुरु ! पर के कारण तुम शिवसंगम को मत छोड़ो।[145] हे योगी। एक शिव संगम करो जिससे सुख पाओ। जिससे मोक्ष न मिले वह कुछ भी मत सोचो।[146] केवल देखने मे सार इस मनुष्य जन्म को मस्तक पर वार दो। यदि इसे गाडे तो सड़ता है और जलाये तो राख हो जाता है।[147] जैसे दुर्जन के प्रति किया गया उपकार व्यर्थ जाता है वैसे ही देह के उबटन लगाना, मालिश करना, सजाना, मीठा भोजन देना व्यर्थ जाता है।[148]

— आ. योगिन्दु कृत परमात्म प्रकाश

समस्या बन गया है। वर्षा के अभाव में भूमिगत जल मे निरन्तर कमी आती जा रही है। उसका स्तर बहुत नीचे चला गया हैं। कई जगह तो जलपूर्ति सप्ताह में दो दिन ही होपाती है। यदि ऐसा ही रहा तो संभव है अनाज की तरह पानी भी बाहर से, बल्कि विदेशों से मगाना पड़े। यदि आदमी ने स्वय अपनी आदतो मे सयम नही बरता तो पीने के पानी पर भी कंट्रोल करना पड़ सकता है।

राजस्थान जैसे हजारों गावो में तो आज भी पीने के पानी की समस्या बहुत भयंकर है। पश्चिमी राजस्थान मे पानी की गहराई 400-500 फुट नीचे तक चली गई है। यदि पानी का इस तरह दुरुपयोग होता रहा तो वैज्ञानिकों का कहना है कि यह समस्या पूरे ससार की समस्या बन जायेगी। ऐसी हालत मे आदमी को गटरों के पानी को पुन स्वच्छ बनाकर काम में लेने की नौबत आ सकती है। पर यह समस्या का सही समाधान नहीं है। इस तथ्य को पर्यावरणीय सदर्भ मे सोचना आवश्यक है, क्योंकि धरती मे पानी के भडार सीमित है। जब भी उनका अधाधुध तरीके से दोहन किया जाता है तो उसमे कमी आना सहज सभाव्य है।

प्रत्यावर्तन आवश्यक —

पुराने जमाने मे तो लोगों को अपने सिर पर पानी लाना पड़ता था, तो स्वभावत ही उसके उपभोग मे भी सावधानी बरती जाती थी। पर आजकल शहरो मे ज्यादा पूर्ति के साधन सुगम हो जाने से इतना फालतू पानी बहता रहता है जिसकी कोई हद नहीं है। कुछ लोग कुल्ला करने मे ही इतना पानी खर्च करते हैं जितने से शायद स्नान भी किया जा सके। स्नान करने में भी बेहिसाब पानी का उपयोग किया जाता है। बल्कि अल्हड़पन के कारण बहुत बार तो टूटी को ही खुला छोड दिया जाता है जिससे पानी निरर्थकता से बहता रहता है। शहरों की यह आदत आज गावों मे फैलती जा रही है। ज्यादा पानी बहाने को सभ्यता का प्रतीक मान लिया गया है। ज्यादा पानी बहने से तथा जल निकास की सुव्यवस्था न रहने से गावो की गलिया कीचड से भरी रहती है। उससे अनेक प्रकार की बीमारियो के फैलने का भी सभावना बनी रहती है।

हमारे यहा कहा जाता है

'पाणी घणो ढोलो मति, मुहगो सौदो पानी को,
और सौदो ज्याहीं त्याहीं, ओ सौदो धर गलि को।

अर्थात् ज्यादा पानी मत बहाओ। यह सौदा बहुत महगा है। और सौदे मे क्षतिपूर्ति हो सकती है पर इसमें क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती। असल मे जैन दृष्टि के अनुसार पानी के एक बूद मे असख्य जीव माने गये हैं। उनकी हिंसा से बचने के लिए यह आवश्यक है कि उनका दुरुपयोग नही किया जाये। जितना आवश्यक हो उतना उपयोग तो करना ही पडता है पर यदि दुरुपयोग को बन्द कर दिया जाये तो समस्या काफी हद तक समाहित हो सकती है। यद्यपि वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा भूमिगत जल प्राप्त करने के लिए नित नये उपकरणो का आविष्कार हो रहा है, पर पृथ्वी पर जब पानी सीमित है और उसका बेहिसाब उपभोग किया जा रहा है उसका क्या इलाज हो सकता है?

वैज्ञानिक ई. व पेत्रयानव के शब्दों में—

दुनियां में कुछ भी इतना मूल्यवान नही, जितना साधारण सा साफ पानी है निराला द्रव्य है। इसके बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। पानी की चाहिए यह बात हर आदमी को समझनी और याद रखनी चहिए कि..............पानी व रक्षा होनी चाहिये। पानी की रक्षा का मतलब है जीवन की रक्षा, स्वास्थ्य की रक्षा, रक्षा, परिवेश, प्रकृति के सौन्दर्य की रक्षा। यह हर एक का कर्त्तव्य है।

पुराने जैन लोग गन्दगी को पानी मे नही छोड़ते थे। निश्चय ही यह एक अ विधि तो है ही, पर इससे पानी का प्रदूषण भी बचता था। लगता है हमारे पुराने मूल्य से नये बनते जा रहे है। जल स्तर नीचे चले जाने से पेड़ सामान्य गहराई से पानी प्राप्त जीवन विस्तार न कर पाने के कारण आज वे अपना अस्तित्व रहे हैं। इस तरह जल का यह दुरुपयोग एक पूरी पर्यावरणीय क्षति है। जब वृक्ष और नष्ट हो जायेगी तो वर्षा मे भी कमी हो जाना स्वाभाविक है। उससे जल स्तर अ होता जायेगा।

भोगोपभोग व्रत का नियम केवल पानी से ही नही हैं। यह एक व्यापक अग्नि, वनस्पति, मिट्टी तथा पहनने ओढ़ने के कपडों पर संयम करना भी उसमें सम्मिलित जो एक उपभोक्तावाद पूरी दुनियां मे फैल रहा है उससे बचने का इसके सिवाय और क नही है कि आदमी अपनी आवश्यकताओं पर अंकुश लगाये। यदि ऐसा नही हो सका तो सन्तुलन के बिगड़ने की भी संभावना है। महावीर का व्रत-दर्शन इस अर्थ में एक गह दर्शन है।

असीम उपभोग से न केवल प्राकृतिक भण्डार ही निः शेष होते है अपितु रूप में गन्दगी का तो अपार ढेर छूट जाता है, वह भी हमारी दुनियां की गहन समस्य सब संदर्भों ने आज इस व्रत को एक नया अर्थ प्रदान कर दिया है।

जहां देह भी अपनी नहीं है, वहां अपना अन्य क्या है? हे गुरु! पर के शिवसंगम को मत छोड़ो।[145] हे योगी। एक शिव संगम करो जिससे सुख पाओ। जि न मिले वह कुछ भी मत सोचो।[146] केवल देखने में सार इस मनुष्य जन्म को मस्तक पर यदि इसे गाडे तो सड़ता है और जलाये तो राख हो जाता है।[147] जैसे दुर्जन के प्रति उपकार व्यर्थ जाता है वैसे ही देह के उबटन लगाना, मालिश करना, सजाना, मीठा व्यर्थ जाता है।[148]

❀ आ. योगिन्दु कृत परम

धर्म जीवन मे कैसे उतारे : नारी की भूमिका

☐ डॉ० शान्ता भानावत

धर्म और जीवन का गहरा सम्बन्ध है। जिस जीव म धम नहीं वह शव के समान है और जो जीव धर्म को सही रूप मे धारण करता है वह शिव बन जाता है। आज की सबसे विकट और जटिल समस्या यही है कि व्यक्ति विविध रूपो में धम का नाम लेता है कई प्रकार की धार्मिक क्रियाएँ भी करता है, पर फिर भी धम उसके जीवन मे उतर नहीं पाता। इसका प्रमुख कारण यही है कि वह धम के अनुकूल अपनी पात्रता विकसित नही कर पाता है। भगवान महावीर न उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है—

'सोही उज्जुअभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठी।'

अर्थात् सरल आत्मा की शुद्धि होती है और शुद्ध आत्मा मे ही धम स्थिर रह सकता है। दूसरे शब्दों मे धम को धारणा के लिये दो बातें आवश्यक हैं—सरलता और शुद्धता। पर अनुभव यह बताता है कि ज्यो-ज्यो भौतिक विज्ञान और तकनीक का विकास हुआ है, त्यो-त्यो जीवन सरल होने के बजाय वक्र और जटिल तथा शुद्ध होने के बजाय अशुद्ध और मायावी बना है। यही कारण है कि आज धर्म जीवन-व्यवहार मे प्रकट नहीं हो पाता।

धम को जीवन मे उतारने के लिये उसके अनुरूप पात्रता विकसित करना आवश्यक है और यह पात्रता है जीवन की सरलता, कोमलता और करुणा भाव मे।

नारी जन्म से ही कोमल करुण, सरल और सवेदनशील होती है। उसका जननी और जाया रूप बीज को अपने स्नेह प्रेम और वात्सल्य भाव से पालित पोषित करने की प्रक्रिया का प्रतीक है। बीज फल तभी बन पाता है, ऐसा फल जो रसप्रद मधुर और मीठा हो जब उसे स्नेह और प्यार मिलता हो। स्नेह प्रेम मित्रता, परोपकार त्याग समपण बलिदान, विनम्रता, सतोष, सहनशीलता इन सब सद्वृत्तियों और मानवीय सद्भावनाओं का नाम ही तो धम है। नारी इन सब की आराधना धारणा और परिपालना कर पाती है। इसीलिये वह नारी है। नारी

अर्थात् न अरि, जिसका कोई शत्रु नहीं है और न वह किसी की शत्रु है। दूसरे शब्दों में वह अपने विशुद्ध प्रेम और वात्सल्य भाव से रक्त को भी दूध में बदल देती है। विश्व वात्सतल्य का यह भाव ही धर्म की कसौटी है।

प्रत्येक युग में नारी की धर्म और धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति विशेष श्रद्धा और निष्ठा की भावना रही है। भगवान ऋषभदेव, भगवान महावीर आदि तीर्थंकरों ने जिस चतुर्विध संघ की स्थापना की उसमे स्त्रियों को पुरुष के समान ही महत्त्व दिया गया है। इतिहास साक्षी है कि साध्वियों और श्राविकाओं की संख्या साधुओं और श्रावकों से अधिक रही है। भगवान ऋषभदेव से समय साधु 94000 थे तो साध्वियों 3 लाख, श्रावक 3 लाख 5 हजार थे तो श्राविकाएँ 5 लाख 54 हजार। भगवान महावीर के समय में साधु 14 हजार थे तो साध्वियाँ 36 हजार, श्रावक 1 लाख 59 हजार थे तो श्राविकाएँ 3 लाख, 18 हजार। आज भी विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों, तप-त्याग के प्रसंगों, व्रत-नियमों आदि में स्त्रियों की संख्या अधिक है और उनमें धार्मिकता का अंश अपेक्षाकृत अधिक होता है।

पारम्परिक तौर से स्त्रियो का मुख्य क्षेत्र घर गृहस्थी और परिवार रहा। परिवार ही समाज का मूल है और परिवार की धुरी है नारी। यदि नारी न हो तो परिवार और समाज की कल्पना संभव नहीं। नारी की ही शक्ति और व्याप्ति के कारण सामाजिक सम्बन्धों का विकास होता है। इस दृष्टि से नारी न केवल आध्यात्मिक उत्कर्ष में वरन् सामाजिक धर्म के उद्गम और उन्नयन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नारी ही वह उत्स है जिससे परिवार, समाज और अखिल मानवता रसग्रहण करती है। यदि नारी संस्कारशील है, धर्म-श्रद्धालु है, विवेकवती है, सद्गुणी और शील साधिका है तो यह रस अमृत बन कर बरसता है; और यदि वह मायावी है, भोगेच्छु है, काम पिपासु है, व्यसन विलासिनी है, कलहकारिणी है तो यह रस विष में बदल जाता है। इस दृष्टि से नारी की भूमिका मानवता के विकास अथवा विनाश दोनो में बड़ी प्रभावकारी है।

शिक्षा के क्षेत्र मे आज जो विकास हुआ है उससे नारी जाति भी प्रभावित हुई है। फल-स्वरूप नारी जाति का स्वाभिमान जागृत हुआ है, उसमे स्वावलम्बन का भाव विकसित हुआ है, उसका कार्यक्षेत्र घर, गृहस्थी और चूल्हे-चक्की से आगे बढा है। धार्मिक अनुष्ठानों से आगे बढ़ कर सामाजिक प्रवृत्तियों में, राजनैतिक आन्दोलनो मे, आर्थिक, व्यावसायिक क्षेत्रो मे भी आगे बढ़ी है। पर इन सबके समन्वित प्रभाव से नारी की चेतना अपेक्षाकृत उतनी सरल, स्नेहिल और सवेदनशील नहीं रही है। यही कारण है कि उसके जीवन मे भी धर्म और व्यवहार का द्वैत नजर आने लगा है। यह द्वैत टूटे और धर्म के जो मूल आदर्श है, उनकी वह धारक बने। इस दिशा मे सावधानीपूर्वक सचेष्ट रहने की आवश्यकता है।

धर्म जीवन में उतरा या नहीं, इसकी कसौटी सामाजिक रीति-रिवाज रहन-सहन, खान-पान, रस्म-रिवाज आदि है। यदि ये सब तौर-तरीके सात्विक है, जीवन के लिये सारभूत नहीं है,

इनमे पाखण्ड और प्रदर्शन नही है, यदि ये सभी के लिये सुखद और आल्हादकारी हैं इनसे किसी को पीडा और सताप नही होता है तो समझना चाहिये धर्म ने जीवन व्यवहार और सामाजिक नीति नियमो को प्रभावित किया है। पर आज ऐसा नही है। धर्म के नाम पर अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त की बातें तो बहुत होती हैं, पर व्यवहार मे उसका पालन नहीं के बराबर है। वैयक्तिक स्तर पर हम छोटे-छोटे जीवों के सूक्ष्म प्राणों को बचाने का ध्यान रखते हैं पर सामूहिक हिंसा के वातावरण का बाजार बढाते चलते हैं। हमारे उपास्य नितान्त अपरिग्रही हैं, पर हम उनके अनुयायी परिग्रह बढाने और उसका प्रदर्शन करने मे अपनी इज्जत समझते हैं। शास्त्र चर्चा में अनेकान्त की दुहाई देते हैं पर अपने ही घर मे विभिन्न सम्प्रदायों और गच्छो की दीवारें खडी करते हैं। यह द्वैत पूर्ण व्यक्तित्व हमे बाहर से ही नहीं, भीतर से भी तोडे हुए है। धर्म का कार्य सवेदनाओ को जाग्रत कर प्राणी मात्र को स्नेह के सूत्र मे जोडने का है। नारी में एक परिवार को दूसरे परिवार से जोडने की सहज वृत्ति और सस्कारगत क्षमता है। यदि वह विवेकपूर्वक धर्म के मर्म को हृदयगम कर ले तो मानव मात्र को स्नेह सूत्र में बाध सकती है और भावी सतान को ऐसे सस्कार दे सकती है कि समग्र विश्व परिवार बन जायें।

जो जीव शत्रु को, मित्र को अपने को और पराये को सबको एक रूप जानता है वह आत्मा को जानता है।[104] एक का दो मत कर, वर्ण विशेष मत कर क्योंकि यह अशेष त्रिभुवन एक ही देव से बसता है।[107] जो समभाव से बाह्य हैं उनके साथ सग मत कर अन्यथा तू चिन्ता-सागर मे पडेगा और तेरा अग भी जलेगा।[109] जिन भद्र पुरुषो का दुष्टो के साथ ससर्ग है उनके गुण नष्ट हो जाते हैं, लोहे के साथ मिली हुई अग्नि घन से पीटी जाती।[110]

हे वत्स! जो आत्माधीन सुख है उसी मे सन्तोष कर पराधीन सुख का चिन्तन करने वालो के हृदय का दाह नहीं मिटता।[151] आत्मा का ज्ञान को छोडकर अन्य स्वभाव नही है। यह जानकर हे योगी! पर पदार्थ में राग मत बाँध।[155] विषय कषायों से जिसका मन-सलिल क्षोभित नही होता हे वत्स! उसकी आत्मा शीघ्र ही निर्मल हो जाती है तथा उसे प्रत्यक्ष हो जाती है।[156]

आ योगीन्दुकृत परमात्म-प्रकाश

सृष्टि, सृष्टा और ज्ञान

प्रवीण चन्द्र छाबड़ा

सृष्टि है और इसका कोई सृष्टा है, इस मान्यता ने ईश्वर को सृष्टि के साथ सर्वोच्च सत्ता बना दिया है। वही विधाता, त्राता, नियन्ता और नाता हो गया है। बंधी हुई सत्ता को हर काम उसके नियमों के आधार पर करना होता है। ईश्वर को भी अपनी सत्ता के लिये भय और आतंक बनाये रखना होता है। इसी से ईश्वर ऐसी उपाधि है, जो अगम्य और अगोचर होकर भी अपनी अव्यक्त सत्ता मे सघन मूर्च्छा है। यह मूर्च्छा ही सच्चाई तक पहुंचने नही देती। आदमी जानते हुए भी कुछ कर नही पाता। ज्ञान और आचरण पर इतना कोहरा आ जाता है कि अपने मिथ्यात्व का जानना होता नही है। अज्ञान को भी वही जान सकता है, जिसके पास ज्ञान है। अंधकार को जानने या देखने के लिये भी आंखों का खुला होना आवश्यक है।

जैन दृष्टि अनेकान्तिक है, जो ज्ञान को कल्याणक मानती है। ज्ञान के समक्ष कोई आवरण रहता नही है। ज्ञान ही चरित्र होकर ग्रन्थियो का विमोचन करता है। वह अपने को देखता है, पढ़ता है और स्वयम् बुद्ध होता है। ज्ञान मे कोई सृष्टा होता नही है, इसी से सृष्टि भी नही होती। जो कुछ है, वह प्रवृत्ति है। यह सदा से है और सदैव बनी रहने को है। इसका आदि नही है, अन्त भी नही है। वलय मे कही ओर या छोर होता नही है। उसका हर अश अपना केन्द्र होता है, जो निज में सम्पूर्ण होता है। वही होते हुए भी नष्ट होता रहता है। पर्याय बदलते रहते हैं। पर्यायों का बदलते रहना ही तत्त्व की अपरिवर्तनशीलता के साथ बधे रहना है। यह दोनों का अविनाभाव सम्बन्ध है। हर बीता हुआ कल आज से जुड़ा है और आने वाला कल तभी आने को है, जब आज बीत कर कल हो जाता है। प्रकृति को जानना, समझना और उसमें होने वाले नित्य परिवर्तन को देखना ही जीवन का यथार्थ दर्शन है। अस्तित्व का नियम ही यह है कि समस्त पर्यायों का सृजन व विकास होता है तथा उसी के साथ बदलाव व विनाश भी होता जाता है। प्रकृति मे विकास और विनाश की यह परम्परा ही उसे बनाये रखती है। यही उसका अस्तित्व है। बाल स्वरूप समाप्त होता है, इसी से युवावस्था मे जाना होता है। यह होना, बीतना और बने रहना ही प्रकृति का सौन्दर्य है, कर्म-कौशल है। यह कौशल हर जीव का अपना होता है। वह अपने कर्म-प्रवाह में रहता है। वही कर्म का संवर करता है। स्वयम् कर्मों की निर्जरा करता है। कर्म से कर्म की यात्रा जहाँ हो जाती है, ज्ञान व आचरण एकात्म हो जाता है, आत्म-साक्षात्कार हो जाता है।

ईश्वरीय न्याय विधान मे होना ईश्वर की इच्छा पर होता है। वह हर पल और पग बाधे रहता है। वह स्वय सृष्टा होकर हर बदलाव की जिम्मेदारी लिये रहता है। वह स्वय न्याय करता है दण्ड देता है और प्रसन्न होने पर एश्वय प्रदान करता है। यही कारण है कि ईश्वर मे आस्था और विश्वास ही आस्तिकता मान ली गयी है। प्रकृति मे आस्था-अनास्था आस्तिकता-नास्तिकता की कोई भेद रेखा नही है। जो मनुष्य अपनी चेतना के स्तर पर नहीं जीता है, वह आस्तिक हो नही सकता। धम का मूल आधार ही अपने स्वभाव मे जीना है। हम प्रकृति मे जितना दूर होते हैं, कामना व वासना का विस्तार किये रहते हैं। प्रकृति से अपने जन्म-जात सम्बन्धो को भूल कर किसी भी देवता की पूजा उपासना मे कामनाओ की पूर्ति खोजने लगते हैं। यह ऐसी दुबलता है जो प्रकृति के साथ तदाकार होने नही देती। मनुष्य अपने आन्तरिक भय तथा लाभ के लोभ से सदैव आक्रान्त रहता है। उसे हर स्थल पर सुरक्षा चाहिये। ईश्वर की सत्ता से अपने को व्यामोहित किय रहना सबसे सरल उपाय है। इससे सन्ताप मिलता है कि वह किसी महाशक्ति या सत्ता के प्रति समर्पित है। इसी सत्ता को अधिक व्यापक और साकार करने के लिये अपने समय के मनीषी, तत्ववेत्ता अथवा विशिष्ट स्वरूप को अवतार या पैगम्बर के रूप मे प्रतिष्ठित कर पूजा-भक्ति करने लगते हैं।

अवतार मे ईश्वर का अश देखना भी इसीलिये होता है कि अपनी कामनाओ के लिये माध्यम अपेक्षित होता है। सकट जितने गहरे होते हैं भय उतना ही सघन होता है। आस्था भी उतनी बढती जाती है। पूजा-पाठ यज्ञ हवन होने लगते हैं। यह विस्मयकारी है कि ईश्वर धम और अध्यात्म की सर्वोच्च सत्ता होकर भी कम-फल म ऐश्वर्यवादी और भौतिक है। उसके अवतार स्वण मण्डित मन्दिरो के लिये होते हैं। ऋषियो ने अपनी बात कही और उसे ईश्वरीय वाणी करार दे दिया गया। उनकी वाणी मन्त्र होकर पवित्र हो गयी। यही ईश्वरीय पुस्तक हो गयी। ऐसी पुस्तक एक नही अनेक हो गयी। हर पुस्तक के आधार पर अलग-अलग मान्यता व व्यवस्थाए बन गयी। हर ऐसी पुस्तक अन्तिम और प्रथम है। अपनी पुस्तक के प्रति आग्रह इतना तीव्र है कि अन्य पुस्तकें तथा उनके ईश्वर पाखण्ड घोषित हैं। इन पुस्तको मे कौन सत्य है इसका निणय मनुष्य ही करता है और वही समर्पित होकर उनका सरक्षक बन जाता है। शायद इसीलिये ईश्वर का निर्देश है—मेरी शरण मे आओ, यही सवश्रेष्ठ माग है, इसी मे मगल है, शिव है। मुझ से अलग होकर अन्य की शरण भयावह है। इस प्रकार ईश्वर के ही अश ईश्वर के साथ बढते चले आये हैं। इस विधान ने मनुष्य को मनसा-वाचा-कमणा बन्धक कर दिया। हर पवित्र पुस्तक जीवन से अधिक महत्वपूण हो गयी है जिस पर हर समय बल प्रयोग करना धार्मिक कर्तव्य बना हुआ है। धर्मान्तरण को अपने ईश्वर की सेवा माना जाता है। इससे धम के साथ राजनीति भी हो जाती है।

यह विस्मयकारी है कि जैन दृष्टि ईश्वरवाद को मान्य नही करती उसी दशन के अनुयायी भगवान महावीर के स्तुति गान मे अवतारी कहने व मानने मे सकोच नही करते। जैन दृष्टि आध्यात्मिक है जो प्रकृति से तदाकार होकर रहती है। आज की सबसे बडी समस्या हो यह है कि

अपने-अपने ईश्वर को लेकर अलग-अलग समुदाय बने हुए हैं। अपनी कामना व वासना के लिये युद्ध आमन्त्रित किये रहते हैं।

जीवन एक पवित्र यात्रा है, जिसे पुरुषार्थ ही मगलमय करता है। जीवन की पीड़ा यही है कि हम आन्तरिक चेतना के लिये नही होते, अपने भीतर की ध्वनि को नही सुनते। हम स्वयं कल्पना में सृष्टि करते है, सृष्टा बनाते हैं और स्वयं आश्रित होकर अपने-आपसे पलायन किये रहते है। इससे अपने स्वरूप को ही मलिन करते है। जीवन किसी की इच्छा या कृपा से नही है, वह स्वय अपने लिये हैं। प्रकृति मे कहीं कोई हस्तक्षेप होता है तो वह अपराध है। प्रकृति जीवन के आधार देती है और वह पुरूषार्थ से खोजा जाता है। जैन दृष्टि ज्ञान और आचरण की दूरी रहने नही देती। काल की क्षमता को नकारना अपने आप से भागना है। सृष्टि के नियन्ता, विधाता हम स्वयं हैं। हमारे बिना सृष्टि रह नही सकती। हम स्वयं सृष्टि है और अपनी सृष्टि के सृष्टा भी हैं। भगवान महावीर बंधते नही हैं, बाँधते भी नही हैं। इसी से पूरे जैन वाड्मय में आत्म-कथ्य कहीं नही है। महावीर चरित्र होते ही नही हैं, वे चारित्र होते हैं।

अन्तरात्म की निरमलता से बाह्य वस्तु निरमल दिखती,
ज्ञान अगर हो विशद, विशदता ज्ञेयो मे है दिख पाती।
लेकिन जो जन बहिरात्मा हैं बाह्य पदार्थो में वे लीन,
हे प्रभु तेरी गुरण महिमा किस विध जानें वे गुरणविहीन ।। 24 ।।

हे प्रभु आप कुशल पुरुषार्थी बने आत्म निज शुद्ध किया,
आत्म तत्व की निरमलता से महज आत्म सुख प्राप्त किया।
मैं जग जन के बीच आपकी महिमा गाके यश फैलाता हूं,
और आप सम बनने को मैं पथ अनेकान्त पर चलता हू ।। 25 ।।

(लघु तत्व स्फोट का चतुर्थ सर्ग खण्ड 2 का शेष भाग)

महावीर का चिंतन व पर्यावरण संतुलन

डॉ० श्रीमती कुसुम पटोरिया

अखिल ब्रह्माण्ड मे सभवत पृथ्वी वह ग्रह है जहा जीवन विविध रूपो मे विकसित हुआ है। इस जीवन का अस्तित्व, उसकी पुष्टि और वृद्धि पर्यावरण पर निभर है, परन्तु आज पर्यावरण के असन्तुलन के कारण उस ग्रह का अस्तित्व ही खतरे मे पड गया है। तीव्र मारक शस्त्रो का तुलना मे अधिक भयावह है यह पर्यावरण का असतुलन।

पर्यावरण सन्तुलन वर्तमान जीवन की समस्या है जो वैज्ञानिक प्रगति से उपजी है प्रकृति-विजेता होने की प्रतिस्पर्धा से पनपी है। यह वैज्ञानिक शोधो अनियोजित व सर्वेक्ष विचार-विमश के बिना उपभोग का परिणाम है।

भगवान महावीर के युग मे समवत यह समस्या नही रही होगी। साथ ही भगवान महावीर का चिंतन आध्यात्मिक जीवन को केन्द्र बनाकर हुआ है। उनके चिंतन का बिन्दु आत्मचेतना से उद्भूत होता है आत्मा की परिधि मे घूमता है, उसी के केन्द्र मे विश्रान्त होता है पर उस आत्मचिंतन में ऐसे अनेक प्रश्नो के उत्तर भी हैं, ऐसी अनेक समस्याओं के समाधान भी हैं जो प्रश्न जो समस्याए आज की हैं।

वैज्ञानिक प्रगति जितनी तेजी से हुई है, प्रदूषण का खतरा भी उतनी ही तेजी बढा है, कारण प्रकृति जो वस्तु हजारो वर्षों मे बना पाती है उसे हम एक क्षण मे खत्म करने पर तुले हैं। इस असतुलन के कारण एक ओर विकास हुआ है तो दूसरी ओर विनाश। इस शताब्दी मे प्रकृति का इतना दोहन हुआ है कि हमारी प्राणदायिनी सहचरी होकर भी वह हमसे रुष्ट हो चली है। मानव के निहित स्वार्थों ने पृथ्वी जल, अग्नि, आकाश, वायु पाचो भौतिक तत्वों को इतना प्रदूषित कर दिया है कि पर्यावरण सतुलन एक समस्या बन गया है। रासायनिक खाद के अन्धाधुन्ध उपयोग व सघन खेती के कारण भूमि की उवरा शक्ति तेजी से घट रही हैं भूक्षरण के कारण उवरा मिट्टी की सतह लगातार वह रही है। कभी अतिवृष्टि और कभी अनावृष्टि के खतरे बढ रहे हैं। देश का पचहत्तर प्रतिशत पानी प्रदूषित हो चुका है। वनो की कटाई का परिणाम चेरापूजी जैसी भूमि का बजर हो जाना है।

जीवन और प्रकृति का सामंजस्य ही पर्यावरण सन्तुलन है। भगवान महावीर के सारे सिद्धान्त इस सामञ्जस्य को प्रतिफलित करते है। उन्होंने देखा कि सांसारिक जीवन परस्पर आश्रय से ही चलता है। पशु-पक्षी जीवजंतु मनुष्य आदि सभी चराचर प्राणी अपने जीवन के लिए दूसरों पर आश्रित हैं। परस्पर उपकार से उनका अस्तित्व कायम है—"परस्परोपग्रहो जीवानाम्"। परस्पर उपकारक भाव की समाप्ति ही पर्यावरण असंतुलन है।

भगवान महावीर का यह सन्देश कि "जिओ और जीने दो" इसी परस्पर उपकारक की भाव जागृत करता है। "जिओ और जीने दो" का आशय यह है कि अपने जीवन को इतना संयमित और तप: पूत बना लो कि जीवन से किसी को कष्ट न हो, तभी तुम जीवन का आनन्द उठा सकोगे और दूसरों को जीवन का आनन्द उठाने दोगे।

महावीर के प्रवचनों में यह बात बार-बार प्रतिध्वनित हुई है कि मनुष्य का मैत्रीभाव केवल मनुष्य तक सीमित नही रहना चाहिए। उन्होंने तो प्राणिमात्र से मैत्रीभाव रखने को कहा है—

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमन्तु में।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वैरं मज्झं ण केणवि ॥

जैनाचार्यो ने इसी मैत्रीभाव की कामना की है—

सत्त्वेपु मैत्रीं गुणिपु प्रमोद, क्लिष्टेपु जीवेपु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थ्यभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥

आत्मसमता की भित्ति पर, समतादर्शन की नीव पर ही मैत्री का प्रासाद खड़ा किया जा सकता है। समता-दर्शन "समण" (श्रमण) संस्कृति का प्राण है। समता का मूल है आत्मसमता, उसी से अन्य समताएं आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, वैचारिक आदि पनपती हैं। सभी आत्माएं चाहे वह मनुष्य की हों या चीटी की समान हैं। शक्ति की दृष्टि से न न्यून है और न अतिरिक्त। इस समता दर्शन से ही अहिंसा, दया और करुणा की भावनाएं पनपती हैं।

जब तक हमने प्रकृति को मित्र माना था, पर्यावरण मे सन्तुलन था। प्रकृति को हमने जीवनदायिनी माता के रूप में देखा और जाना था, तब कोई असन्तुलन नही था। हमारी दृष्टि में विश्व एक परिवार था। प्रकृति से मित्रता का, आत्मीयता का भाव था, तब ससुराल जाती कालिदास की शकुन्तला को प्रकृति के सारे उपादान विदा करते हैं, क्योंकि वे सब उसके सखा और बन्धु थे। इसीलिए प्रकृति को जीतने की भाषा हमारी भाषा हो ही नही सकती। यह सोच हमारा नही है, इसमे शत्रुता की भावना है। विश्वमैत्री की दृष्टि शत्रुभावना की विरोधी है। प्रकृति यदि मां हैं, तो उसे जीतने का प्रश्न नही उठता। यदि हम प्रकृति के अंश हैं, तो कोई अंश अपने सम्पूर्ण को जीतता नही। प्रकृति ने ही विश्व में सन्तुलन स्थापित कर रखा है, सामंजस्य बना रखा है।

पर्यावरण सामजस्य बनाये रखने के लिए एक नये विज्ञान की आवश्यकता पश्चिम म महसूस की जा रही हैं। यह विज्ञान 'इकोलॉजी'' जीवन और प्रकृति के आन्तरिक सम्बन्ध का अध्ययन है। इस सम्बन्ध को हमने हजारो वर्षा पूव स्वीकार किया था हजारो वर्षों पूव इस ज्ञान को अर्जित कर लिया था। परन्तु आज हमारा ध्यान उस परम्परा पर नही है। जब यह 'इकोलॉजी' विकसित विज्ञान ही जायगी तभी हमारा ध्यान उस पर पहुचेगा। अहिसा के पालन के बिना पर्यावरण मे सामजस्य बनाये रखना सम्भव नही है। जिजीविषा की आधारभित्ति पर ही अहिंसा का चित्रण हुआ है। अन्तर और वाह्य समस्त ग्रथियों मे मुक्त, स्फटिक की तरह पारदर्शी अत स्पष्टदर्शी प्रज्ञा वाले निग्रथो न जिजीविषा को देखकर प्राणिवध का निषेध किया था।

जन तीर्थंकर सम्भवत पहले दार्शनिक थे जिन्होंन अपने चिंतन का लक्ष्य मानवकल्याण तक सीमित नही रखा उनकी दृष्टि मे पशु पक्षी या वनस्पति ही नही अत्यत सूक्ष्म जलकायिक, वायुकायिक आदि जीव भी थे। उन्होंने स्वय अहिंसा का सर्वांगीण पालन कर अहिंसा का सूक्ष्म विवेचन कर जगत् के असख्य प्राणियों के जीवन की रक्षा की कामना की थी। जीवों म अभय का अमृत सजीवन वितरित किया था मुनि और गृहस्थ दोनो के लिए अहिंसा के पालन की कोटिया निर्धारित की थी। एक सोपान-पक्ति निर्मित की थी जिस पर आरोहण करते हुए सामान्य व्यक्ति भी अहिंसा के शिखर पर पहुच सकता है।

जावंति लोए पाणा तसा अदुव थावरा ।
ते जाणमजाण वा, ण हणो नि घायए ॥

अर्थात् लोक मे जितने प्राणी हैं त्रस या स्थावर उनका ज्ञात/अज्ञात रूप से हनन नही करे।

अहिंसा की वह भावना दया या करुणा से ऊपर है। दया और करुणा का पात्र होता है—सकटग्रस्त व्यक्ति। अहिंसा का पात्र लोक का हर चेतन प्राणी है। करुणा और दया सामयिक भावनाएँ हैं अहिंसा सार्वकालिक। अपने प्रत्येक काय मे मेरे द्वारा किसी प्राणी को शारीरिक-मानसिक कष्ट न पहुँचे यह भाव विद्यमान रहना ही अहिंसा है। अहिंसक व्यक्ति इसलिए अहिंसा मे ही जीता है। अहिंसा कभी उससे दूर नही होती।

आदाणे णिक्खेवे वोसिरणे ठाणगमणसयणेसु ।
सव्वत्थ अप्पमत्तो दयावरा होदु हु अहिंसाओ ॥

वस्तु उठाने मे रखने में बैठने चलने, सोने यहा तक कि व्युत्सग मे भी अप्रमत्त रहना चाहिए। इस प्रकार का दयालु ही अहिंसक होता है। वही निभय होता है—

सव्वओ पमत्तस्स भय सव्वओ अप्पमत्तस्स णत्थि भय ॥

अर्थात् प्रमादी को सबसे भय होता है और अप्रमत्त को किसी से भी भय नही होता।

अहिंसक के हृदय में दूसरों के प्रति भी उतना ही प्रेम होता है, जितना अपने प्रति। जिस प्रकार कोई भी सामान्य व्यक्ति आत्मवध नही कर सकता, उसी प्रकार कोई भी अहिंसक दूसरे का वध नही कर सकता, क्योंकि उसकी दृष्टि मे जीववध आत्मवध हैं, जीवदया आत्मदया है अतः आत्मकामियो को जीवहिंसा त्याज्य है।

जीववहो अप्पवहो जीवदया अप्पणो दया होइ।
ता सव्वजीवहिंसा परिचत्ता अत्ताकामेहि ॥

भगवान महावीर ने ये विचार जीवो के आध्यात्मिक कल्याण के लिए व्यक्त किये थे। आध्यात्मिक कल्याण ऐहिक जीवन को भी समुन्नत और सुखी बनाता है। आज संचार माध्यमों द्वारा जनसाधारण को प्रबोधित किया जाता है कि पानी मूल्यवान है, उसको बरबाद न करें। भगवान महावीर ने कहा कि पानी जलकायिक जीवो का निवास है, उन जीवों की रक्षा के लिए उसका दुरुपयोग न करे, उसे प्रदूषित कर उन असंख्य जीवो का घात न करे। अब नई शोधों से इन जलकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवो का अस्तित्व स्वीकार किया जा रहा है, पर भारत मे यह विचार समण (समतामूलक) विचारधारा मे न मालुम कब से चला आ रहा है। भगवान महावीर को यह परम्परा भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा से मिली थी, जिसका उन्होंने व्यवहारिक रूप प्रस्तुत किया था। अहिंसा का सारा व्यापार प्रकृति के साथ सामंजस्य के रूप में ही प्रतिफलित होता है।

रासायनिक खादों के उपयोग से एक ओर हमारा भोजन विषाक्त हुआ है, दूसरी ओर पृथ्वी की उत्पादकता घटी है। कीटनाशको का जितना प्रयोग हुआ है, उतनी ही कीटको की प्रतिरोध क्षमता बढी है और उन मारक औषधियों का जहर हमे पीना पड़ रहा है। हमने चन्द्रयात्रा की, नित नये उपग्रह छोड़ रहे है, परन्तु उसके दुष्परिणाम हमारे समाने आने शेष है। वैज्ञानिक अकाश में विद्यमान ओजोन की परत मे छेद होने का खतरा महसूस कर रहे है।

वैज्ञानिक प्रयोगो और शोधों का उपयोग हमें उसके दूरगामी परिणामों को ध्यान में मे रखकर करना होगा, तभी पर्यावरण सन्तुलन होगा। महावीर के विचारो पर ध्यान देना होगा, स्वीकार करना होगा, सृष्टि पर जितना अधिकार मानवों का है, उतना ही अधिकार मानवेतर प्राणियों का। हमारा जीवन सयुक्त जीवन है। हमारा विश्व संयुक्त परिवार है अतः एकेन्द्रिय जीवो के प्रति भी सदय होना होगा। अहिंसक वही होता है, जो पेड से स्वय गिरे फलों से संतुष्ट हो जाता है।

यह सारा ससार जीवाकुल है। इसमे चलने, बोलने की तो बात ही क्या सास लेने मे भी जीवो का घात होता है। यह बात उस तपस्वी वैज्ञानिक ने ढ़ाई हजार साल पहले अनुभव कर ली थी, बल्कि यह विचार तो उनकी परम्परा मे बहुत पहले मे चला आता था। फिर अहिंसा का पालन कैसे सम्भव है ? इसका उन्होने स्पष्ट उत्तर दिया था कि—अप्रमत्त होना अहिंसक होने के लिए आवश्यक है। अप्रमादभाव से ही अहिंसा का पालन होता है—

"जो होदि अप्पमत्तो, अहिंसगो हिंसगो इदरो।"

इसीलिए उन्होने अहिंसा और समता को विशेष ज्ञान (विज्ञान) कहा था—"अहिंसा समय चेव एतावते वियाणिया।" इन्ही को जानना ज्ञानी होने का सार है।

पर्यावरण से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करने के लिए राज्यस्तर से लेकर विश्व स्तर पर सगठन बनाये गये हैं। 5 जून 'विश्व पर्यावरण दिवस" के रूप मनाया जाता है। यह सब पर्यावरण प्रदूषण की गम्भीरता के द्योतक है। प्राकृतिक सन्तुलन के लिए वृक्षारोपण आदि कार्यक्रमो के साथ जल, भूमि वनस्पति के प्रति सदय भाव रखना भी अत्यन्त आवश्यक है।

आजाद चौक, सदर
नागपुर–44 00 01

जब तक देह धारी आत्मा आत्म-मुक्ति हेतु देह मे भी शुद्ध-हित विहित ब्रह्म नही देखता है तब तक यह अपार समुद्र है, यह श्रेष्ठ पवत है, यह श्रेष्ठ तीर्थ है, यह बडी-बडी लहरो वाली रेवा है अन्य गगा है, अथवा ये बलराम हैं ये हरि हैं (ये चक्रवर्ती हैं, ये तीर्थंकर हैं)—इस प्रकार उदभ्रान्त अन्तरात्मा हुआ बहुत भटकता रहता है।[75] सब राजा महाराजा मेरे युगल चरण कमलो को सिर पर रखते हैं लक्ष्मी मेरे भावो के अधीन है, शरीर भी मरा निरोग है, मेरे विघ्न करने वाला कौन है—इत्यदि सुख के हेतुओ पर 'कि ततो" का मुग्दर पडता है। अत उसका थोडा स्थिर मन से ध्यान कर जहा 'कि ततो' नही है।[76] शत्रुओं के सिर पर पैर रखा तो क्या हुआ, सकल कामनाओ की पूर्ति करने वाली विभूतिया हुई तो क्या हुआ, वैभव से प्रिय जनों को सन्तुष्ट किया तो क्या हुआ, शरीर धारियो के शरीरो से कल्पान्त तक स्थिति रखी तो क्या हुआ?[77] अत हे चित्त। उस अनन्त अजर परम प्रकाश का चिन्तन कर जिसके आनुषगिक फल रूप भुवनाधिपति के ये भोग आदि कृपण जनों को अभीष्ट होते हैं।[78]

आ योगिन्द्रकृत अमृताशीति

शुभ भाव से कर्म क्षय होते हैं

कन्हैयालाल लोढ़ा

विद्वान लेखक का कहना है कि शुभ भाव परिणामों की विशुद्धि का नाम है। उससे पुण्य कर्म के अनुभाग की रचना होते भी वह घातियादि पाप कर्मों के क्षय का ही कारण है, वन्ध का नहीं; क्योंकि वह क्षायोपशमिक भाव है, औदयिक नहीं। —सम्पादक

जैनागम कषाय पाहुड़ की जयधावला टीका मे श्री वीरसेनाचार्य ने कर्म के वंध व क्षय के कारणों का विवेचन करते हुए कहा है कि शुभ परिणामों से कर्मक्षय होते है, यथा—

"सुह–सुद्ध परिणामेहि कम्मक्खयाभावेतक्खयाणुववत्तीदो। उत्तं च
ओदइयावंधयरा उवसम-खय-मिस्सया य मोक्खयरा।[1]
भावे दु परिणामिओ करणोभय वज्जिओ होइ ॥1॥

अर्थात् शुभ और शुद्ध परिणामों से कर्मों का क्षय न माना जाय तो फिर कर्मों का क्षय हो ही नहीं सकता। कहा भी है—औदयिक भावों से कर्म वंध होता है। औपशमिक, क्षायिक और मिश्र (क्षयोपशमिक) भावों से मोक्ष होता है तथा परिणामिक भाव वंध और मोक्ष इन दोनों के कारण नही है।

उपर्युक्त उद्धरण में टीकाकार श्री वीरसेनाचार्य ने जोर देकर स्पष्ट शब्दों मे कहा है कि क्षायोपशमिक भाव (शुभ, शुद्ध) से कर्म क्षय होते हैं कर्म-वंध नही होते हैं। कर्म-वंध का कारण तो एक मात्र उदय भाव ही है। इसे समझने के लिए हमें कर्म-वंध के कारणों का विचार करना होगा।

कर्म वंध चार प्रकार का है—(1) प्रकृति वंध (2) स्थिति वंध (3) अनुभाग वंध और (4) प्रदेश वंध। इनमें मुख्य है, स्थिति वंध। कारण कि अनुभाग वंध निर्भर करता है प्रदेश वंध पर, जैसा कि कहा है—'पदेसेहि विणा अनुभागाणुववत्तीदो'[2]

---

1. जयधवला पुस्तक 1 पृष्ट 5।
2. धवला पुस्तक 6 पृष्ट 201।

अर्थात् प्रदेश बंध के बिना अनुभाग बंध नहीं हो सकता तथा 'प्रकृति और प्रदेश बन्ध स्थिति बंध के अभाव मे बन्ध सज्ञा को प्राप्त नहीं होते हैं जसा कि कहा है—

'जोगापयडिपदेसा ठिदि अणुभागा कसायदो होंति ।
अपरिणदुच्छिण्णेसु य बंध ट्ठिदि कारण णत्थि ॥[1]

अर्थात् प्रकृति और प्रदेश ये दोनों ही योगों के निमित्त से होते हैं और स्थिति व अनुभाग कषाय के निमित्त से होते हैं । कषाय रहित अवस्था स्थिति बंध का कारण नहीं है, इससे कर्म बंध का कारण भी नहीं है ।"

इसी सिद्धात को स्पष्ट करते हुए श्री वीरसेनाचाय ने कहा हैं—

"सादा वेदणीयस्स बंधो अत्थि त्ति चेद । ण, तस्स ट्ठिदि-अणुभागबंधाभावेण सुक्कुड्डु पक्खित्त वालुव मुट्ठिव्व जीव सबंध विदिए समए चेव णिवदतस्स बंध ववएस विरोहादो ।"[2]

अर्थात् स्थिति बन्ध और अनुभाग बंध के अभाव में शुष्क भीत पर फेंकी गई मुट्ठी भर बालुका के समान, जीव से सम्बंध होने के दूसरे समय मे ही पतित हुए सातावेदनीय कर्म को 'बंध' सज्ञा देने में विरोध आता है"

तात्पर्य यह है कि स्थिति बंध के अभाव मे कर्म ठहरता ही नही है, अत उसे कर्मबंध मानने मे विरोध आता है । धवलाकार ने इसे आगे स्पष्ट रूप से समझाया भी है, तथा जयधवला पुस्तक 1 पृष्ठ 92-93 पर भी इसका विशेष स्पष्टीकरण किया है । आशय यह है कि स्थिति बंध होने पर ही प्रकृति प्रदेश व अनुभाग 'बंध अवस्था' को प्राप्त होते हैं । स्थिति बंध होता है कषाय से । कषाय औदयिक भाव है । अत औदयिक भाव ही बंध का कारण है । औदयिक भावों में भी गति जाति आदि सब औदयिक भाव बंध के कारण नही है, केवल घाती कर्म रूप औदयिक भाव ही बंध के कारण हैं ।

दया दान अनुकंपा, वात्सल्य वैय्यावृत (सेवा) मैत्री प्रमोद करुणा माध्यस्थ, सरलता, मृदुता आदि समस्त सद्प्रवृत्तियाँ या सद्गुण किसी कर्म के उदय से नही होते हैं, अत इन्हें कर्म बंध का कारण मानना सिद्धात के विरुद्ध है, तथा समस्त सद्गुण जीव के स्वभाव रूप होते हैं विभाव रूप नहीं । विभाव दोष रूप ही होता है गुण रूप नही । स्वभाव से तो कर्म क्षय होते हैं कर्म बंध नहीं । दया, दान सेवा परोपकार अनुग्रह कृपा आदि समस्त सद् प्रवृतियाँ गुण रूप होने से शुभ रूप ही होती है अत शुभ कर्म क्षय में ही हेतु है बंध मे नही । दोष कभी शुभ नही होता अशुभ ही होता है । अत दोष से पाप से कर्म बंधते हैं गुण से नहीं । ऊपर कह आए हैं कि स्थिति बंध ही से कर्म 'बंध रूप' को प्राप्त होते हैं । स्थिति बंध होता है कषाय से । अत कषाय के उदय रूप अशुभ भाव

---

1 गोम्मट्टसार कर्मकाण्ड गाथा 257 धवला पुस्तक 12 पृष्ठ 289 ।

2 धवला पुस्तक 13 पृष्ठ 54 ।

ही कर्म वंध का कारण है, शुभभाव नही। कर्म का बंध व क्षय स्थिति बंध पर ही निर्भर करता है। स्थिति के क्षय से ही कर्म का क्षय होता है जैसा कि कहा है—

"पुव्वा संचियस्स कम्मस्स कुदो खओ ? ट्ठिदिक्खयादो।
ट्ठिदि खंडओ कुत्तो ? कसायक्खयादो।"[1]

अर्थात् पूर्व संचित कर्म का क्षय किस कारण से होता है ? उत्तर-स्थिति के क्षय से। स्थिति का क्षय किससे होता है ? कषाय के क्षय से। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि स्थिति के वंध से ही कर्म का वंध होता है व स्थिति के क्षय से ही कर्म का क्षय होता है।

कर्म सिद्धान्त के अनुसार स्थिति वध ही वंध है और स्थिति का क्षय ही कर्म क्षय है। यह सिद्धान्त पुण्य-पाप प्रकृतियो पर समान रूप से लागू होता है तथा स्थिति वंध कषाय से होता है, अत: स्थिति बध पाप का हो या पुण्य का, अशुभ ही है, जैसा कि कहा है—"सव्वाण ठिई अशुभा उक्कोसुक्कीसकिलेसेणं"[2]

अर्थात् समस्त कर्म प्रकृतियो (तीन आयु को छोड़कर) का उत्कृष्ट स्थिति वंध उत्कृष्ट संक्लेश (कषाय) से वधता है, अत: अशुभ ही पाप का द्योतक है। यहाँ तक कि तीर्थंकर नाम कर्म जैसी प्रकृष्ट पुण्य प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति वध भी उत्कृष्ट संक्लेश से होता है, अत: पुण्य का संवंध स्थिति वंध से नही है, अनुभाग से है"[3] और यह नियम है कि शुभ (पुण्य) प्रकृतियों का अनुभाग विशुद्धि से और अशुभ (पाप) प्रकृतियों का अनुभाग सक्लेश से होता है। जैसा कि कहा है—सुह पयडीण विसोही तिव्वो असुहाण संकिलेसेण"[4]। यहाँ 'विशुद्धि' शब्द उदयमान कषाय में कमी होने के अर्थ मे आया है। इसका अभिप्राय यह है कि कषाय मे जितनी-जितनी कमी होती जाती है उतना-उतना पुण्य प्रकृतियों का अनुभाग बढ़ता जाता है व पुण्य प्रकृतियों की स्थिति घटती जाती है। शुभ योग उपयोग से साथ ही साथ पाप प्रकृतियों की स्थिति और अनुभाग दोनों भी घटते हैं। फलत: जब पुण्य प्रकृति का अनुभाग उत्कृष्ट अवस्था में पहुंचता है तो स्थिति वंध घटते-घटते जघन्य अवस्था को प्राप्त होता है और फिर स्थिति वंधना वंद हो जाती है और अनुभाग उत्कृष्ट का उत्कृष्ट ही रहता है—तप-सयम, संवर-निर्जरा रूप किसी भी साधना से पुण्य के उत्कृष्ट अनुभाग में अश मात्र भी कमी नही होती है। यही कारण है कि जब जीव मुक्ति मे जाता हैं तो उम समय पुण्य का उत्कृष्ट अनुभाग ही होता है यहां तक कि वीतराग अवस्था मे केवली समुद्घात व योग निरोध से भी पुण्य के उत्कृष्ट अनुभाग मे किंचित् भी कमी नहीं होती है, जैसा कि कहा है—

---

1. धवला पुस्तक 1 पृष्ठ 5।
2. कर्म ग्रन्थ भाग 5 गाथा 52, गोम्मट्टसार कर्म काण्ड गाथा 134, तत्वार्थ राजवार्तिक अ. 6 सूत्र 3।
3. तत्वार्थ सूत्र अ. 6 सूत्र 3-4 राजवार्तिक टीका।
4. गोम्मट्टसार कर्मकाण्ड गाथा 163।

सुहाण पयडीण विसोहिन्ने केवलि समुदग्घादेण जोगणिरोहेण वा ग्रनुभागघादोणत्थि त्ति जाणवेदि । खीण कषाय सजोगीसु ट्ठिदि ग्रणुभाग घादेसु सतेसु वि सुहाण पयडीण ग्रणुभाग घादो णत्थि त्ति ग्रत्थावत्तिसिद्ध ॥[1]

अथ —शुभ प्रकृतियो के ग्रनुभाग का घात विशुद्धि, केवलि समुद्घात, व योग निरोध से नही होता । क्षीण कषाय व सयोगी गुण स्थानो मे स्थिति घात व ग्रनुभाग घात होने पर भी शुभ प्रकृतियो का ग्रनुभाग का घात नही होता है । यह सिद्ध होने पर स्थिति व ग्रनुभाग से रहित ग्रयोगी गुण स्थान मे शुभ प्रकृतियो का उत्कृष्ट ग्रनुभाग होता है ।

ग्रभिप्राय यह है कि वीतराग केवली के सब पुण्य प्रकृतियो का उत्कृष्ट ग्रनुभाग होता है ग्रौर मुक्ति प्राप्ति के समय तक वह उत्कृष्ट ही रहता है । इसमे लेश भी कमी नही होती है । तथा सभी कर्मों की स्थिति के क्षय हो जाने के कारण देह छूट जाने के साथ सब पुण्य ग्रौर उनके फल भी छूट जाते हैं । पुण्य का क्षय किसी भी साधना से कदापि सभवनही है । जैसा कि कहा है—सम्मत्तेण सुदेण य विरदीए कसायणिग्गह गुणेहिं जो परिणदो सो पुण्णो ।[2] ग्रर्थात् जो सम्यक्त्व श्रुतज्ञान, विरति (महाव्रत-सयम) कषाय निग्रह रूप गुणो मे परिणत होता है वह पुण्य है । तात्पय यह है कि सयम व चरित्र से भावो की विशुद्धि मे वृद्धि होती है जिससे पुण्य के ग्रनुभाग मे वृद्धि होती है । यह विशुद्धि साधना के उत्कृष्ट रूप क्षपक श्रेणी मे विशेष होती है, ग्रत चारित्र की क्षपक श्रेणी के समय उत्कृष्ट साधना से पुण्य के उत्कृष्ट ग्रनुभाग का सजन होता है । वीतराग ग्रवस्था मे जब चारित्र यथाख्यात रूप से पूणता को प्राप्त हो जाता है तब पुण्य भी ग्रपनी पूणता को, उत्कृष्ट ग्रवस्था को प्राप्त हो जाता है । उत्कृष्ट हो जाने से फिर ग्रागे बढने को गु जाइश नही रहती, ग्रत वीतराग ग्रवस्था मे सदा पुण्य का ग्रनुभाग उत्कृष्ट ही रहता है । यह ग्रटल नियम है कि पुण्य का ग्रनुभाग सयम, तप चारित्र ग्रादि समस्त साधनाग्रो की वृद्धि से बढता ही है ग्रत पुण्य का ग्रनुभाग किसी भी साधना से क्षय नही हो सकता । यदि किसी को पुण्य के ग्रनुभाग का क्षय इष्ट ही हो तो उसका एक मात्र उपाय है सक्लेश भाव । पाप की वृद्धि एक मात्र पुण्य के ग्रनुभाग के क्षय का उपाय हैं ग्रन्य कोई उपाय मेरी जानकारी मे नही है । यह नियम है कि शुभ परिणामो की वृद्धि से पुण्य प्रकृतियो के ग्रनुभाग मे वृद्धि होती है जिससे पाप प्रकृतियो का स्थिति बध व ग्रनुभाग बध व पुण्य प्रकृतियो का स्थिति बध का क्षय होता है । ग्रत शुभ भाव कम क्षय के ही कारण है, कम बध के नहीं ।

□

1 धवला पुस्तक 12 पृष्ट 18
2 मूलाचार गाथा 234 ।

भगवान महावीर और उनकी प्रेरणायें

—सत्यंधर कुमार सेठी, उज्जैन

विश्ववंद्य भगवान् महावीर इस युग के एक ऐतिहासिक एवं अलौकिक महा मानव के रूप में इस भारत वसुंधरा पर अवतरित हुए थे। उनके जीवन की समस्त साधनाये आत्म विकास के लिये तो थी ही, लेकिन् उस साधना काल में उनके जीवन का लक्ष्य राष्ट्र निर्माण और लोक-कल्याण का भी था; क्योंकि महावीर का काल बड़ा वीभत्स था। राष्ट्र में चारों तरफ हाहाकार चात्कार और अमानवीय भावनाये पनप रही थी। मानव दानव बन रहा था—वर्ग भेद, जातिभेद का जोर था। ऊँच और नीच की भावनायें थी। अबलाये सतायी जाती थी। मातृ जाति का गहरा अपमान था। राष्ट्र की इन समस्त स्थितियों ने भगवान् महावीर की आत्मा को आन्दोलित कर दिया था। अत: वे चाहते थे एकता के आधार पर राष्ट्र का पुनर्निर्माण हो। जिससे प्राणी मात्र में सह अस्तित्व की भावनायें पैदा हो और वे शान्ति मे श्वास ले सकें।

भगवान् महावीर प्रारम्भ से ही उग्र चितक थे। वे एकांत कक्ष मे बैठकर सोचा करते थे इन विचारों को मूर्तरूप देने के लिए एक दिन भगवान् महावीर की अन्तर्आत्मा ने आव्हान् किया कि महावीर यदि तू आत्म कल्याण और राष्ट्र कल्याण करना चाहता है तो तुझे उस अलौकिक जीवन में जाना है जिस जीवन का लक्ष्य है त्याग, तपस्या और संयम के बल पर स्वय का निर्माण और राष्ट्र का निर्माण। यह विशाल वैभव जीवन नही। यह तो नश्वर है और ऐसा बधन है जिससे मानव कभी भी शोषण से मुक्त नही हो सकता।' इस संबोधन ने महावीर को वह प्रेरणा दी जिससे प्रेरित होकर वे चले गये जगल के एकात प्रदेश में समस्त वैभव और राजपाट को छोडकर। अगणित जनता देखती रही इन महान् मानव के उन कदमों को लेकिन उन महा मानव ने पीछे की तरफ नही देखा। भगवान् महावीर ने समस्त राष्ट्र की समस्याओ को हल करने के लिए बारह वर्ष तक मौन रह कर एकांत साधना की, और उस साधना काल मे सबसे पहिले उन महा मानव ने अपने स्वयं के जीवन का निर्माण किया। इन्द्रियो का निग्रह किया, त्याग और सयम के आधार से अमानवीय भावनाओ के विकारो को खत्म करने के लिए वह दिगम्बर जीवन अपना लिया जिस जीवन मे रच मात्र भी क्रोधादिक भावो को कोई स्थान नही था। वह तपस्वी जीवन था। उस जीवन का एक ही लक्ष्य था—अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकांत विचार धारा के आधार से जीवन और राष्ट्र निर्माण।

भगवान् महावीर के चिंतन में सबसे बड़ी विशेषता थी समस्त प्राणियो के प्रति समता भाव। उन्होने अध्ययन किया एकात साधना में कि मानव ही जीवन जीने का अधिकारी नही, वनस्पति जगत् से लेकर कीट पतग चीटी और पशु पक्षी तक को जीवन जीने का हक है; क्योंकि

मनुष्य की तरह ये भी प्राणधारी जीव हैं और ये सब राष्ट्रीय सम्पत्ति है। इनके विना राष्ट्र की आत्मा स्वस्थ नही रह सकती। अत भगवान् महावीर ने मूक साधना के वाद एक ही नारा दिया— जीवो और जीने दो' जिसका आधार है अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकात विचारधारा। महावीर ने इन विचारो के प्रचार और प्रसार के लिए अपना समस्त जीवन अर्पणकर दिया। महावीर के इन विचारो को सुनने के लिए वडी वडी सभायें भरती थी जिन में अलौकिक दिव्य मानव ता आते ही थे लेकिन् पशु और पक्षी भी उन महा मानव की वाणी को सुनकर आत्म-शाति का पाठ पढते थे। महावीर के दिव्य सदेश ने कितने ही मठाधीशो का सिंहासन हिगा डाला जिनका लक्ष्य था शोषण और पीडन। धम के नाम पर मदिरों मे खून की नदिया बहती थी, वर्ग भेद का जोर था, ऊँच नीच की भावनायें पनप रही थी, पाखण्ड वाद वढा हुआ था। महावीर के अहिंसा के सिंहनाद ने इन विभीषिकाओ को खतम किया। प्राणी मात्र को शाति की श्वासें मिली, और विश्व ने इस परिवतन को स्वीकार किया। यह एक क्रातिकारी परिवर्तन था। इमसे मानवमात्र को जीवन जीने को पद्धतियाँ बन गई। महावीर ने कहा कि जीवन जीना सीखो। जीवन दो तरह का होता है एक आध्यात्मिक और एक शारीरिक। आध्यात्मिक जीवन से आत्मा स्वस्थ रहती है, और शारिरिक जीवन से वाह्य जीवन सुखी होता है। आध्यात्मिक जीवन वह जीवन है जिस मे काम क्रोधादिक विचार, भावनायें नही है। अत भगवान् महावीर ने जीवन को शोधने के लिए सयम माग बताया था जिससे मानव आकाक्षाओ स दूर होकर जीवन का विकास करें।

राष्ट्र को प्राणवान् बनाने के लिए महावीर ने मुनि और श्रावक दो प्रकार का साधना माग वतलाया। सतजीवन पूण हिसक और शोषण हीन होता है। उस जीवन मे पूर्ण अहिंसा का अवतरण होता है वहा क्रोधादिक भावनायें खत्म होती है सिर्फ साधना मय जीवन होता है। इस जीवन मे न खाने की चिंता और न किसी भी प्रकार के सरक्षण की चिंता, एक मात्र साधक दशा रहती है। श्रावक जीवन पूण अहिंसक नही होता लेकिन् श्रावक भी साधक दशा मे होना है। वह जीने के लिए वही भोजन करता है जो स्वस्थ जीवन जीने के लिए साधक होता है। भगवान महावीर ने यह भी वतलाया की आवश्यकता से अधिक किसी भी वस्तु का उपयोग मत करो, क्योकि वे राष्ट्र के लिए उपयोगी है। जसे आवश्यकता से अधिक पानी की एक बूंद भी नष्ट मत करो। महावीर का दिव्य ज्ञान इतना प्रभावी था कि वे जानते थे अधिक शोषण से राष्ट्र दुःखी हो जायगा। अत उन्होने अनशन, अवमौदय रस परित्याग पर भी बल दिया और कहा कि महिने मे चार दिन उपवास करो। भूख से कम भोजन करो। दूध दही, शक्कर आदि का भी उपयोग कम करो। महावीर के युग मे इन शिक्षाओ ने राष्ट्र को प्राणवान् बनाया। जैन समाज इस पावन जयन्ती पर आत्म निरीक्षण करे कि आज हम इन नियमो का कहा तक पालन करते हैं। महावीर जयकारो से हम जिन्दा नही रहेंगे। यदि हम जीना चाहते हैं तो महावीर की इन प्रेरणादायक शिक्षाओ को जीवन मे उतारें। आज पूरे राष्ट्र मे हर चीज का अभाव है। महगाई सिर पर है। पर्यावरण दूषित हो रहा है। इसका एक मात्र कारण है हम जैन महावीर की शिक्षाओ से अलग होते जा रहे हैं। हमने खाना ही जीवन बना डाला है। जिससे सारा राष्ट्र दुःखी हो रहा है। हमने अष्टमी चतुर्दशी के पव तक को खतम कर दिया है। अत हमारा कर्तव्य है कि हम पुन जीवन निर्माण मे लगें और जीवन को सफल करें तथा इन महा मानव की शिक्षाओ का घर-घर मे प्रचार करें।

वर्धमान महावीर

☐ विनोद मुशरफ

वर्द्धमान कुमार के पिता राजा सिद्धार्थ कुण्डलपुर के शासक थे। उनके नाना राजा चेटक वैशाली गणतंत्र के प्रमुख नायक थे। अनेक राजाओं के अधीश्वर थे, अतः राजकुमार वर्द्धमान को सब तरह के राज-सुख प्राप्त थे, कोई भी शारीरिक या मानसिक कष्ट उन्हें नही था। वे यदि चाहते तो पाणिग्रहण करके वैवाहिक काम—सुख का उपभोग कर सकते थे, कुण्डलपुर के राज सिंहासन पर बैठ कर राज शासन भी कर सकते थे। परन्तु जिस तरह जल में रहता कमल जल से अलिप्त रहता है उसी तरह वर्द्धमान सर्वसुख—सुविधा—सम्पन्न राज भवन में रह कर भी संसार की मोह माया से अलिप्त रहे।

एक दिन अचानक राजकुमार वर्द्धमान को अपने पूर्व भावों का स्मरण हो आया। उन्हे ज्ञात हुआ कि मैं पूर्व मे 16वें स्वर्ग का इन्द्र था, वहां मैं 22 सागर तक दिव्य भोग उपभोगो को भोगता रहा। उससे पूर्व भव में मैंने सयम धारण करके तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया था जिसका उदय इस भव में होने वाला है। इस समय संसार मे धर्म के नाम पर पाप, अत्याचार फैलता जा रहा है। अतः पाप और अज्ञान को दूर करना परम आवश्यक है। जब तक मैं संयम ग्रहण न करूंगा, तब तक मैं आत्मशुद्धि नही कर सकता और जब तक स्वयं शुद्ध बुद्ध न बन जाऊ, तब तक विश्व कल्याण नही कर सकता। परिवार के बन्दीघर मे रह कर मैं आत्म-साधना नही कर सकता, अतः मोह-ममता के कीचढ से बाहर निकल कर मुझे आत्म विकास करना चाहिये। अतः उन्होने कुण्डलपुर का राजभवन छोड़ कर एकान्त वन मे आत्म-साधना करने का दृढ निश्चय कर लिया।

जब माता त्रिशला को राजकुमार वर्द्धमान के संसार से विरक्त होने का समाचार मिला तब वह पुत्र—स्नेह मे विह्वल हो गई। उनके हृदय मे विचार आया कि राज सुख मे पला हुआ मेरा पुत्र वन पर्वतो मे नग्न रह कर सर्दी, गर्मी, वर्षा के कष्ट किस तरह सहन करेगा? आये हुये देवों ने त्रिशला माता को समझाया कि माता, तेरा पुत्र महान बलवान, धीर वीर है। अब वह सर्वोच्च पद को प्राप्त करने जा रहा है। तेरा पुत्र संसार से केवल आप अकेला ही पार न होगा

वल्कि ग्रसख्य जनता को भी ससार से पार कर देगा। हे माता! मोह का पर्दा ग्रपने सामने से हटा दे, तू धन्य है विश्व उद्धारक तीर्थंकर की जननी कह कर ससार ग्रनन्त काल तक तेरा यश गान करेगा।

कुण्डलपुर से वाहर तपोवन मे जाने के लिये पालकी मे वद्ध मान विराजमान हुये। इन्द्रो ने देवो ने उस पालकी को ग्रपने कन्धा पर रखा ग्रौर ग्राकाश मार्ग से षण्ड वन मे पहुचे। उस नीरव एकान्त शान्त वन मे एक स्वच्छ शिला थी, जिस पर इन्द्राणी के हाथो द्वारा रत्न चूर्ण का स्वास्तिक वना हुग्रा था, वर्धमान उस पर जाकर वैठ गये। उन्होंन ग्रपने शरीर के समस्त वस्त्र ग्राभूषण उतार दिये। स्वतन्त्र नग्न श्रमण वेश धारण कर ग्रपने हाथो से सिर के वालों का लोच किया जो कि शरीर से मोह त्याग का प्रतीक था, ग्रौर पच महा व्रत धारण कर सव सावद्य का त्याग करके ग्रात्म ध्यान मे वैठ गये।

वधमान को ग्रनादि काल का कम वन्धन, जिसने ग्रनन शक्तिशाली ग्रात्मा को दीन—हीन वल हीन वना कर ससार के वन्दीघर मे डाल रखा था को नष्ट करने के लिये कठिन तपस्या करनी पडी। जव वे ग्रात्म साघना मे निमग्न हो जाते थे तव उन्हे वाहरी वातावरण का भी मान नही रहता था।

ऐसी कठोर तप-चर्या करते हुये महावीर देश देशान्तर में भ्रमण करते रहे। नगर व गाव में केवल भोजन के लिये जाते थे उसके सिवाय शेप समय एकान्त स्थान—पवत—गुफा नदी के किनारे, वाग ग्रादि निजन स्थान पर विताते थे।

नि सग वायु जिस प्रकार भ्रमण करती रहती है, एक ही स्थान पर नही रुकी रहती इसी प्रकार ग्रसग निग्र थ भगवान महावीर तपश्चरण करने के लिये भ्रमण करते रहे। भ्रमण करते हुये जव वधमान उज्जयनि नगरी के निकट पहुचे तव वहा नगर के वाहर ग्रमियुक्त नामक श्मशान को एकान्त शान्त प्रदेश जानकर ग्रात्म ध्यान करने ठहर गये। जव रात्रि का समय हुग्रा तो वहा पर स्थाणु" नामक रुद्र ग्राया। रुद्र ने ध्यान मग्न महावीर को देखा। देखते ही उसने उन्हें ध्यान से विचलित करने के लिये उपद्रव करने का विचार किया, सिद्ध विद्यावल से रुद्र ने ग्रपना विकराल रूप वनाया ग्रौर कानों के परदे फाड देने वाला ग्रट्टहास किया। ग्रपने मुख से ग्रग्निज्वाला निकाल कर महावीर पर झपटा भूत प्रेतों के भयजनक नृत्य दिखलाये। ये ग्रनक उपद्रव भगवान को भयभीत न कर सके। वे उसी प्रकार ग्रपने ग्रचल ग्रासन से ठहरे रह। ग्रन्त मे ग्रपना घोर उपसग कायकारी न होता देख स्थाणु रुद्र भगवान की स्तुति कर वहा से चला गया।

ग्रात्मा ग्रनन्त वैभव का पुज है, उसके समान ग्रमूल्य पद थ ससार मे एक भी नही है। किसी रत्न की तरह उसका वभव भी ग्रनादिकालीन कम के मैल मे छिपा हुग्रा है। उस गहन कममल मे छिपे हुये वभव का पूण शुद्ध प्रकट करने के लिये महान परिश्रम करना पडता है ग्रौर महान कष्ट सहन करना पडता है तव यह ग्रात्मा परम शुद्ध विश्व वंद्य परमात्मा वना करता है।

आत्म उन्नति या आत्म शुद्धि अथवा वीतराग' सर्वज्ञ, अर्हन्त, जीवन मुक्त परमात्मा बनने का यही विधि विधान महावीर को भी करना पड़ा। बारह वर्ष के लगभग तपश्चर्या करने के अनन्तर उन्होंने प्रथम शुक्ल ध्यान की योग्यता प्राप्त की।

भगवान महावीर ने अपने पूर्व तीसरे भव में जिसके लिये तपस्या की थी और उस भव में जिस कार्य के लिये राज-सुख एवं घर परिवार का परित्याग किया था वह उत्तम कार्य सम्पन्न हो गया। यह जहां भगवान महावीर का परम सौभाग्य था, वही समस्त जगत का, विशेष करके भारत का भी महान सौभाग्य था कि एक सत्य ज्ञाता, सत्पथ प्रदर्शक एव अनुपम प्रभावशाली वक्ता उसको प्राप्त हुआ। भगवान महावीर धर्मोपदेश तीर्थंकर प्रकृति के उदय का भी सुवर्ण अवसर आगया।

धर्मोपदेश से अहिंसा का प्रभावशाली प्रसार हुआ, पशुयज्ञ होने तो सर्वत्र बन्द होगये। हिंसक कृत्य और माँस-भक्षण से भी जनता घृणा करने लगी। हिंसक लोग भगवान महावीर का उपदेश सुनकर स्वय अहिंसक बन गये।

भगवान महावीर के संघ में 11 गणधर, 700 केवली, 500 मनःपर्ययज्ञानी 1300 अवधिज्ञानी, नौ सौ विक्रिया ऋद्धि धारक, चार सौ अनुत्तरवादी, छत्तीस हजार साध्वी, एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकायें थी। महावीर ने 29 वर्ष 5 मास 20 दिन तक देश-विदेश में महान धर्म प्रचार किया। अन्त मे वे विहार बन्द करके पावापुर मे सरोवर के निकट ठहर गये। वहां उन्होने योग निरोध करके अन्तिम गुणस्थान प्राप्त किया और शेष अघाति कर्मों का क्षय करके कार्तिक वदी अमावस्या के ब्रह्ममुहूर्त मे संसार के आवागमन से मुक्ति प्राप्त की।

196, हल्दियो का रास्ता, जयपुर-3

इस जगत मे इच्छित पदार्थों से अल्प ही सुख होता है यह बात सत्य है, इसी कारण से तेरी इच्छा भी बनी रहती है; यह बात मैं जानता हूँ। पर उन पदार्थों के अर्जन और वियोग से उत्पन्न होने वाले दुःख जाल की अवधि बहुत बुद्धिमान होने पर भी, खेद है, मै नही जानता।[10]

हा ! खेद है, अज्ञान और मोह की मदिरा पीकर मूढ बना यह जगत मारता है, इधर-उधर भागता है, (केवल बोलने मे) अच्छी-अच्छी बातें बोलता है। इस प्रकार पतन को प्राप्त इस जगत को देख। अज्ञानी ! उनके साम ने तू भी क्यों कूदता है ?

—आ योगिन्दुकृत अमृताशीति

राजस्थान मे ऋषभदेव आदिनाथ

□ डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

जैनधम के 24 तीर्थंकरो मे ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर हैं। सुदूर प्राक् ऐतिहासिक काल मे जन्मे श्री ऋषभदेव आदिनाथ के नाम से भी विख्यात है। ऋषभदेव भारतीय सस्कृति के प्रस्तोता थे तथा व्यक्ति एव समाज के प्रथम व्याख्याता थे। उन्होंने मानव समाज को कैसे रहे क्या खायें और कैसे जीवन यापन करें इसकी शिक्षा दी थी। असि मसि कृषि, विद्या वाणिज्य शिल्प और कला का अवदान किया तथा इनके माध्यम से मानव को विज्ञान युग मे प्रवेश करने का माग प्रशस्त किया। 'कृषि करो और ऋषि बनो' यह मत्र देकर जीवन को ध्येयोन्मुख बनाया।

ऋषभदेव जैनधम एव साहित्य के अतिरिक्त वदिक साहित्य मे भी यत्रतत्र स्मरण किये गये हैं। वैदिक ऋचाओ मे उनके महात्म्य का वणन करते हुये उनकी महत्ता स्वीकार की गयी है। भागवत पुराण मे उनको आठवा अवतार माना गया है। ऋषभदेव के पिता नाभि का नाम भी आता है और इनके पुत्र भरत के नाम से भारतवष के नाम की प्रसिद्धि होना स्वीकार किया है। नाभिराय अयोध्या के शासक थे। ऋषभदेव का जन्म भी अयोध्या म ही हुआ। वतमान मे वही अयोध्या भारतीय जन मानस में सबसे अधिक चर्चित बनी हुई है। राम के पहिले होने वाले ऋषभदेव की जन्म भूमि होना अयोध्या की प्राचीनता के और भी चार चाद लगा देता हैं। समस्त जैन समाज अयोध्या को तीथ मान कर उसकी पूजा करता है। हजारो लाखो जैन तीथ यात्री अयोध्या स्थित आदिनाथ के दशन करने जाते हैं। ऋषभदेव का निर्वाण स्थल कलाश पवत है जहा जाना सुलभ नहीं है इसलिये उसकी प्रतिकृति पूजा करके ही जैन समाज सन्तोष कर लेता है।

देश मे सकडो हजारो मन्दिर हैं जो आदिनाथ ऋषभदेव के मन्दिर नाम से प्रसिद्ध हैं। ऋषभदेव की प्रतिमा तो प्रत्येक जन मन्दिर म मिलती है। भगवान आदिनाथ की प्रतिमा बनवा कर उसको मन्दिर मे विराजमान करने की परम्परा हजारों वष पुरानी है। देश मे भगवान आदिनाथ की सबसे प्राचीन प्रतिमा कौनसी है इसकी अभी खोज नहीं हो सकी है। वैसे मोहनजोदडो मे प्राप्त प्रतिमा के भाग को अधिकाश विद्वान आदिनाथ की प्रतिमा का ही भाग मानते हैं। अभी बडवानी बावनगजा की जिस उत्तुग प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक महोत्सव आयोजित हुआ था उसकी

प्राचीनता के सम्बन्ध में इतिहासज्ञों की विभिन्न मान्यताएं है। महामस्तकाभिषेक के अवसर पर प्रकाशित एक कलैन्डर में वावनगजा की मूर्ति को ऋषभदेव के पौत्र एवं भरत के पुत्र अर्ककीर्त्ति द्वारा प्रतिष्ठापित की हुई मूर्ति लिखा है। वैसे भी बावनगजा की मूर्त्ति को हजारों वर्ष प्राचीन माना जाता है।

राजस्थान में ऋषभदेव

भगवान ऋषभदेव के युग मे राजस्थान किस नाम से जाना जाता था इसके लिये हमें पौराणिक साहित्य की ओर जाना पडेगा। महापुराण, पद्मपुराण एव हरिवशपुराण में अनेक नगरों एव प्रदेशों के नाम मिलते हैं। लेकिन इन नगरो के नामो का वर्तमान नगरो के नामो से तारतम्य बैठाना बहुत कठिन है और इस सम्बन्ध मे विशेष खोज कार्य भी नही हुआ है। राजस्थान में विराटनगर, मत्स्यदेश, अहिक्षेत्र, कुरुजांगल देश जैसे प्राचीन नाम अवश्य मिलते है। सम्राट भरत ने कुरुजांगल, पांचाल, सूरसेन, काशी, कोशल, मद्रकार, मत्स्य, काम्बोज, कुरु, अवन्ती, कच्छ, चेदि, गौड, काश्मीर, अग, वग, मालव जैसे प्रदेशों पर विजय प्राप्त की थी, ऐसा जैन पुराणों मे उल्लेख आता है। इन प्रदेशों के नामो मे मत्स्य, कुरु जांगल, मालव देश राजस्थान मे अथवा उसके समीप के प्रदेश थे। यदि सम्राट् भरत के समय मे ये प्रदेश थे तो फिर ऋषभदेव के चरणों से भी ये प्रदेश पावन हुए होगे ऐसी हमारी धारणा है।

आदिनाथ की बहुत लम्बी आयु थी एक हजार वर्ष तो उन्होने कैवल्य प्राप्ति के पूर्व तपस्या की थी और उसके पश्चात् दीर्घकाल तक देश के विभिन्न भागो मे विहार किया था। इसलिये यह तो संभव नही है कि इतने दीर्घकाल मे भी उन्होने राजस्थान को अपने चरण कमल से पवित्र नही किया हो और अयोध्या के आसपास ही विहार करते रहे हो। हमारे इतिहास के स्रोत गहन अन्धकार मे विलुप्त हो गये हैं। हम उनकी खोज नही कर सके यह तो हमारा ही दोष है।

राजस्थान विगत दो हजार वर्षों से तो आदिनाथ ऋषभदेव के मन्दिरों, मूर्तियों एवं उनके जीवन साहित्य से गौरवान्वित है। वर्तमान में आदिनाथ नाम के तीर्थ जितने राजस्थान मे मिलते है उतने अन्य प्रदेशो मे नही हैं। मन्दिर की दृष्टि से उदयपुर जिले में स्थित ऋषभदेव का मन्दिर जिसे केशरियानाथ का मन्दिर कहा जाता है सबसे प्राचीन मन्दिर है तथा वह 1100-1200 पूर्व निर्मित है।

प्राचीनतम प्रतिमा की दृष्टि से चांद खेडी (झालावाड़) स्थित भगवान आदिनाथ की यह विशाल मूर्त्ति सवत् 508 मे प्रतिष्ठित है जो 1500 वर्ष से अधिक प्राचीन सिद्ध होती है। भगवान आदिनाथ की ऐसी मनोज्ञ एवं विशाल मूर्ति देश के किसी भी भाग मे नही मिलती है। राजस्थान मे भगवान आदिनाथ की कितनी लोकप्रियता रही तथा उनमे उनकी कितनी आस्था रही यह इस मूर्त्ति के दर्शन करने के पश्चात् कहा जा सकता है।

अजमेर जिले मे सरवाड स्थित आदिनाथ का मन्दिर 10वी शताब्दी पूर्व का निर्मित माना जाता है। मन्दिर मे एक शिलालेख मे अंकित है कि "इम आदीश्वरजी के देहरा का जीर्णोद्धार

द्वितीय आषाढ सुदी 11 सवत् 1225 में कराया गया।' एक जनश्रुति के अनुसार गुलाम बादशाह इलतुतमिश ने मन्दिर ध्वस्त करने की कलुषित भावना से आक्रमण किया किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। आदिनाथ के समक्ष नत मस्तक होना पडा। बादशाह की करबद्ध मूर्ति आज भी मन्दिर मे खडी है।

प्रदेश मे आदिनाथ का चौथा अतिशय क्षेत्र मालपुरा (टोंक) का आदिनाथ स्वामी का मन्दिर है। इस मन्दिर म भगवान आदिनाथ की बहुत ही प्राचीन एव मनोज्ञ मूर्ति है जिसके दर्शन करने के लिये प्रतिदिन सैकडों दर्शनार्थी आते हैं जिनमें आसपास के गावो के दर्शनार्थी अधिक होते हैं। सभी दर्शन करन पर अपने आपको धन्य एव सौभाग्यशाली मानते हैं। भगवान आदिनाथ की यह प्रतिमा 11वी 12वी-शताब्दी की है। इसी तरह लाडनू केशोरायपाटन, भरतपुर, खडार एव गगापुर के मन्दिरो मे भी आदिनाथ की बहुत प्राचीन प्रतिमाए हैं।

आमेर के राजा एव बगाल के गवनर मानसिंह के प्रधान अमात्य नानू गोधा भगवान आदिनाथ के परम भक्त थे। उन्होने पहिले मोजमाबाद (जयपुर) म तीन शिखर वाले उत्तुग मन्दिर का निर्माण करवाया और फिर उसके तलघर म सन् 1607 म आदिनाथ स्वामी की विशाल मूर्ति विराजमान की। उन्होने आदिनाथ स्वामी की सैकडो मूर्तिया बनवा कर प्रतिष्ठापित करायी और देश के विभिन्न मन्दिरो म भिजवायी।

उसके पूर्व राजस्थान के जीवराज पापडीवाल ने सवत् 1548 मे आदिनाथ की हजारों की सख्या मे मूर्तिया बनवायी प्रतिष्ठापित कर गाव गाव के मन्दिरो मे विराजमान करवाई। पापडीवाल जसा एक लाख से अधिक मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित करने वाला श्रावक दूसरा नहीं हुआ और न होन की सभावना है।

आदिनाथ से सम्बन्धित साहित्य

राजस्थान म आदिनाथ से सम्बन्धित साहित्य भी विपुल मात्रा मे लिखा गया जो आज भी राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो में सुरक्षित है। सस्कृत भाषा म सब प्रथम भट्टारक सकलकीर्ति ने 15वी शताब्दी मे आदिनाथ पुराण लिखा जिसका दूसरा नाम ऋषभनाथ चरित भी है। इस काव्य के बाद इन्ही के शिष्य ब्रह्म जिनदास ने राजस्थानी भाषा मे आदिनाथपुराण लिख कर राजस्थानी भाषा भाषी स्वाध्याय प्रेमियो के लिये एक नया उपहार भेंट किया। सवत् 1590 में भट्टारक ज्ञान-भूषण ने आदीश्वर फागु लिख कर उनके विशाल जीवन वृत्त को फागु शैली मे प्रस्तुत किया। जयपुर के पडित दौलतराम कासलीवाल ने ढूढारी भाषा मे आदिपुराण लिख कर राजस्थान वासियो के लिये एक नया उपहार भेंट किया। इसके अतिरिक्त आदिनाथ के जीवन पर और भी कितने ही काव्य पूजा रास चौपाई लिख कर राजस्थानी पडितो ने आदिनाथ को जन जन का देवता बना दिया।

अमृत कलश बरकत कालोनी, टोंक फाटक जयपुर

द्वितीय खण्ड

गद्य परमानन्द एवं आनन्द पाहुड

तराजू की तरह बने

- ☐ जो बुराई से डरता है और स्वय भोजन करने से पहले दूसरो को दान देता है, उसका वश कभी निर्जीव नही होता।
- ☐ जो पहले अतिथि को आदार दे कर फिर शेषान्न ग्रहण करता है, उस व्यक्ति को खेती करने की आवश्यकता है ?
- ☐ अपने आचरण की पूरी साल-सभाल रखो, क्योकि तुम इस जगत् मे कही भी खोज देखो, सदाचार से वढ कर कोई पक्का मित्र कही नही मिलेगा।
- ☐ लवालब भरे गाव के तालाब को देखो जो मनुष्य प्रकृति से प्रेम करता है, उसकी मम्पत्ति ऐसे ही तालाव की तरह लवालव रहती है। जिसमे स्वय पर प्रभुता प्राप्त कर ली है, उस पुरुषोत्तम को कौन नही पूजता।
- ☐ तराजू की उस सतुलित डण्डी की ओर देखो जो सीधी है और दोनो ओर एक-सी है। बुद्धिमानो का गौरव इसी मे है कि वे तराजू की तरह बने—न इधर झुके, न उधर।
- ☐ जब तुम्हारा मन सत्य से रुठ कर असत्य की ओर झुकने लगे तब समझ लो कि तुम्हारा सवनाश निकट ही है।
- ☐ त्याग की चट्टान पर खडे महापुरुषो के रचनात्मक क्रोध को एक पल भी सह पाना असभव है।
- ☐ पुत्र के प्रति पिता का कर्तव्य है कि वह उसे सभा-की-प्रथम पक्ति मे बैठने योग्य वना दे।
- ☐ और पिता के प्रति पुत्र का कतव्य क्या है ? यही कि लोग उसे देख कर पिता से पूछे कि किस तपोवल से तुम्हे ऐसा सुपुत्र मिला है ?
- ☐ वदला लेने का आनन्द सिर्फ एक का होता है, किन्तु क्षमा करने वाले का गौरव सदा वना रहता है।
- ☐ जिनकी दृष्टि व्यापक है, वे भूल कर भी निरर्थक/अनर्गल शब्दो का उच्चारण नही करते।

आचार्य भूतबली-पुष्पदंत रचित

षट् खण्डागम सूत्र

जीव स्थान खण्ड

(1) सत्प्ररूपणा

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूण ॥

◦ चौदह जीव समासों (गुण स्थानों) के अन्वेषणार्थ चौदह मार्गणा स्थान : (2—4)
1. गति 2. इन्द्रिय 3. काय 4. योग 5. वेद 6. कषाय 7. ज्ञान 8. संयम 9. दर्शन 10. लेश्या 11. भव्यत्व 12. सम्यक्त्व 13. संज्ञी 14. आहार।

◦ चौदह जीव समासों के प्ररुपणार्थ अनुयोगद्वार: (5—7)
1 सत्प्ररुपण 2. द्रव्य प्रमाणानुगम 3. क्षेत्रानुगम 4. स्पर्शनानुगम 5. कालानुगम 6. अन्तरानुगम 7. भावानुगम 8. अल्पबहुत्वानुगम।

◦ **सत्प्ररुपणानिर्देश : (8)**

(1) ओघ से (2) आदेश से

◦ ओघ से चौदह समासों में जीव हैं। (9—23)
जीवसमास : 1. मिथ्यादृष्टि, 2. सासादन सम्यग्दृष्टि 3. सम्यग्मिथ्या दृष्टि 4. असंयत सम्यग्दृष्टि 5. देशसंयत 6. प्रमत्तसंयत 7. अप्रमत्तसंयत 8. अपूर्वकरण-प्रविष्ठ-शुद्धि-संयतों में उपशामक और क्षपक 9. अनिवृत्तिकरण-बादरसांपरायिक प्रविष्ठ-शुद्धि-सयतों में उपशामक और क्षपक 10. सूक्ष्म-सांपराय प्रविष्ठ शुद्धि-संयतों में उपशामक और क्षपक 11. उपशान्त कषाय-वीतराग-छद्मस्थ 12. क्षीण-कषाय-वीतराग-छद्मस्थ 13. संयोग केवली 14. अयोगकेवली।

◦ आदेश से गत्यानुवाद की अपेक्षा : (24—32)
गतियां पांच है—[1]नरक [2]तिर्यंच [3]मनुष्य [4]देव [5]सिद्ध

(अ) नारकी प्रथम चार गुणस्थानों मे है।
(ब) एकेंद्रिय से असज्ञी पचेन्द्रिय तक शुद्ध तिर्यंच हैं।
(स) सज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर सयतासयत तक मिश्र तिर्यंच हैं।

3 (अ) मनुष्य चौदह गुणस्थानो मे हैं।
(ब) मिथ्यादृष्टि से सयतासयत तक मिश्र मनुष्य हैं, आगे शुद्ध मनुष्य हैं।

4 देव-प्रथम चार गुणस्थानो में हैं।

इन्द्रियानुवाद की अपेक्षा (33—38)

(1) एकेन्द्रिय बादर, सूक्ष्म तथा इनके पर्याप्त, अपर्याप्त जीव हैं।
(2) द्वीन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव हैं।
(3) त्रीन्द्रिय ,, ,, ,,
(4) चतुरिन्द्रिय , ,,
(5) पचेन्द्रिय सज्ञी, असज्ञी तथा इनके पर्याप्त अपर्याप्त जीव हैं।
(6) अनीन्द्रिय जीव हैं।
(अ) एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रीय तक सभी जीव मिथ्यादृष्टि हैं।
(ब) पचेन्द्रिय जीव असज्ञी पचेन्द्रिय से लेकर अयोग केवली तक हैं।
(स) सब अपर्याप्त सभी जीव मिथ्यादृष्टि हैं।

॰ कायानुवाद की अपेक्षा (39—46)

(1) पृथ्वीकायिक बादर, सूक्ष्म तथा इनके पर्याप्त, अपर्याप्त जीव हैं।
(2) जलकायिक , ,, ,,
(3) अग्निकायिक , ,, ,,
(4) वायुकायिक ,, ,
(5) (अ) वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव हैं।
(ब) वनस्पतिकायिक साधारण शरीर बादर सूक्ष्म तथा इनके पर्याप्त अपर्याप्त जीव हैं ?
(6) त्रसकायिक पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव हैं।
(अ) प्रथम पाच काय के जीव मिथ्यादृष्टि स्थान मे ही हैं।
(ब) त्रसकायिक द्वीन्द्रिय से लेकर अयोग केवली तक हैं।

योगानुवाद की अपेक्षा (47—100)

(1) मनोयोगियों मे सत्यमनोयोगी, मृषामनोयोगी सत्यमृषामनोयोगी तथा असत्य-मृषामनोयोगी जीव हैं।

(2) वचनयोगियों में सत्यवचनयोगी, मृषावचनयोगी, सत्यमृषावचनयोगी तथा असत्यमृषावचनयोगी जीव है।

(3) (क) काययोगियों में औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रेयिक-काययोगी, वेक्रयिकमिश्रकाययोगी, आहारकाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी कार्मणकाय योगी जीव हैं।

(ख) काययोगियो मे प्रथम दो तिर्यंचों मे और मनुष्यों में होते हैं।

(ग) तृतीय और चतुर्थ देव तथा नारकियों में होते है।

(घ) पचम और षष्टम ऋद्धि प्राप्त संयतों में होते है।

(ङ) सप्तम विग्रहगति में तथा समुद्घातगत केवलियों में होते हैं।

(च) प्रथम दो एकेन्द्रिय से लेकर सयोग केवली तक होते है।

(छ) तृतीय और चतुर्थ संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर असयत सम्यग्दृष्टि तक होते हैं।

(ज) पंचम और षष्टम् प्रमत्त संयत गुणस्थान में होते है।

(झ) सप्तम एकेन्द्रिय से लेकर सयोग केवली तक होते हैं।

(A) मन-वचन और काय तीनों योग सज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोग केवली तक होते हैं।

(B) वचन और काय योग द्वीन्द्रियों से लेकर असंज्ञी पचेन्द्रिय तक होते हैं।

(C) अकेला काय योग एकेन्द्रियों केहोता है।

(D) मनोयोग और वचन योग पर्याप्तों के होता है, अपर्याप्तको के नहीं।

(E) काययोग पर्याप्तक और अपर्याप्तसक दोनो के होता है।

पर्याप्तियां/अपर्याप्तियां—1. आहार 2. शरीर 3. इन्द्रिय 4. श्वासोच्छ्वास 5. भाषा तथा 6. मन है।

(क) एक से लेकर छह तक संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि तक होती है।

(ख) एक से लेकर पांच तक द्वीन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पचेन्द्रिय तक होती है।

(ग) एक से लेकर चार तक एकेन्द्रिय के होती है।

(घ) औदारिक, वैक्रेयिक तथा आहारककाय योग पर्याप्तको के होते हैं, ये तीनो ही मिश्र अपर्याप्तकों के होते है।

(ङ) प्रथम पृथ्वी के नारकी मिथ्यादृष्टि तथा असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों होते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि, तथा सम्यग्दृष्टि नियम से पर्याप्त होते है।

(च) द्वितीय से लेकर सप्तम पृथ्वी के नारकी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त और अपर्याप्तक दोनों होते हैं। सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि नियम से पर्याप्तक होते हैं।

(छ) तिर्यंच मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और असयत सम्यग्दृष्टि स्थान मे पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनो होते हैं। वे सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सयता-सयत स्थान मे पर्याप्तक ही होते हैं। इसी प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यंच और पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तिको की प्ररूपणा है। पचेन्द्रिय तिर्यंच योनीनियों मे असयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तिक ही होते हैं।

(ज) मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और असयत सम्यग्दृष्टि स्थान मे पर्याप्तक भी होते हैं अपर्याप्तक भी। सम्यग्मिथ्यादृष्टि सयतासयत और सयत स्थान में नियम से पर्याप्त होते है। मनुष्य पर्याप्तकों मे इसी प्रकार है पर मनुष्यनियो मे असयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक ही होते हैं।

(झ) देव मिथ्यादृष्टि सासादन सम्यग्दृष्टि और असयत सम्यग्दृष्टि स्थान मे पर्याप्तक भी होते हैं, अपर्याप्तक भी। सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्त ही होते हैं। भवन-वासी वानव्यन्तर ज्योतिषी-देव तथा देविया और सौधम ऐशान कल्पवासी देविया असयत सम्यग्दृष्टि स्थान मे नियम से पर्याप्त होते हैं। ग्रैवेयक से ऊपर अनुदिश से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक पर्याप्तक और अपर्याप्तक सभी असयत सम्यग्दृष्टि होते हैं।

वेदानुवाद की अपेक्षा (101-110)

स्त्रीवेदी, पुरुष वेदी, तथा नपु सक वेदी तथा अपगतवेदी जीव हैं।

(क) प्रथम दो असज्ञीमिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्ति स्थान तक होते हैं।

(ख) तृतीय जीव एकेन्द्रिय से लेकर अनिवृत्ति स्थान तक होते हैं।

(ग) चतुर्थ जीव अनिवृत्ति स्थान से आगे होते हैं।

(घ) नारकी शुद्ध नपु सक वेदी हैं। तिर्यंच एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक शुद्ध नपु सकवेदी हैं, असज्ञी पचेन्द्रिय से लेकर सयतासयत तक तीनो वेद वाले हैं। मनुष्य मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्ति तक तीनो वेद वाले होते हैं आगे अपगतवेदी होते हैं। देव पुरुष वेदी होते हैं।

कषायानुवाद की अपेक्षा (111-114)

क्रोधकषायी, मानकषायी मायाकषायी लोभकषायी तथा अकषायी जीव हैं।

(ख) प्रथम तीन एकेन्द्रिय से लेकर अनिवृत्ति स्थान तक होते है।

(क) चतुर्थ एकेन्द्रिय से लेकर सूक्ष्म-सापरायिक शुद्धि-सयत तक होते हैं।

(ग) पचम आगे के चार स्थानो मे होते हैं।

ज्ञानानुवाद की अपेक्षा (115-122)

मत्यज्ञानी श्रुताज्ञानी विभगज्ञानी मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन,पर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीव हैं।

(क) प्रथम दो एकेन्द्रिय से लेकर सासादन सम्यग्दृष्टि तक होते हैं।

(ख) तृतीय संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर सासादन सम्यग्दृष्टि तक होते है। यह अपर्याप्तक नही होते हैं।

(ग) सम्यग्मिथ्यादृष्टि स्थान में प्रथम तीन और चौथे से छठे तक, मिश्रित होते है।

(घ) चौथे से छठे असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ तक होते है। सातवे प्रमत्त संयत से लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ तक होते हैं। आठवे सयोग केवली, अयोगकेवली और सिद्ध होते है।

संयमानुवाद की अपेक्षा (123-130)

संयत, सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धि-संयत, परिहारशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाँपरायशुद्धिसंयत, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत, संयतासयत और असंयत जीव है।

(क) प्रथम प्रमत्त संयत से लेकर अयोगकेवली स्थान तक होते हैं।

(ख) द्वितीय प्रमत्त संयत से लेकर अनिवृति स्थान तक होते हैं।

(ग) तृतीय प्रमत्त संयत तथा अप्रमत्त सयत स्थान में होते है।

(घ) चतुर्थ एक सूक्ष्म-सांपरारिक-शुद्धि सयत स्थान में ही होते है।

(ङ) पचम उपशांत-कषाय-वीतराग-छद्मास्थ से लेकर अयोगकेवली तक चार स्थानों में होते है।

(च) षष्टम् एक संयतासयत स्थान में ही होते हैं।

दर्शनानुवाद की अपेक्षा (131-135)

चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीव हैं।

(क) प्रथम चतुरिन्द्रिय से लेकर क्षीण कषाय-वीतराग-छद्मास्थ तक होते हैं।

(ख) द्वितीय एकेन्द्रिय से लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ तक होते है।

(ग) तृतीय असयत सम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ तक होते हैं।

(घ) चतुर्थ तीन स्थानों में-संयोग केवली, अयोग केवली और सिद्ध होते है।

लेश्यानुवाद की अपेक्षा (136-140)

कृष्ण लेश्या वाले, नील लेश्या वाले, कापोत लेश्या वाले, तेजो लेश्या वाले, पद्मलेश्या वाले शुक्ल लेश्या वाले, अलेश्या वाले जीव हैं।

(क) प्रथम तीन एकेन्द्रिय से असंयत सम्यग्दृष्टि तक होते हैं।

(ख) चतुर्थ तथा पंचम सज्ञी पचेन्द्रिय से लेकर अप्रमत्त संयत स्थान तक होते हैं।

(ग) षष्टम् संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोग केवली तक होते हैं।

(घ) अलेश्या वाले सयोग केवली के आगे होते हैं।

भव्यानुवाद की अपेक्षा (141-143)

भव्यसिद्ध और अभव्यसिद्ध जीव हैं।

(क) प्रथम एकेन्द्रिय से लेकर अयोग केवली तक होते हैं।

(ख) द्वितीय एकेन्द्रिय से लेकर सनी मिथ्यादृष्टि तक होते हैं।

सम्यक्त्वानुवाद की अपेक्षा (144-171)

सम्यग्दृष्टि क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदक सम्यग्दृष्टि उपशम सम्यग्दृष्टि सासादन सम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव हैं।

(क) प्रथम तथा द्वितीय असयत सम्यग्दृष्टि से लेकर अयोग केवली तक होते हैं।

(ख) तृतीय असयत सम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसयत तक होते हैं।

(ग) चतुर्थ असयत सम्यग्दृष्टि से लेकर उपशातकषाय वीतराग-छद्मस्थ तक होते हैं।

(घ) पचम एक सासादन सम्यग्दृष्टि स्थान में ही होते हैं।

(ङ) षष्टम् सम्यग्मिथ्यादृष्टि स्थान मे ही होते हैं।

(च) सप्तम एकेन्द्रिय से लेकर सज्ञी मिथ्यादृष्टि तक होते हैं।

(छ) नारकी मिथ्यादृष्टि सासादन सम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयत सम्यग्दृष्टि होते हैं। असयत सम्यग्दृष्टि स्थान मे प्रथम पृथ्वी में क्षायिक, वेदक तथा उपशम सम्यग्दृष्टि होते हैं, दूसरी से सातवी पृथ्वी मे नारकी क्षायिक न होकर शेष होते हैं।

(ज) तिर्यंच मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि असयत सम्यग्दृष्टि और सयतासयत होते हैं। असयत सम्यग्दृष्टि स्थान में क्षायिक, वेदक और उपशम सम्यग्दृष्टि होते हैं। सयतासयत स्थान में क्षायिक सम्यग्दृष्टि नही होते हैं। पचेन्द्रिय तिर्यंच-योनियों में क्षायिक सम्यग्दृष्टि नही होते हैं।

(झ) मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि असयतसम्यग्दृष्टि सयतासयत और सयत होते हैं। अन्त के तीन स्थानो में क्षायिक वेदक और उपशम तीनो सम्यग्दृष्टि होते हैं। ऐसे ही मनुष्य पर्याप्तक और मनुष्यनी होते हैं।

(ञ) देव मिथ्यादृष्टि सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असयत सम्यग्दृष्टि होते हैं। भवनवासी वानव्यन्तर-ज्योतिषी देव तथा देवियां और सौधर्म-ऐशान कल्पवासी देविया क्षायिक सम्यग्दृष्टि नहीं होती है। सौधर्म से लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव असयत सम्यग्दृष्टि स्थान मे क्षायिक, वेदक और उपशम सम्यग्दृष्टि होते हैं।

सज्ञी अनुवाद की अपेक्षा (172-174)

1 सज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ तक जीव है।

2 असज्ञी एकेन्द्रिय से लेकर असज्ञी पचेन्द्रिय तक जीव हैं।

आहारानुवाद की अपेक्षा (175-177)

1. आहारक एकेन्द्रिय से लेकर सयोग केवली तक हैं।
2. अनाहारक विग्रहगति प्राप्त जीव, समुद्घातगत केवली, अयोग केवली और सिद्धहोते है।

द्रव्य प्रमाणानुगम

ओघ की अपेक्षा (1–14)

क्र.सं.	जीव स्थान	संख्या	काल की अपेक्षा सं.	क्षेत्र की अपेक्षा सं.
1	2	3	4	5
1.	मिथ्यादृष्टि	अनत	अनतानंत उत्सर्पिणि अवसर्पिणियों द्वारा अपहृत नहीं होते	अनतानत लोक प्रमाण
2.	सासादन सम्यग्दृष्टि	पल्मोपम के असंख्यासवे भाग	अन्तर्मुहुर्त से पल्मोपम अपहृत होता है।	
3.	सम्यग्मिथ्यादृष्टि	”	”	
4.	सम्यग्दृष्टि	”	”	
5.	संयतासंयत	”	”	
6.	प्रमत्तसंयत	कोटि पृथकत्व		
7.	अप्रत्तम संयत	संख्यात		
8.	चारो उपशामक	(क) प्रवेश की अपेक्षा एक से लेकर चौवन तक (ख) काल की अपेक्षा एक अन्तर्मुहुर्त मे संख्यात		
9.	चारों क्षपक और अयोग केवली	(क) प्रवेश की अपेक्षा एक से लेकर एक सौ आठ तक (ख) काल की अपेक्षा एक अन्तर्मुहुर्त मे संख्यात हैं।		

1	1	3	4	5
10	सयोग कवली	(क) प्रवेश की अपेक्षा एक से लेकर एक सो आठ तक (ख) काल की अपेक्षा लक्ष पृथक्त्व		

(2) आदेश से

° गति अनुवाद से नरक गति मे नारकी जीव (15-23)

प्रथम पृथ्वी मे

1	मिथ्यादृष्टि	असख्यात	असख्यात असख्यात उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों द्वारा अपहृत हो जाते हैं।	जग प्रतर के असंख्यातवें भाग मात्र असख्यात जग-श्रेणी प्रमाण हैं। जग श्रेणियों की विष्कम सूचि, सूच्यगुल के प्रथमवर्गमूल को उसी के द्वितीय वर्गमूल से गुणित करने पर आने वाले लब्ध जितनी है।

द्वितीय पृथ्वी से सप्तम पृथ्वी तक

			असख्यात असख्यात उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियों द्वारा अपहृत हो जाते हैं।	प्रत्येक पृथ्वी में राशि जग श्रेणी के असख्यातवें भाग-प्रमाण है जिसका आयाम असख्यात कोटि योजन है। उन कोटि योजनों का प्रमाण जग श्रेणी के सख्यात प्रथमादि वर्ग मूलो के परस्पर गुणा करने से उत्पन्न प्रमाण जितना है।
2	सासादन सम्यग्दृष्टि	ओघ के अनुसार		

1	2	3	4	5
3.	सम्यग्मिथ्यादृष्टि		ओघ के अनुसार	
4.	असंयत सम्यग्दृष्टि		,, ,,	

• तिर्यंच गति में तिर्यंच जीव (24-39)

मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत तक ओघ समान हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच

1	2	3	4	5
1.	मिथ्यादृष्टि	असंख्यात	असंख्यात असंख्यात उत्सर्पिणियो-अवसर्पिणियों द्वारा अपहृत होते है।	देवों के अवहार काल से असंख्यात गुणहीन काल से जग प्रतर अपहृत होता है।
2.	सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर संयता-संयत तक	ओघ के अनुसार		

(ख) पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीव

1	2	3	4	5
1.	मिथ्यादृष्टि	असंख्यात	असंख्यात असंख्यात उत्सर्पिणियों-अवसार्पिणियों द्वारा अपहृत होते है।	देवों के अवहार काल से संख्यात गुणहीन काल से जग प्रतर अपहृत होता है।
2.	सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर संयता-संयत तक	ओघ के अनुसार		

(ग) पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतीजीव

1	2	3	4	5
1.	मिथ्यादृष्टि	असंख्यात		देव अवहार काल से संख्यात गुणे काल से जग प्रतर अपहृत होता है।
2.	सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर संयता संयत तक	ओघ के अनुसार		

1	2	3	4	5
(घ) पचेन्द्रिय धिर्यंच ग्रपर्याप्त जोव				
		ग्रसख्यात		देव ग्रवहार काल से ग्रसख्यात गुणे हीन काल से जग प्रतर ग्रपहृत होता है ।
मनुष्य गति मे मनुष्य (40-52)				
1	मिथ्यादृष्टि	ग्रसख्यात		जग श्रेणी के ग्रसख्यातवें भाग प्रमाण हैं। उसका ग्रायाम ग्रसख्यात करोड योजन है। सूच्यगुल के प्रथम वर्गमूल को सूच्यगुल के तृतीय वर्ग मूल से गुणित करने पर जो लब्ध ग्राये उसे शलाका रूप से स्थापित करके रूपाधिक (ग्रर्थात् एकाधिक तेरह गुणस्थानवर्ती राशि से ग्रधिक) इनके द्वारा जग श्रेणी ग्रपहृत होती है।
1	सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर सयतासयत तक	सख्यात		
3.	ग्रप्रमत्त सयत से ग्रयोग केवली तक	ग्रोघ के ग्रनुसार		
(क) मनुष्य पर्याप्त				
1.	मिथ्यादृष्टि	कोडा कोडा कोडी से ऊपर ग्रौर कोडा कोडा कोडा कोडी के नीचे छह वर्गों के ऊपर ग्रौर सात वर्गों के नीचे।		

1	2	3	4	5
2.	सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर संयतासंयत तक	संख्यात		
3.	प्रमत्तसंयत से लेकर अयोग केवली तक	ओघ प्ररूपणा के अनुसार		
(ख)	मनुष्यनी			
1.	मिथ्यादृष्टि	कोड़ा कोड़ा कोडी से ऊपर और कोड़ा कोडा कोडा कोडी के नीचे; छठे वर्ग के ऊपर और सातवें वर्ग के नीचे ।		
2.	सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर अयोग केवली तक	संख्यात		
(ग)	मनुष्य अपर्याप्त			
		असंख्यात है ।	असंख्यात असंख्यात उत्सर्पिणियो अवसर्पिणियों द्वारा अपहृत होते हैं ।	क्षेत्र का हिसाब मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के अनुसार है ।
•	देव गति में देव (53-73)			
1.	मिथ्यादृष्टि	असंख्यात हैं	"	जगप्रतर में दो सौ छप्पन अगुलो के वर्ग रूप प्रति भाग से इनका प्रमाण होता है ।

1	2	3	4	5
2	सासादन सम्यग्दृष्टि से असयत सम्यग्य-दृष्टि तक	प्ररूपणा ओघ के समान		
भवनवासीदेव				
1	मिथ्यादृष्टि	असख्यात	असख्यात असख्यात उत्सर्पिणियो अवसर्पिणियों द्वारा अप-हृत होते हैं।	असख्यात जग श्रेणी प्रमाण हैं जो जगप्रतर के असख्यात वें भाग प्रमाण है। उन श्रेणियो की विष्कभ सूचि सूच्यगुलको सूच्यगुल के प्रथम वर्गमूल से गुणित करके जो लब्ध आयें उतनी है।
2	सासादन सम्यग्दृष्टि से असयत सम्यग्दृष्टि तक	ओघ प्ररूपणा के समान		
वान व्यतर देव				
1	मिथ्यादृष्टि	असख्यात	"	जग प्रतर के सख्यात सौ योजनों के वर्ग रूप प्रति भाग जितने प्रमाण है।
2.	सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर असयत सम्यग्दृष्टि तक	ओघ प्ररूपणा के समान		

(क) ज्योतिषी देव

इनका प्रमाण देवगति में देवों के प्रमाण समान है।

1	2	3	4	5
(ख)	सौधर्म-ऐशान कल्पवासीदेव			
1.	मिथ्यादृष्टि	असंख्यात	असंख्यात असंख्यात उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों द्वारा अपहृत होते है।	असंख्यात जगश्रेणी प्रमाण है जो जग प्रतर के असंख्यातवें भाग है। उन जग श्रेणियों की विष्कंभ सूचि सूच्यंगुल के द्वितीय वर्गमूल से गुणा करने पर जितना लब्ध आये, उतनी है।
2.	सासादन सम्यग्दृष्टि से असंयत सम्यग्दृष्टि तक।	ओघप्ररुपणा के समान		
(ग)	सनत्कुमार से लेकर शतार-सहस्त्रार कल्प तक के देव			
	इन प्रत्येक की प्ररूपणा सातवी पृथ्वी के नारकियों के समान है।			
(घ)	आनत-प्राणत से लेकर नव-ग्रैवेयक विमान वासीदेव			
	मिथ्यादृष्टि से लेकर असयत सम्यग्दृष्टि तक।	पल्योपम के असंख्यातवें भाग	इन राशियों में प्रत्येक द्वारा अन्तर्मुहूर्त से पल्योपम अपहृत होता है।	
(ङ)	अनुदिश से अपराजित विमान वासीदेव			
	असंयत सम्यग्दृष्टि	पल्योपम के असंख्यातवें भाग	इन राशियों मे प्रत्येक द्वारा अन्तर्मुहूर्त से पल्योपम अपहृत होता है।	
(च)	सर्वार्थ सिद्धि विमानवासी देव			
	इनका प्रमाण संख्यात हैं।			
•	इन्द्रियानुवाद की अपेक्षा (74-86)			
(क)	एकेन्द्रिय, इनके बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त तथा अपर्याप्त			
		अनंत	अनंतानंत उत्सर्पणियो अवसर्पणियों द्वारा अपहृत होते हैं।	अनंतानंत लोक प्रमाण।

1	2	3	4	5
(ख) द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त				
		असंख्यात	असंख्यात उत्सर्पिणियों अवसर्पिणियों द्वारा अपहृत होते हैं।	इनके द्वारा क्रमश सूच्यगुल के असंख्यातवें भाग के वर्ग रूप प्रति भाग से जग प्रतर अपहृत होता है। इनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवों द्वारा क्रमश सूच्यगुल के संख्यातवें भाग के वर्ग रूप प्रति भाग से, और सूच्यगुल के असंख्यातवें भाग के वर्ग रूप प्रति भाग से जग प्रतर अपहृत होता है।
(ग) पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त				
1	मिथ्यादृष्टि	असंख्यात	असंख्यात असंख्यात उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों द्वारा अपहृत होते हैं।	पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों द्वारा क्रमश सूच्यगुल के असंख्यातवें भाग के वर्ग रूप प्रति भाग से, और सूच्यगुल के संख्यातवें भाग के वर्ग रूप प्रति-भाग से जग प्रतर अपहृत होता है।
2	सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर अयोग केवली तक।	ओघ प्ररूपणा के समान है।		
(घ) पंचेन्द्रिय अपर्याप्त (87–102)				
		असंख्यात	असंख्यात असंख्यात उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों द्वारा अपहृत होते हैं।	इनके द्वारा सूच्यगुल के असंख्यातवें भाग के वर्ग रूप प्रति भाग से जग प्रतर अपहृत होता है।

1	2	3	4	5
(क)	पृथ्वी कायिक, जलकायिक, तोजसस्कायिक, वायुकायिक, बादर पृथ्वी कायिक, बादरजलकायिक, बादरवायुकायिक, वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, पांचों बादरों के अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथ्वी कायिक, सूक्ष्म जलकायिक; सूक्क तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक इन्हीं चारों सूक्ष्मों के पर्याप्त और अपर्याप्त जीव ।			
		असंख्यात	असख्यात असख्यात उत्सर्पणियो-अवसर्पणियों से अपहृत होते हैं ।	बादर पृथ्वी कायिक, बादर जलकाविक, बादर वनस्तति-कायिक, प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवो द्वारा सूच्यंगुल के असंख्यातवे भाग के वर्ग रूप प्रति भाग से जगप्रतर अपहृत होता है ।
(ख)	बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव			
		असंख्यात	असंख्यात आवलियों के वर्ग रूप जो आवलिका घन जितनी यह राशि है ।	
	वायुकायिक पर्याप्त जीव			
		असंख्यात	असंख्यात असंख्या उत्सर्पणियों-अवसर्पणियो से अपहृत होते है ।	असंख्यात जगत प्रतर प्रमाण है जो लोक के संख्यातवे भाग है ।
(ग)	वनस्पतिकायिक, निगोद जीव, इन दोनों के बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त जीव			
		अनंत	अनंतानंत उत्सर्पणियो अवसर्पणियो द्वारा अपहृत नही होते हैं ।	अनंतानंत लोक प्रमाण
(ग)	त्रसकायिक			
१.	मिथ्यादृष्टि	असंख्यात	असंख्यात असंख्यात उत्सर्पणियों अवसर्पणियों द्वारा अपहृत होते हैं ।	त्रसकायिक और त्रसकायिक अपर्याप्तकों द्वारा क्रमश: सूच्यंगुल के असंख्यातवे भाग के वर्गरूप प्रति भाग

1	2	3	4	5
				से, और सूच्यगुल के मख्यातवे भाग के वग रूप प्रति भाग से जगप्रतर अपहृत होता है ।
2	सासदन सम्यग्दृष्टि से लेकर अयोग केवली तक	ओघ प्ररूपणा के समान है ।		

त्रसकायिक अपर्याप्त जीवों का प्रमाण पचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवो के समान है ।

योगानुवाद की अपेक्षा (103–123)

(क) पांच मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीव

1	2	3	4	5
1	मिथ्यादृष्टि	देवों के मख्यातवें भाग प्रमाण		
2	सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर सयतासयत तक	ओघ प्ररूपणा के समान		
3	प्रमत्त सयत से लेकर सयोग केवली तक	मख्यात		

(ख) वचन योगी और असत्यमृषा वचन योगी जीव

1	2	3	4	5
1	मिथ्यादृष्टि	असख्यात	असख्यात असख्यात अवसर्पिणियो और उत्सर्पिणियों द्वारा अपहृत होते वे ।	अगुल के असख्यात-वे भाग से जग प्रतर अपहृत होता है ।
2	शेप (सासादन सम्यग्दृष्टि आदि)	मनोयोगियों के समान		

(ग) काययोगी और औदारिक काय योगी जीव

1	2	3	4	5
1	मिथ्यादृष्टि	ओघ प्ररूपणा के समान		
2	सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर सयोग केवली तक	मनोयोगियों के समान		

1	2	3
(घ)	**औदारिक मिश्र काययोगी जीव**	
1.	मिथ्यादृष्टि	ओघ प्ररुपणा के समान
2.	सासादन सम्यग्दृष्टि	ओघ प्ररुपणा के समान
3.	असंयत सम्यग्दृष्टि और सयोग केवली	संख्यात
(ङ)	**वैक्रयिक काययोगी जीव**	
1.	मिथ्यादृष्टि	देवों के संख्यातवे भाग
2.	सासादन सम्यग्दृष्टि से असंयत सम्यग्दृष्टि तक	ओघप्ररुपणा के समान
(च)	**वैक्रयिक मिश्र काययोगी जीव**	
1.	मिथ्यादृष्टि	देवों के संख्यावें भाग
2.	सासादन सम्यग्दृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि	ओघ प्ररुपणा के समान
(छ)	**आहारक काययोगी जीव**	
	प्रमत्त संयत चौवन है।	
(ज)	**आहारक मिश्र काययोगी जीव**	
	प्रमत्त संयत संख्यात है।	
(झ)	**कार्मण काययोगी जीव**	
1.	मिथ्यादृष्टि	मूल ओघ प्ररुपणा के समान
2.	सासादन सम्यग्दृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि	ओघ प्ररुपणा के समान
3.	सयोग केवली	संख्तात
	वेदानुवाद की अपेक्षा (124-134)	
(क)	**स्त्री वेदी जीव**	
1.	मिथ्यादृष्टि	देवियों से कुछ अधिक
2.	सासादन सम्यग्दृष्टिसे लेकर संयतासंयत तक	ओघ प्ररुपणा के समान
1.	प्रमत्त संयन से लेकर अनिवृत्ति वादर सांपराय प्रविष्ठ उपशामक क्षपक	संख्यात

1	2	3
(ख)	पुरुष वेदी जीव	
1	मिथ्यादृष्टि	देवों से कुछ अधिक
2	सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर अनिवृत्ति बादर साम्पराय प्रविष्ट उपशामक और क्षपक	ओघ प्ररूपणा के समान
(ग)	नपुंसक वेदी जीव	
1	मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत तक जीव	ओघ प्ररूपणा के समान
2	प्रमत्त संयत से लेकर अनिवृत्ति बादर साम्पराय प्रविष्ट उपशामक और क्षपक	संख्यात
(घ)	अपगत वेदी जीव	
1	तीन उपशामक	(अ) प्रवेश की अपेक्षा एक से लेकर चौवन (ब) काल की अपेक्षा संख्यात
2	क्षीण क्षपक और अयोग केवली	ओघ प्ररूपणा के समान
3	सयोग केवली	,, ,, ,,
	कषायानुवाद की अपेक्षा (135—140)	
(क)	क्रोधकषायी मानकषायी, माया और लोभकषायी जीव	
1	मिथ्यादृष्टि से लेकर संयता संयत तक	ओघ प्ररूपणा के समान
2	प्रमत्त संयत से लेकर अनिवृत्ति गुणस्थान तक	संख्यात
	विशेष—लोभकषायसूक्ष्म-साम्पराय शुद्धि संयत ओघ प्ररूपणा के समान	
(ख)	अकषायी जीव	
1	उपशान्त कषाय वीतराग छद्मस्थ	ओघ के समान
2	क्षीण कषाय वीतराग छद्मस्थ और अयोग केवली	ओघ के समान
3	सयोग केवली	,, ,, ,,

1	2	3
ज्ञानानुवाद की अपेक्षा (141—147)		
(क)	मत्यज्ञानी तथा श्रुताज्ञानी जीव	
	मिथ्यादृष्टि तथा सासादन सम्यग्दृष्टि	ओघ प्ररुपणा के समान
(ख)	विभंगज्ञानी जीव	
1.	मिथ्या दृष्टि	देवों से कुछ अधिक
2.	सासादन सम्यग्दृष्टि	ओघ प्ररुपणा के समान
(ग)	आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीव	
	असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीण कषाय वीतराग छद्मस्थ तक	ओघ प्ररुपणा के समान
	विशेष—अवधिज्ञानी प्रमत्त संयत से लेकर क्षीण कषाय वीतराग छद्मस्थ तक संख्यात हैं।	
(घ)	मन. पर्यय ज्ञानी जीव	
	प्रमत्त संयत से लेकर क्षीण कषाय वीतराग छद्मस्थ तक	संख्यात
(ङ)	केवलज्ञानी	
	सयोग केवली और अयोग केवली	ओघ प्ररुपणा के समान
संयमानुवाद की अपेक्षा (14-8154)		
(क)	सयत	
	प्रमत्त संयत से लेकर अयोग केवली तक	ओघ प्ररुपणा के समान
(ख)	सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धि संयत	
	प्रमत्त संयत से लेकर अनिवृत्ति बादर सांपराय–प्रविष्ट उपशामक और क्षपक	ओघ प्ररुपणा के समान
(ग)	परिहारशुद्धि संयत	
	प्रमत्त और अप्रमत्त संयत	संख्यात
(घ)	सूक्ष्म सांपरायिक-शुद्धि संयत जीव	
	सूक्ष्म-सापरायिक-शुद्धि संयत उपशामक और क्षपक	ओघ प्ररूपणा के समान
(ङ)	यथाख्यात-विहार-शुद्धि संयत जीव	
	चारों गुणस्थानवर्ती जीव	ओघ प्ररुपणा के समान
(च)	संयतासयत जीव	
	संयतासंयत	ओघ प्ररुपणा के समान
(छ)	असंयत जीव	
	मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि तक	ओघ प्ररुपणा के समान

1	2	3
(ङ) सासादन सम्यग्दृष्टि जीव		ओघ के समान
(च) सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव		ओघ के समान
(छ) मिथ्यादृष्टि जीव		ओघ के समान

संज्ञा (संज्ञी मार्गणा) के अनुवाद की अपेक्षा (185-189)

(क) संज्ञी जीव	
1 मिथ्यादृष्टि	देवों से कुछ अधिक
2 सासादन सम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीण वीतराग-छद्मस्थ तक	ओघ प्ररूपणा के समान

1	2	3	4	5
(ख) असंज्ञी जीव				
		अनन्त	अनन्तानत अवसर्पिणियों उत्सर्पिणियों द्वारा अपहृत नहीं होते	अनन्तानन्त लोक प्रमाण

आहार अनुवाद की अपेक्षा (190–192)

(क) आहारक जीव

मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोग केवली तक — ओघ प्ररूपणा के समान

(ख) अनाहारक जीव — कार्मण काय योगियों के समान

अयोग केवली—ओघ प्ररूपणा के समान

❀

भावानुवाद पद्य में—

लघुतत्त्व स्फोट का चतुर्थ सर्ग

वैद्य प्रभुदयाल कासलीवाल भिषगाचार्य

अनअन्त विभूतिमय तेज उदित जिसका रहता है प्रतिक्षण ही,
स्वरूप गुप्त निज आत्मा की महिमा से शोभित प्रतिपल ही।
विशुद्ध ज्ञान अरु दर्शन से जिनका शोभित निज रूप सदा,
लोकालोक के ज्ञाता स्वामी प्रणाम तुम्हें मेरा सुखदा ।।१।।
अनादि काल से हे प्रभु, तेरी गुणमहिमा से था अनभिज्ञ,
लेकिन प्रसाद तेरे से, हे प्रभु! आज बना हूँ उससे भिज्ञ।
हो गया आज इसको मैं जान चैतन्य महारस से विभोर,
अग अंग में आप्लावित हो नृत्य करूं बनकर मैं मोर ।।२।।
हे प्रभु जो जन अनुभव करते सरल सत्य शुद्धात्ममयी,
आत्म तत्व ज्ञायक वे जन, बहुमान करें तेरा नित ही।
हे प्रभु तेरे गुण अद्भुत निरूपमेय आश्चर्य करी,
पूर्ण विश्व को करें प्रकाशित बन कर ज्ञान सूर्य सम ही ।।३।।
जो आत्म तत्व संबंधित है अरु समाविष्ट आत्मा में ही,
जिनका उद्भव भी आत्मा में अनुभव भी करता आत्मा ही।
वे गुण अनन्त है हे प्रभुजी धारण करते उनको तुम ही,
यह शक्ति अनन्त गुणों को प्रभु करती सबको अति अचरज ही ।।४।।
हे प्रभु जो इस आत्म तेज की अनन्तता को न जानें,
वह पशु प्रभु को निज समान ही मानें, सत्य नहीं जानें।
लेकिन जो हैं ज्ञानी भविजन अरु आत्मतत्व ज्ञाता जग में,
वे तुम्हें एक जान कर भी शक्ति अनन्तता पहचानें ।।५।।
आत्म तत्व के गुण अनन्त हैं, और है पर्यायें अनन्त,
लेकिन प्रभु के चित्स्वरूप में समाविष्ट सब काट निज अन्त।
चैतन्य चमत्कारों से तुम भरे सुशोभित चिन्मय हो,
धारण करता किरणें असंख्य वह सूर्य एक जग में तुम हो ।।६।।
तेरी ज्ञान वेल हे जिनवर! फैल रही है सीमातीत,
अखिल विश्व में व्याप्त हो रही पीकर निज रस शब्दातीत।

पद्म वेल के अन्तर्मुख वन निज स्वभाव मे स्थित हैं,
शुद्ध स्वभाव प्राप्त कर निज का निजानन्द मे तन्मय हैं ॥७॥
तीव्र ज्ञान-वायु के झोको से जग को पूरा व्यापा,
पुन पुन जड से उखाड उसको अपने मे ले थापा।
प्रभो आत्मा की क्रीडा तेरी यह महातेज से भरी हुई,
मेरे मन को वरवस मोहनी सर झुकता तेरे आगे ही ॥८॥
हे प्रभु सम्यग्ज्ञान आपका वोध समुद्र कहाता है,
जिसकी एक लहर मे हो यह जग सब जाना जाता है।
वोध आपका अति अगाध उद्धत, दुघर अरु धीर कहा,
है वह सागर, आप तरगित करें वेग से इसे अहा ॥९॥
आत्म प्रदेशो की सीमा मे सभी पदार्थ विराजित हैं,
करते स्खलन परस्पर भी स्खलित कभी न होते हैं।
वस्तु स्वरूप है पृथक् सभी का चैतन्य अग्नि मे होकर पवित्र,
केवल ज्ञान के शुद्ध तेज मे जड चेतन होते प्रविष्ट ॥१०॥
अनन्त चतुष्टय गुण आत्मा के प्रदेश पृथकता नही उन्हें,
अत सम्मिलित आत्म गुणो से दीप्ति अलौकिक प्राप्त तुम्हे।
हे जिनवर ! तुम अनेक धर्मा, अविनाशी पद प्राप्त तुम्हें,
एक धर्म मे मति स्थित जो वे न जानते कभी तुम्हे ॥११॥
अन्तरग वहिरग कारणो से वैभव नूतन पर्यायो का,
जग के कण कण का होता उदित नही अन्त कभी है इस क्रम का।
अज्ञानी ना जान सके उन त्रैकालिक पर्यायो को,
त्रिकालदर्शिता जिनवर तेरी आश्चर्यकारी है हमको ॥१२॥
शब्दो की सन्तति पृथक् पृथक् फिर भी प्रवाह मे रहे सभी,
वे पृथक्करण ना कर सकती यद्यपि विभक्त रहती हैं सभी।
पर्याय और गुण युक्त द्रव्य की महिमा मे विलयित होती,
जिस विधि कल्लोल सागर की सागर मे ही विलयित होती ॥१३॥
हैं पदार्थ सब हो स्वभावमय विधि निषेधमय सभी स्वभाव,
सीमा स्वभाव ना कभी छोडते हे प्रभु आप सदा समभाव।
कोई वस्त्र शुक्ल-अशुक्ल होने से जैसे द्विरूप कहा,
इस ही द्विरूपता युक्त आपका अस्तिनास्ति स्वभाव अहा ॥१४॥
हो रहे भाव सब अस्ति रूप जो नही हो रहे वे नास्ति रूप,
सभी पदार्थ है अस्ति नास्ति मय, यही कहा है उनका रूप।
इस विधि प्रभु अस्ति नास्तिमय हैं प्रवृत्तिया जिनवर की

लेकिन स्याद्वाद के ज्ञाता को होता नहीं है आश्चर्य कभी ।।१५।।
स्वकीय अपेक्षा द्रव्य अस्तिमय परकीय अपेक्षा नास्ति स्वरूप,
अस्ति नास्ति दो भाव द्रव्य में यही कहा है द्रव्य स्वरूप ।
असद्भाव सद्भाव आपका है स्वभाव यह निश्चित है,
लेकिन जिनकी बुद्धि अपरिचित स्याद्वाद से वे जड हैं ।।१६।।
वस्तु एक है या अनेक है एकान्त प्रतीति है कहा इसे,
अनेकान्त है धर्म वस्तु का इस विधि प्रकटा ज्ञान जिसे ।
ऐसे प्रभु आप जिनेश्वर हैं धारणा आपकी निश्चल है,
केवल स्वभाव ही कहा इसे यह तर्क के गोचर विषय नहीं ।।१७।।
पर्यायें क्रमवर्ती गुण अक्रम पदार्थ में होते हैं,
आप प्रभु इन दो भावों को धारण करके रहते है ।
अनित्य आप पर्यायों से गुण से अनित्यता कभी नहीं,
हो नित्य आप या नित्य नहीं एकान्तवादिता सत्य नहीं ।।१८।।
केवल ज्ञान सम्पदा प्रभु की, वे परिपूर्ण इसी से हैं,
उदित रहे वह ज्योति सदा वे अजेय अनन्तवीर्य से है ।
आत्म तत्व को प्राप्त हुए वे सम्यक् रूप अवस्थित हैं,
एकान्तवादी क्षणिकता का यह निश्चय ही खण्डन है ।।१९।।
जिनवर है शुद्धात्मा जग में ज्ञाता दृष्टा उनका रूप,
ज्ञान तेज लोकोत्तर उनका अतः जानते विश्व स्वरूप ।
पर पदार्थ के ज्ञाता हैं वे स्पर्श नहीं परका करते,
प्रतिभासित हों पृथक् सदा वे निज स्वरूप में ही वसते ।।२०।।
पराङ्मुख है चिदात्म आपकी सभी पदार्थो से जग में,
फिर भी स्पर्शित सब पदार्थ है प्रतिविम्व ज्ञान में पडने से ।
ज्ञान आपका प्रभु अनन्त है है अनन्त शुचि का भण्डार,
ज्ञातृत्व शक्ति में अतः दोष ना चिन्मय शक्ति, चिन्मय आधार ।।२१।।
प्रतिविम्व पदार्थो का पडता इस ज्ञायक दर्शक आत्मा में,
आकृतियां उनकी जो वने वे आत्म रूप है आत्मा में ।
एक ज्ञान घन आप सदा ना राग द्वेष अरु मोहमयी,
यह अद्भुत और अलौकिकता है अक्षय अनन्त आनन्द मयी ।।२२।।
वाह्य पदार्थो का अवघट्टन संस्पर्श नाम को पाता है,
हे प्रभु इस अवघट्टन से चैतन्य पुष्प खिल उठता है ।
इस आत्म पुष्प के खिलने से ज्ञान तेज विकसित होता,
संवर्धन उसका हो भारी वह केवल ज्ञान रूप वनता ।।२३।।

आचार्य गुणधर विरचित

कषायपाहुड गाथासार

पेज्ज दोस विभक्ति अर्थाधिकार

☐ पंचमपूर्व, ज्ञान प्रवाद की दसवीं वस्तु के पेज्ज प्राभृत से कषाय-पाहुड उत्पन्न हुआ है।

☐ इसके 15 अर्थाधिकारों में 180 गाथायें हैं

(1) पेज्ज दोस विभक्ति
(2) स्थिति विभक्ति
(3) अनुभाग विभक्ति
(4) बंधक अथवा प्रदेश विभक्ति, स्थित्यंतिक प्रदेश और क्षीणाक्षीण प्रदेश
(5) संक्रम अथवा बंधक और संक्रम

} (3 सूत्र गाथायें)

(6) वेदक (4 सूत्र गाथायें)
(7) उपयोग (7 सूत्र गाथायें)
(8) चतु-स्थान (16 सूत्र गाथायें)
(9) व्यंजन (5 सूत्र गाथायें)
(10) दर्शन मोहनीय की उपशामना (15 सूत्र गाथायें)
(11) दर्शन मोहनीय की क्षपणा (5 सूत्र गाथायें)
(12) संयमासंयम लब्धि (1 सूत्र गाथा)
(13) चरित्र लब्धी (1 सूत्र गाथा)
(14) चरित्रमोह की उपशामना (8 सूत्र गाथा)
(15) चरित्रमोह की क्षपणा (21 सूत्र गाथायें)
(क) प्रारम्भ (ख) संक्रमण (4 सूत्र गाथायें)
(ग) अपवर्तन (3 सूत्र गाथायें)

(घ) कृष्टिकरण (10 सूत्र गाथायें)

(ङ) संग्रह कृष्टियों की क्षपणा (4 सूत्र गाथायें)

(च) क्षीणमोह (छ) संग्रहणी

चरित्रमोह के भाग (ख) संक्रमण, (ग) अपवर्तना, (घ) कृष्टिकरण और (ङ) संग्रह कृष्टियों की क्षपणा की भाष्य गाथयें : 5, 3, 2, 6, 4, 3, 3, 1, 4, 3, 2, 5, 1, 6, 3, 4, 2, 4, 4, 2, 5, 11, 10 तथा 2, कुल, 86 है। सूत्र गाथायें कुल 81 है।

☐ जघन्य काल निर्देश : पश्चात् का काल पूर्व से विशेष अधिक है—1. अनाकार (दर्शनोपयोग) 2. चक्षुइन्द्रियावग्रह 3. श्रोत्रावग्रह 4. घ्राणावग्रह 5. जिह्वाग्रह 6. मनोयोग 7. वचनयोग 8 काय योग 9. स्पर्शनेन्द्रियावग्रह 10. अवाय 11. ईहा 12. श्रुतज्ञान 13. श्वासोच्छ्वास 14. केवलदर्शन–केवल ज्ञान–सकषाय जीव की शुक्ल लेश्या 15. एकत्व-वितर्कवीचार 16. पृथक्त्व वितर्कवीचार 17. उपशम श्रेणी से गिरनेवाला सूक्ष्म सांपरायिक 18. उपशम श्रेणी चढते हुए सूक्ष्म सांपरायिक 19. क्षपक श्रेणीगत सूक्ष्म सांपरायिक 20 मान 21. क्रोध 22. माया 23. लोभ 24. क्षूद्रभवग्रहण 25. कृष्टिकरण 26. संक्रमण 27 अपवर्तन 28. उपशान्त कषाय 29. क्षीणमोह 30 उपशामक 37 क्षपक का काल।

उत्कृष्ट काल निर्देश : चक्षुज्ञानोपयोग क्षुतज्ञानीपयोग, पृथक्त्ववितर्क वीचार, मान, अवाय, उपशान्त कषाय तथा उपशामक का काल अपने से पूर्व स्थान से दुगना होता है। शेप का काल पूर्व स्थान से विशेष अधिक है।

प्रश्न : कौन कषाय और कौन द्रव्य किस नय से पेज्ज रूप अथवा दोष रूप होता है ?

(2) प्रकृति विभक्ति एवं स्थिति विभक्ति अर्थाधिकार (22)

☐ मोहनीय कर्म की प्रकृति विभक्ति, स्थिति विभक्ति, अनुभाग विभक्ति, उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट प्रदेश विभक्ति, क्षीणाक्षीण और स्थित्यन्तिक प्ररूपणीय हैं।

(3) बंधक अर्थाधिकार (23)

प्रश्न : (अ) जीव कितनी प्रकृतियों को, स्थिति और अनुभाग को, जघन्य और उत्कृष्ट परिणाम युक्त प्रदेशों को बांधता है ?

(ब) वह कितनी प्रकृतियो का, स्थिति और अनुभाग का, गुणहीन और गुण विशिष्ट जघन्य अथवा उत्कृष्ट प्रदेशों का सक्रमण करता है ?

(4) संक्रमण-अर्थाधिकार (24-58)

☐ संक्रमण की उपक्रम विधि पांच प्रकार की है।

☐ निक्षेप चार प्रकार का हैं।

☐ नय विधि प्रकृत में विवक्षित है।

☐ नियम आठ प्रकार का है

(1) प्रकृति सक्रम	(1) एक-एक प्रकृति मे सक्रम (2) प्रकृति स्थान मे सक्रम
(2) प्रकृति असक्रम	(1) प्रकृति असक्रम (2) प्रकृति स्थान में असक्रम
(3) प्रतिग्रह विधि	(1) प्रकृति प्रतिग्रह (2) प्रकृति स्थान प्रतिग्रह
(4) अप्रतिग्रह विधि	(1) प्रकृति अप्रतिग्रह (2) प्रकृति स्थान अप्रतिग्रह

(क) 28, 24 17 16 तथा 15 प्रकृतिक स्थान नियम से सक्रम के अयोग्य है, शेष तेईस स्थानों का सक्रम होता है।

(ख) 16 12 8 20 23, 24, 25, 26 27, और 28 प्रकृतिक स्थान प्रतिग्रह के अयोग्य होते हैं, शेष अठारह प्रतिग्रह स्थान हैं।

(ग)

क्र स	प्रतिसक्रम स्थान	प्रतिग्रह स्थान	विशेष
(1)	26 तथा 27	22 15, 11, 19	
(?)	25	17, 21	यह 25 प्रकृति सक्रम स्थान चारों गतियो मे होता है तथा तीनों दृष्टि-गतो (प्रथम तीन गुण स्थान) मे नियम से पाया जाता है।
(3)	23	22, 15, 17, 11, 19	यह 23 प्रकृति सक्रम स्थान सज्ञी पचेन्द्रिय मे ही होता है।
(4)	22	14 10 7, 18	यह 22 प्रकृति सक्रम स्थान मनुष्य गति मे ही होता है, सयत, सयतासयत और असयतसम्यग्दृष्टि गुण स्थानो मे होता है।
(5)	21	13, 9, 7, 5, 17 और 21	ये छहो प्रतिग्रह स्थान सम्यक्त्व से युक्त गुण स्थानो मे पाये जाते हैं इन से अवशिष्ट स्थान उपशामक और क्षपक के ही होते हैं।
(6)	20	6, 5	

(7) 19	5
(8) 18	4
(9) 14	6
(10) 13	6, 5
(11) 12	5, 4
(12) 11	5, 4, 3
(13) 10	5, 4
(14) 9	3
(15) 8	2, 3 ,4
(16) 7	4, 3
(17) 6	2
(18) 5	3, 2, 1
(9) 41	3, 4
(20) 3	3, 1
(21) 2	2, 1
(22) 1	1

संक्रम छह प्रकार का : आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी, दर्शनमोह का क्षय निमित्तिक संक्रम, दर्शनमोह के अक्षय निमित्तिक संक्रम, चरित्रमोह के उपशामनानिमित्तिक संक्रम और चरित्र मोह के क्षय-निमित्तिक संक्रम।

प्रश्न (1) एक-एक प्रतिग्रह स्थान, संक्रम स्थान और तदुभय स्थान में भव्य, अभव्य और अन्य जीव किस किस स्थान पर होते हैं ?

(2) औदयिक आदि पाँच प्रकार के भावों से विशिष्ठ गुण स्थानों में से किस गुण स्थान में कितने संक्रम स्थान तथा प्रतिग्रह स्थान होते है ?

(3) किस संक्रम स्थान या प्रतिग्रह स्थान की समाप्ति कितने काल से होती है ?

(क) गति अपेक्षा संक्रम स्थान (42)	संक्रम स्थान
(1) नरक, देव और संज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंच गति में	27, 26, 25, 23, 21
(2) मनुष्य गति में	सर्व
(3) एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय तथा असंज्ञी पचेन्द्रियों में	27, 26, 25

(ख) गुण स्थान अपेक्षा संक्रम स्थान (43 से 45)

(1) मिथ्यात्व गुण स्थान मे	27, 26, 25 23
(2) मिश्र गुण स्थान में	25, 21
(3) सम्यक्त्व युक्त गुण स्थानो में	तेईस संक्रम स्थान

(4) सयम युक्त गुण स्थान में	बाईस सक्रम स्थान
(5) सयतासयत गुण स्थान में	27, 26, 23 22, 21
(6) अविरत गुण स्थान मे	27, 26 25 23, 22, 21
(7) कुक्ल लेश्या मे	तेईस सम स्थान
(8) तेजो लेश्या और पद्म लेश्या मे	27 से लेकर 21 तक छह सम
(9) कापोत लेश्या में	27, 26 25 23 और 21 स्थान
(10) नील और कृष्ण लेश्या मे	" " " " "
(11) अपगतवेदी, नपुसक वेदी, स्त्री वेदी और पुरुष वेदी मे क्रमश-	अठारह, नौ, ग्यारह और तेरह सक्रम स्थान होते हैं।

विविध अपेक्षाओं से संक्रम स्थान (46-48)

(1) क्रोधादि चारो कषायों मे उपयुक्त जीवो मे क्रमश:	सोलह, उन्नीस, तेईस और तेईस सक्रम स्थान
(2) मति श्रुत और अवधि ज्ञानो मे	तेईस सक्रम स्थान
(3) मनःपर्यय ज्ञान मे	25 तथा 26 को छोडकर शेष इक्कीस स्थान
(4) तीनों अज्ञानो में	27 26 25 23 और 21 (पाच स्थान
(5) अहारक और भव्य जीवों मे	तेईस ही सक्रम होते हैं।
(6) अनाहरकों मे	27, 26 25 23 21 (पाच स्थान)
(7) अभव्यो मे	25 (एक ही सक्रम स्थान)

वेद की अपेक्षा सक्रम स्थान (49-52)

(8) अपगतवेदी जीवों मे	26, 27, 23, 25 22 ये पाच स्थान शून्य हैं। (अर्थात ये नही पाये जाते हैं।)
(2) नपुसकवेदी जीवों मे	19 18, 14, और 11 को आदि लेकर शेप स्थान अर्थात् ये चौदह स्थान शून्य है।
(3) स्त्री वेदी जीवों में	18, 14 तथा 10 को आदि लेकर शेप स्थान अर्थात् ये बारह स्थान शून्य है।

(4) पुरुष वेदी उपशामक और क्षपक जीवों में — 14 तथा 9 से लेकर शेष स्थान अर्थात् ये दस स्थान शून्य है।

कषायों की अपेक्षा संक्रम स्थान (52-54)

(1) क्रोध में उपयुक्त जीवों में — 9, 8, 7, 6, 5, 4, 2 और 1 सात स्थान शून्य है।

(2) मान में उपयुक्त जीवों में — 7, 6, 5 और 1 स्थान शून्य हैं।
(माया और लोभ में उपयुक्त जीवों में) — कोई प्रकृति स्थान शून्य नही है।

इसी प्रकार हम अन्य मार्गणाओं में भी संक्रम स्थान खोजे; मोहनीय के सत्त्व स्थानों और बंध स्थानों में संक्रमस्थान खोजें तथा इनके साथ ही संयुक्तसंक्रम स्थान मे एक संयोगी, द्विसंयोगी भंग निकालें।

इस अधिकार के अनुयोग द्वार—1. सादि संक्रम, 2. जघन्य संक्रम, अल्पबहुत्व, 4. काल, 5. अन्तर, 6. भागाभाग और 7. परिणाम। इन्हें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और सन्निकर्ष की अपेक्षा जानना चाहिए। (57–58)

(5) वेदक अर्थाधिकार (59-62)

प्रश्न—क्योंकि क्षेत्र, भव, काल और पुद्गल (द्रव्य) के आश्रय स्थिति विपाक (उदीरणा) और उदयक्षय (उदय) होता है, अत:

(1) कौन जीव कितनी प्रकृतियों को उदयावली में प्रवेश करता है और किसके कितनी प्रकृतियाँ उदयावली में प्रविष्ट होती है? (2) कौन जीव किस स्थिति मे और कौन किस अनुभाग में प्रवेश कराता है, तथा इनका सान्तर अति निरन्तर काल कितना हैं? (3) विवाक्षित समय से कोन जीव बहुतर बहुतर कर्मों की उदीरणा करता है, कौन अल्पतर अल्पतर कर्मों की उदीरणा करता है? (4) जो जीव स्थिति, अनुभाग और प्रदेशाग्र मे जिसे संक्रम करता है, बांधता है, उदीरणा करता है वह द्रव्य किससे अधिक तथा किससे कम होता है?

(6) उपयोग अर्थाधिकार (63-69)

प्रश्न—(1) (अ) जीव का एक कषाय में कितने काल तक उपयोग होता है?

(ब) कौन उपयोग काल किससे अधिक है?

(2) कौन जीव किस कषाय मे पुन: पुन: एक उपयोग से उपयुक्त होता है?

(3) (अ) एक भव का आश्रय लेकर एक कषाय मे कितने उपयोग होते हैं?

(ब) एक कषाय सम्बन्धि एक उपयोग मे कितने भव होते है?

(4) (अ) किस कषाय मे कितनी उपयोग वर्गणायें होती हैं?

(ब) किस गति ,, ,, ,, ,, ,, ?

(5) एक अनुभाग मे और एक कषाय मे एक काल मे कौनसी गति सदृश रूप से उपयुक्त होती है और कौनसी विसदृश रूप से ?

(6) (अ) सदृश कषायोपयोग वर्गणाओ मे कितने जीव उपयुक्त होते हैं ?

(ब) एक-एक कषाय मे कितने जीव उपयुक्त होते हैं ?

(स) किस किस कषाय मे उपयुक्त जीव कौन-कौन सी कषायों में उपयुक्त जीवो से विशेष (कम या अधिक) होते हैं ?

(7) जो जीव जिस कषाय मे उपयुक्त है क्या वह अतीत मे उपयुक्त रहा है और आगे भी रहेगा ।

(8) कितनी उपयोग वर्गणाओं से कौन स्थान युक्त पाया जाता है और कौन रहित ? यह प्रथम समय मे उपयुक्त से लेकर अंतिम समय तक जानना चाहिए ।

(7) चतु स्थान अर्थाधिकार

1 क्रोध के चार स्थान—1 नग (पर्वत) राजिसदृश 2 पृथ्वी राजिसदृश 3 बालुका राजिसदृश 4 उदक (जल) राजिसदृश ।

2 मान के चार स्थान—1 शैलघन समान 2 अस्ति समान 3 दारू समान 4 लता समान ।

3 माया के चार स्थान—1 बास की जड सदृश 2 मेडे के सींग सदृश 3 गोमूत्र सदृश 4 अवलेखनी (दतौन) सदृश ।

4 लोभ के चार स्थान—1 क्रुमिराग सदृश 2 अक्षमल सदृश 3 पाशु (धूल) लेप सदृश 4 हल्दी से रगे वस्त्र सदृश ।

प्रश्न—इन स्थानो म स्थिति, अनुभाग और प्रदेश की अपेक्षा कौन स्थान किससे अधिक है ?

मान कषाय के उदाहरण से उत्तर— यह विवरण अन्य कषायो के सम्बन्ध मे भी लागू जानना चाहिए ।)

(1) लता समान मान मे उत्कृष्ट वर्गणा (अन्तिम स्पर्धक की अंतिम वर्गणा) जघन्य वर्गणा (प्रथम स्पर्धक की आदि वर्गणा) से प्रदेशाग्र मे अनन्त गुणी हीन है गुण (अनुभाग) की अपेक्षा अनन्त गुणी अधिक है ।

(3) लता समान मान से दारू समान मान प्रदेशाग्र की अपेक्षा अनन्त गुणे हीन हैं आगे भी क्रम से इस ही प्रकार हीन है ।

(3) लता समान मान से शेष स्थानीय मान अनुभाग की अपेक्षा और वर्गणा समूह की अपेक्षा अनन्त गुणित होते हैं ।

(4) विवक्षित सन्धि से अग्रिम सन्धि अनुभाग की अपेक्षा विशेष अधिक और प्रदेशाग्र की अपेक्षा हीन होती है।

(5) दारु समान मान में उत्कृष्ट अनुभाग अंश सर्वावरणीय है- नीचे देशावरणीय है।

प्रश्न—(1) किस गति में कौन स्थान बद्ध है, बध्यमान है, उपशांत है, उदीर्ण है ?

इन विशेषताओं से युक्त इन स्थानों को संज्ञी, असंज्ञी, पर्याप्त, अपर्याप्त, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, मिश्र, विरत, अविरत, विरताविरत, अनाकार उपयोग, साकार उपयोग, योग और लेश्या में जानना चाहिए।

(2) किस स्थान का कौन जीव बन्धक, कौन अबन्धक होता है ?

उत्तर—असंज्ञी जीव लता एवं दारु समान ही नियम से (मान बाँधते हैं); संज्ञी भजनीय है।

(8) व्यंजन अर्थाधिकार (86-90)

(1) क्रोध के दस एकार्थक नाम—क्रोध, कोप, रोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, वृद्धि, झंझा, द्वेश और विवाद।

(2) मान के दस नाम—मान, मद, दर्प, स्तम्भ, उत्कर्ष, प्रकर्ष, समुत्कर्ष आत्मोत्कर्ष परिभव और उत्सिक्त।

(3) माया के ग्यारह नाम—माया, सातिभोग, निकृति, वचना, अनृजुता, ग्रहण, मनोज्ञ-मार्गण, कल्क, कुहक, गूहन और छन्न।

(4) लोभ के अन्य वीस नाम—काम, राग, निदान, छन्द, सुत/स्वत:, प्रेम, दोष, स्नेह, आशा, इच्छा, मूर्छा गृद्धि, साशता/शास्वत, प्रार्थना, लालसा, अविरति, तृष्णा, विद्या, और जिह्वा।

(9) सम्यक्त्व अर्थाधिकार (91-109)

प्रश्न—1. दर्शन मोह के उपशामक के परिणाम कैसे होते हैं ?

2. उसके किस योग और उपयोग में कौनसी लेश्या और वेद होता है ?

3. उसके पूर्व बद्ध कर्म कौन-कौन है, वर्तमान मे किन कार्मांशों को बाँधता है ?

4. उसके कितने कार्य उदयावलि में प्रवेश करते है वह कितने कर्मों का प्रवेशक होता है ?

5. (अ) उसके उपशम काल में पूर्व बंध या उदय की अपेक्षा कौन कर्म क्षीण होते हैं ?

(ब) अंतर कहाँ पर करता है ?

(स) किन-किन कर्मों का उपशामक होता हैं ?

(द) किस स्थिति तथा अनुभाग वाले कर्मो का अपवर्तन करके उनके किस स्थान को प्राप्त होता है ?

दर्शन मोह का उपशामक

1 चारो गतियों में होता है। 2 वह पचन्द्रिय सज्ञी पर्याप्तक होता है । 3 वह व्याघात से रहित होता है । 4 उपशम काल मे वह सासादन गुण स्थान को प्राप्त नहीं होता है । 5 उपशान्त होने के बाद सासादन गुण स्थान भजितव्य है। 6 दर्शन मोह के क्षीण होने पर सासादन-गुण स्थान नही होता है ।

7 उपशमन का प्रस्थापक साकार उपयोग मे होता । निष्ठापक और मध्य स्थान वर्ती भजितव्य है । 8 वह किसी एक योग मे तथा तेजोलेश्या के जघन्य अश को प्राप्त होता हैं ।

9 उपशामक के मिथ्यात्व कर्म का उदय होता है, उपशान्त काल मे उदय नही होता; तदनन्तर भजनीय है । 10 दर्शन मोहनीय की तीनों कर्म प्रकृतिया सभी स्थिति विशेषों, जो एक अनुभाग मे अवस्थित होते है, के साथ उपशान्त रहती है ।

11 उपशामक के मिथ्यात्व का बध है उपशान्त अवस्था मे नही है, बाद मे भजनीय है । (सम्यग्मिथ्यादृष्टि, वेदक तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व के अबधक है ।)

12 सभी दर्शन मोहनीय अन्तमुहूर्त काल तक उपशान्त रहते हैं फिर उन तीन मे से किसी एक का उदय होता है ।

सम्यक्त्व का लाभ

1 प्रथम लाभ सर्वोपशम से होता है विप्रकृष्ट जीव को लाभ सर्वोपशम से ही होता है, पुन पुन सम्यक्त्व प्राप्त करने वाले को सर्वोपशम, देशोपशम भजनीय है ।

2 प्रथम लाभ के पूर्व मिथ्यात्व ही होता है, अप्रथम लाभ के पूर्व भजनीय है । दर्शन मोह के सत्ता मे तीन या दो कर्म की रचना वाला सक्रम की अपेक्षा भजनीय है, एक कर्म वाला नही ।

सम्यग्दृष्टि जीव—उपदिष्ट प्रवचन की श्रद्धा करता है गुरु नियोग से असद्भूत अर्थ को भी श्रद्धा करता है ।

मिथ्यादृष्टि जीव—उपदिष्ट प्रवचन की श्रद्धा नही करता है, उपदिष्ट, अनुपदिष्ट असद्भूत अर्थ की श्रद्धा करता है ।

सम्यग्मिथ्या दृष्टि--साकार और अनाकार दोनो उपयोग वाला होता है पर व्यजनावग्रह (विचार पूर्वक अर्थ ग्रहण) की अवस्था मे साकार उपयोग वाला ही होता है ।

10 दर्शन मोह क्षपणा-अर्थाधिकार (110–114)

(1) प्रस्थापक—कर्मभूमि मे उत्पन्न हुआ मनुष्य है । निष्ठापक—चारो गतियो मे होता है ।

(2) मिथ्यात्व कर्म को सम्यक्त्व प्रकृति मे अपवर्तित करने वाला प्रस्थापक है । वह जघन्य तेजो लेश्या मे वर्तमान होना चाहिए । (3) अन्तमुहूर्त काल तक वह नियम

से क्षपणा करता है। (4) क्षपणा-आरम्भ कर वह तीन भवों में मुक्त हो जाता है। (5) मनुष्यों में क्षायिक सम्यग्दृष्टि संख्यात सहस्र, अन्य गतियों में असंख्यात होते हैं।

11. संयमासंयम लब्धि-अर्थाधिकार (115)

इस लब्धि की प्राप्ति में परिणामों की उत्तरोत्तर वृद्धि और पूर्व बद्ध कर्मों की उपशामना होती है।

12. चरित्र मोह उपशामना अर्थाधिकार (116–123)

प्रश्न 1 : उपशामना कितने प्रकार की होती है ?

2. कौन-कौन कर्म उपशान्त और अनुपशान्त रहता है ?
3. कर्म की स्थिति अनुभाग और प्रदेशाग्रों का कितना भाग उपशामक उपशमित करता है, कितना भाग संक्रमण और उदीरणा करता है, तथा कितना भाग बाँधता है ?
4. कितने काल उपशामना, कितने काल संक्रमण और उदीरणा होती है, तथा कौन कर्म कितने काल तक उपशान्त, अनुपशान्त रहता है ?
5 किस अवस्था में कौन करण व्युच्छिन्न और कौन करण अव्युच्छिन्न रहता है, कौन करण उपशान्त अथवा अनुपशान्त रहता है ?
6. उपशामक का प्रतिपात कितने प्रकार का होता है, किस कषाय मे होता है, तथा गिरते हुए किन-किन कर्म प्रकृतियो का वंधक होता है ?

उपशामक का प्रतिपात दो प्रकार से होता है—

1. भवक्षय से बादर राग मे प्रतिपात करता है।
2. उपशामना के क्षय से सूक्ष्म साम्पराय में प्रतिपात करता है, तथा यथानुपूर्वी कर्मांशों को बाँधता है और यथानुपूर्वी कर्म प्रकृतियो का वेदन करता है।

13· चरित्र मोह क्षपणा–अर्थाधिकार (123–233)

प्रश्न : संक्रमण प्रस्थापक के पूर्वबद्ध कर्म किस स्थिति वाले हैं, किस अनुभाग मे वर्तमान है ? उस समय कौन संक्रान्त, और कौन असंक्रान्त हैं ? (124)

उत्तर : · पूर्वबद्ध मोहनीय कर्म दो स्थिति वाले हैं—(1) प्रथम स्थिति (2) द्वितीय स्थिति। इनका प्रमाण कुछ मुहूर्त होता है, तत्पश्चात् नियम से अन्तर होता है।

· जो कर्म प्रकृतियां परिक्षीण स्थिति वाली हैं उन्हें दोनो स्थितियो मे उपशामक वेदन करता है, जिनका वेदन नही करता वे द्वितीय स्थिति वाली है।

· आठ मध्यम कषायों की क्षपणा के पश्चात् स्त्यानगृद्धि निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला तथा नरकगति और तिर्यचगति सम्बन्धी तेरह, इस प्रकार सोलह प्रकृतियां संक्रमण-प्रस्थापक द्वारा अन्तर्मुहूर्त पूर्व ही सर्व संक्रमण मे क्षीण की जा चुकी है।

* हास्यादि छह नो कपाय के पुरुप वेद के साथ सक्रमण होने पर नाम, गोत्र और वेदनीय असख्यात वर्ष प्रमाण स्थिति में प्रवृत्त होते हैं। ज्ञानावरणादि चार घातिया सख्यात वर्ष प्रमाण स्थिति सत्त्व वाले होते हैं। (125-129)

प्रश्न सक्रमण-प्रस्थापक किन कर्मांशो को बांधता है, किन का वेदन करता है तथा किन का असक्रामक रहता है ? (130)

उत्तर * द्विसमयकृत अन्तरावस्था मे वर्तमान सक्रमण-प्रस्थापक के मोहनीय कर्म शत-सहस्र वर्ष की स्थिति रूप बंधता है, शेष कर्म असख्यात शत सहस्र वर्ष प्रमाण स्थितियो मे बंधते हैं।

* भय, शोक, अरति, रति, हास्य जुगुप्सा नपु सक वेद, स्त्रीवेद, असाता वेदनीय, नीच गोत्र, अयश कीर्ति और शरीर नामकर्म का वह अबन्धक होता है। जिन सर्वावरणीयों की अपवर्तना होती है, उनका और निद्रा, प्रचला तथा आयु का अबधक होता है। शेष का वह बधक होता है।

* निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, नीचगोत्र, अयश कीर्ति और छह नोकपाय कर्मो की प्रकृति स्थिति, अनुभाग, प्रदेश रूप सब अशो का अवेदक रहता है।

* वह वेदो का, वेदनीय का सवघातियाँ प्रकृतियो का तथा कपायो का वेदन करता हुआ भजनीय है (उत्तर प्रकृतियों मे एक का वेदन करता है, अन्य का नहीं)। शेष प्रकृतियो का वेदन करता हुआ अभजनीय है।

* मोहनीय की सब प्रकृतियो का आनुपूर्वी से सक्रमण होता है पर लोभ कपाय का नही होता है।

* नव नोकपाय और चार सज्वलन इन तेरह-प्रकृतियो को आनुपूर्वी से सक्रान्त करता है —स्त्री तथा नपु सक वेद का पुरुप वेद मे, पुरुप वेद और हास्यादि छह का सज्वलन क्रोध मे, क्रोध का मान मे, मान का माया मे, माया का लाभ मे सक्रमण करता है।

* वह वध्यमान प्रकृति मे सक्रमण करता हुआ बन्ध सदृश्य स्थिति मे ही सक्रमण करता हैं। अथवा हीन स्थिति मे सक्रमण करता है अधिक में नहीं।

* मान कपाय का वेदन करने वाला क्रोध सज्वलन का नही वेदन करता हुआ उसे मान कपाय मे सक्रान्त करता है। यह ही क्रम शेष कपाय मे जानना चाहिए। (131-141)

प्रश्न (1) सक्रमण-प्रस्थापक के अनुभाग और प्रदेश सम्बन्धी बन्ध उदय और सक्रमण क्या परस्पर मे समान हैं, अथवा अधिक है अथवा हीन हैं ?

(2) इसी प्रकार प्रदेशा की अपेक्षा वे सख्यात असख्यात या अनतगुणित रूप से परस्पर क्या हीन है या अधिक हैं ?

उत्तर * बन्ध से उदय अधिक होता है उदय से सक्रमण अधिक हाता है।

(अ) अनुभाग के सम्बन्ध मे गुण श्रेणी अनन्त गुणी है।

(ब) प्रदेशाग्र की अपेक्षा गुण श्रेणी असंख्यात गुणी है।

* अनुभाग की अपेक्षा साम्प्रतिक बँध से साम्प्रतिक उदय अनन्तगुणा होता है; अनन्तर काल में होने वाले उदय से साम्प्रतिक बन्ध अनंत गुणा है।

* यह संत्रामक अप्रशस्त प्रकृतियो के अनुभाग का प्रति समय अनन्त गुणित हीन गुणश्रेणी रूप से वेदक होता है; प्रदेशाग्र की अपेक्षा गणणातिक्रान्त (असंख्यातगुणित) श्रेणी रूप से वेदक होता है।

प्रश्न : बंध, उदय और संक्रम स्वक-स्वक स्थान पर तदनन्तर-तदनन्तर काल की अपेक्षा क्या अधिक है, हीन हैं अथवा समान है ?

उत्तर : * बन्ध और उदय की अपेक्षा अनुभाग नियम से अनन्तगुणित हीन होता है। सक्रमण मे भजनीय है।

* प्रदेशाग्र की अपेक्षा संक्रमण और उदय उत्तरोत्तर काल में असंख्यात गुणित श्रेणी रूप होते हैं। बन्ध से भजनीय है।

* अनुभाग गुण श्रेणी की अपेक्षा नियम से अनन्तगुणा हीन वेदन करता है, प्रदेशाग्र गणनातिक्रान्त गुणित श्रेणी द्वारा अधिक होता है।

प्रश्न : अन्तर को करता हुआ वह कर्मो की स्थिति और अनुभाग को क्या वढ़ाता है अथवा घटाता है; और वढ़ाते, घटाते हुए अन्तर-रहित वृद्धि अथवा हानि कितने काल तक होती है ?

उत्तर : जघन्य अपवर्तना का प्रमाण त्रिभाग से हीन आवली है।

(अ) यह जघन्य अपवर्तना स्थितियो के विषय मे ग्रहण करनी चाहिए।

(ब) अनुभाग विषयक अपवर्तना अनन्त स्पर्धकों से प्रतिवद्ध है अर्थात् जब तक अनन्त स्पर्धक अतिस्थापना रूप निक्षिप्त नही हो जाते अनुभाग विषयक अपवर्तना की प्रवृत्ति नही होती।

(स) जो कर्मांश संक्रमित या उत्कर्षित किये जाते हैं वे आवली काल तक अवस्थित रहते है, फिर भजितव्य हैं।

(द) जो कर्मांश अपकर्षित किये जाते हैं वे अनन्तर काल में वृद्धि, अवस्थान, हानि, सक्रमण और उदय की अपेक्षा भजितव्य हैं।

प्रश्न : वह एक स्थिति विशेष को कितने स्थिति विशेषों में वढाता है अथवा घटाता है ? इसी प्रकार का प्रश्न अनुभाग के विषय मे करना चाहिए।

उत्तर : * स्थिति विशेष को असंख्यात स्थिति विशेषों मे वढाता अथवा घटाता है।

* अनुभाग विशेष को अनन्त अनुभाग स्पर्धको मे वढाता अथवा घटाता है।

प्रश्न ' स्थिति और अनुभाग के कौन-कौन अश वढाता, घटाता है अथवा किन किन अशों में अवस्थान करता है, और यह वृद्धि, हानि और अवस्थान किस-किस गुण से विशिष्ट होता है ?

उत्तर * स्थिति का अपकर्षण करता हुआ कदाचित् अधिक का, हीन का भी और वध समान का भी अपकर्षण करता है।

* स्थिति का उत्कर्षण करता हुआ वध समान या वध से अल्प का ही उत्कर्षण करता है अधिक का नही।

* जो उदयावली मे प्रविष्ट नही है उस सब को अपकर्षित करता है।

* वध सदृश अनुभाग का उत्कर्षण करता है उस से अधिक का नहीं।

* वधावली निरुपक्रम होती है अर्थात् उत्कर्षण-अपकर्षण बिना अवस्थित रहती है।

* वृद्धि से हानि अधिक और हानि से अवस्थान अधिक होता है। प्रदेशाग्र की अपेक्षा इस अधिक का प्रमाण असख्यात गुणा जानना चाहिए।

* कृष्टि वर्जित कर्मों में, अर्थात् कृष्टिकरण से पूर्व अपवर्तना और उद्वर्तना दोनों जाननी चाहिए, कृष्टिकरण काल मे अपवर्तना ही होती है।

प्रश्न (1) कृष्टिया कितनी होती है और किस कषाय मे कितनी कृष्टिया होती हैं ?

(2) कृष्टि करने मे कौन सा करण होता है ?

(3) कृष्टि का लक्षण क्या है ?

उत्तर * सज्वल क्रोधादि कषायो की 12, 9, 6 और 13 कृष्टिया होता है, अथवा अनन्त कृष्टिया होती है।

* एक-एक कषाय मे तीन-तीन कृष्टियों होती है अथवा अनन्त कृष्टिया होती है।

* सज्वलन कषायो की स्थिति और अनुभाग की अपवर्तना करता हुआ ही कृष्टियो को करता है वढाने वाला कृष्टियाँ नही करता।

* कृष्टि का लक्षण लोभ से लेकर क्रोध तक कर्मों का अनुभाग गुण श्रेणी रूप से अनन्त गुणा होता है

प्रश्न कितने अनुभाग और कितनी स्थितियो मे कौन कृष्टि वर्तमान है ? यदि सभी स्थितियो म सभी कृष्टियाँ सम्भव है तो क्या उनके सभी अवयव विशेषो मे भी अविशेष रूप से सभी कृष्टियाँ सम्भव है अथवा प्रत्येक स्थिति पर एक एक कृष्टि सभव है ?

उत्तर * सभी कृष्टियाँ सर्व असख्यात स्थिति विशेषो पर नियम से होती है तथा प्रत्येक कृष्टि नियम से अनन्त अनुभागो मे होती है।

* सभी सग्रह कृष्टियाँ और उनकी अवयव कृष्टिया समस्त द्वितीय कृष्टि मे होती है, किन्तु वह जिस कृष्टि का वेदन करता है उसका अश प्रथम स्थिति मे होता है।

प्रश्न : कौन कृष्टि किस कृष्टि से प्रदेशाग्र की अपेक्षा, अनुभागाग्र की अपेक्षा और काल की अपेक्षा अधिक है, हीन है अथवा समान है ?

उत्तर : * क्रोध की द्वितीय कृष्टि से उसकी ही प्रथम कृष्टि प्रदेशाग्र की अपेक्षा संख्यात गुणी होती है; किन्तु द्वितीय से तृतीय विशेष अधिक होती है, इसी प्रकार यथा क्रम आगे भी विशेष अधिक होती है।

* क्रोध की द्वितीय संग्रह कृष्टि से प्रथम संग्रह कृष्टि वर्गणा समूह की अपेक्षा संख्यात गुणा है। किन्तु द्वितीय से तृतीय विशेष अधिक है। इसी प्रकार से आगे भी विशेष-विशेष जानना चाहिए।

* जो वर्गणा अनुभाग की अपेक्षा हीन है वह प्रदेशाग्र की अपेक्षा अधिक है; उन्हें अनन्त-वें भाग से अधिक या हीन जानने चाहिये।

* क्रोध की आदि वर्गणा को चरम वर्गणा मे से घटाना चाहिए, जो बचे उतने प्रदेशाग्र से वह जघन्य वर्गणा से अधिक है। यह ही क्रम मान, माया, लोभ जानना चाहिए।

* क्रोध की प्रथम कृष्टि दूसरी से अनुभाग में अनन्त गुनी है, द्वितीय तृतीय से अनन्त गुनी है। यह ही क्रम मान, माया, लोभ मे जानना चाहिए।

* प्रथम समय में कृष्टियों का स्थिति काल एक वर्ष (लोभ के उदय के प्रथम समय मे), दो वर्ष (माया के उदय के प्रथम समय मे), चार वर्ष (मान के उदय के प्रथम समय मे) तथा आठ वर्ष (क्रोध के उदय के प्रथम समय मे) है। प्रथम स्थिति के काल का कथन द्वितीय स्थितियों और अन्तर स्थितियो के साथ कहा गया है।

* जिस कृष्टि का वेदन किया जाता है वह यवमध्य रूप है।

* यह यवमध्य सान्तर है : प्रथम स्थिति गुण श्रेणी रूप है, उदयकाल से लेकर उत्तरोत्तर समयवर्ती स्थितियों में प्रदेशाग्र असख्यात गुण रूप से अवस्थित है। द्वितीय उत्तर श्रेणी (उत्तरोत्तर प्रदेशाग्र हीन क्रम से है) रूप है।

* पश्चिम कृष्टि (सज्वल लोभ सम्बन्धी) का वेदक काल अल्प है। पहले की शेष ग्यारह का क्रम से सख्यातवें भाग से अधिक है।

प्रश्न : * कितनी गतियो में, भवो मे, स्थितियो मे, अनुभागों मे और कषायो मे पहले बांधे कर्म कितनी कृष्टियो मे और उनकी कितनी स्थितियो मे पाये जाते हैं ?

उत्तर : * दो गतियों (मनुष्य-तिर्यंच) मे पूर्वबद्ध कर्म भजनीय नही है, दो गतियो (देव-नारकी) मे पूर्वबद्ध कर्म भजनीय हैं।

* एकेन्द्रिय पांच कायों में बांधे एक-एक के साथ उपार्जित कर्म भजनीय है, त्रस काय मे बांधे भजनीय नहीं है। उसके असंख्यात एकेन्द्रिय भवग्रहणों के द्वारा बद्ध कर्म नियम से पाये जाते हैं तथा एक को आदि लेकर सख्यात त्रस भवो मे बद्धकर्म पाये जाते हैं।

* उत्कृष्ट अनुभाग और उत्कृष्ट स्थिति विशिष्ट कर्म भजनीय हैं। कषायों में पूर्व मे बाँधे कर्म अभाज्य हैं।

प्रश्न पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्थाके साथ स्त्री पुरुष और नपुंसक वेद के साथ, मिश्र सम्यक्त्व और मिथ्यात्व प्रकृति के साथ तथा किस योग और उपयोग के साथ पूर्वबद्ध कर्म कृष्टि वेदक के पाये जाते है ?

उत्तर * पर्याप्त-अपर्याप्त अवस्था मे, नपुंसक वेद मे और सम्यक्त्व दशा मे बाँधे कर्म अभाज्य है, स्त्री वेद मे, पुरुष वेद मे और सम्यग्मिथ्यात्व अवस्था मे बाँधे कर्म भाज्य हैं।

* औदारिक और औदारिक मिश्र काययोग मे, चतुर्विध मनोयोग में, चतुर्विध वचन योग मे बाँधे हुए कर्म अभाज्य है। शेष योगो में बाँधे कर्म भाज्य हैं।

* मति और श्रुत उपयोग मे, चक्षु तथा अचक्षु दर्शनोपयोगो मे पूर्वबद्ध कर्म अभाज्य है, अवधि और मन पर्ययज्ञानो मे तथा अवधि दर्शन मे बाँधे हुए कर्म भाज्य हैं।

प्रश्न किस लेश्या मे, किस कर्म मे किस क्षेत्र मे वर्तमान जीव द्वारा साता मे, असाता में, तथा किस लिंग में बाँधे गये कर्म कृष्टि वेदक के पाये जाते है ?

उत्तर * सब लेश्या मे साता म असाता मे वर्तमान रहते हुए बाँधे कर्म अभाज्य हैं।

* असि मसि आदि कार्यों मे, शिल्प कार्यों मे, भाति-भाति के मतों के लिंगों में, और ऊर्ध्व, अधो और मध्य लोक मे बाँधे हुए कर्म भाज्य हैं।

* उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी के काल विभाग मे बाँधे कर्म अभाज्य हैं।

* ये पूर्वबद्ध कर्म सवकृष्टियो के सर्व स्थिति विशेषों और अनुभाग विशेषो मे पाये जाते हैं।

प्रश्न एक समय म बाँधे हुए कर्म प्रदेश किन-किन स्थितियों मे अक्षुब्ध रहते है ? इसी प्रकार कितने भवबद्ध कर्म प्रदेश किन किन स्थितियों मे अक्षुब्ध रहते हैं ?

उत्तर * अन्तरकरण से ऊपर छह आवलियों मे बाँधे समयप्रबद्ध नियम से अक्षुब्ध रहते है। ये चारों ही सज्वलन कषाय सम्बन्धि सभी स्थिति और अनुभाग विशेषो मे अवस्थित रहते हैं।

* बध्यमान आवली के कर्म प्रदेश क्रोध सज्वलन की प्रथम कृष्टि मे पाये जाते हैं, इसके अनन्तर पूर्व दूसरी आवली के बाँधे कर्म क्रोध सज्वलन की तीनों कृष्टियो मे और मान सज्वलन की प्रथम कृष्टि मे पाये जाते हैं, कुल चार मे पाये जाते हैं, तीसरी आवली के सात कृष्टियो मे चौथी के दस में और उससे ऊपर की शेष सब (अर्थात् मे) आवलियों के के बाँधे कर्म सब कृष्टियो मे पाये जाते हैं। ये छह आवलियो मे बाँधे कर्म अक्षुब्ध शेष भवबद्ध कर्म सक्षुब्ध (उदयादि को प्राप्त) होते हैं।

प्रश्न एक समय मे एक समय-प्रबद्ध-शेष तथा भवबद्ध शेष कितनी स्थिति विशेषो और अनुभाग विशेषों मे पाये जाये हैं ?

उत्तर :* एक स्थिति विशेष में नियम से भवबद्ध शेष और समय-प्रबद्ध शेष असंख्यात होते है, वे अनत अविभाग प्रतिच्छेद रूप अनुभाग परिच्छन्दों में वर्तमान होते।

* स्थिति-उत्तर श्रेणी (जिसमें एक-एक के क्रम से स्थितियों में वृद्धि होती है) में भवबद्ध शेष और समयप्रवद्ध शेष असंख्यात होते है।

* क्षपक के वर्ष पृथक्त्व मात्र स्थिति विशेष में तादृश अर्थात् असामान्य स्थितियाँ (जिसमें समय-प्रबद्ध शेष और भवबद्ध शेष संभव नही है) आवली के असंख्याताये भाग प्रमाण पायी जाती है। इसके अनन्तर सामान्य स्थिति रूप उत्तर पद (भवबद्ध शेष और समय प्रबद्ध शेष सहित वाला) नियम से होता है।

प्रश्न : कृष्टि वेदक के प्रथम समय में पूर्वबद्ध ज्ञानावरणादि कर्म किन स्थिति रूप उत्तर पद (भवबद्ध शेष और समय प्रबद्ध शेष सहित वाला) नियम से होता है।

उत्तर : * नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म असख्यात वर्ष की स्थिति वाले पाये जाते है।

* चारों घातियाँ कर्म संख्यात वर्ष की स्थिति वाले पाये जाये है।

* साता, शुभ नाम और उच्चगोत्र की संख्यात शत-सहस्त्र वर्षों की स्थिति बाँधता है, अनुभाग अपने योग्य उत्कृष्ट बाँधता है।

प्रश्न : कृष्टि वेदक किन-किन कर्मो को बाँधता है, किन-किन कर्माशों का वेदय करता है, किन-किन कर्मों का संक्रमण करता है और किन का असक्रामक रहता है ?

उत्तर : (अ) क्रोध-प्रथम कृष्टिवेदक चरम समय में तीन घातियाँ कर्मों का नियम से अन्तर्मुहूर्त कम दस वर्ष प्रमाण स्थिति का वध करता है।

* घातियाँ मे जिनकी अपवर्तना सभव है उनका देश घाति रूप से वध करता है।

* चरम समयवर्ती बादर साम्परायिक क्षपक नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म को वर्ष के अन्तर्गत, और घातियाँ कर्मों को एक दिवस के अन्तर्गत बाँधती है।

* चरम समयवर्ती सूक्ष्म साम्परायिक क्षपक नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म को एक दिवस के अन्तर्गत और घातियाँ कर्मों को भिन्न मुहूर्त प्रमाण बाँधता है।

(ब) मति-श्रुत ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म जिनकी लब्धि (क्षयोपशम विशेष) का कृष्टि वेदक क्षपक वेदन करता है उनके देश घाति अनुभाग का, जिनकी अलब्धि है उनके सर्वघाति अनुभाग का वेदन करता है।

* यश-कीर्ति नाम कर्म और उच्च गोत्र का अनंत गुणित वृद्धि रूप अनुभाग का वेदम करता है; अन्तराय कर्म के अनन्तगुणित हानि रूप अनुभाग का वेदन करता है। शेष कर्मों का अनुभाग भजनीय है।

* (यशकीर्ति, सुभग, आदेय आदि शुभ तथा दुर्भग, अनादेय आदि अशुभ नाम कर्म की प्रकृतियाँ परिणाम प्रत्यायिक है। शुभ के अनुभाग की वृद्धि क्षपक अनन्तगुणित श्रेणी रूप

से अनुभव करता है और अशुभ के अनुभाग को अनन्तगुणित हीन श्रेणी के द्वारा अनुभव करता है। अवोपग्राहिक (भवविपाकी) नाम कर्म की प्रकृतियों का वेदन छह प्रकार की वृद्धि तथा हानि रूप से भजितव्य है।)

प्रश्न 1 कृष्टिकरण करने पर क्षपक के मोहनीय कम के कौन-कौन विचार (स्थिति घात आदि) होते हैं, शेष कर्मों के कौन-कौन वीचार होते हैं ?)

2 क्या वह कृष्टियों का वेदन करता हुआ उन्हें क्षय करता है या संक्षुब्ध (संक्रमण) करता हुआ, अथवा दोनों प्रकार क्षय करता है ?

3 क्या कृष्टियो को आनुपूर्वी से अथवा अनानुपूर्वी से क्षय करता है ?

उत्तर क्रोध की प्रथम द्वितीय और तृतीय कृष्टियों को वेदन करता हुआ, और संक्रमण करता हुआ भी क्षय करता है। चरम अर्थात् बारहवीं कृष्टि का वेदन करता हुआ ही क्षय करता है। शेष को दोनो प्रकार करता है।

प्रश्न क्षपक जिस कृष्टि का वेदन करता हुआ उसे क्षय करता है क्या उसका बंधक भी होता है, तथा जिसका संक्रमण करता हुआ क्षय करता क्या उसका बंधक भी होता है ?

उत्तर जिस कृष्टि को संक्रमण करता हुआ क्षय करता है, क्षपक उसका बंधक नहीं होता। सूक्ष्म सांपरायिक कृष्टि के काल में वह उसका अबंधक होता है। अन्य कृष्टियो के काल में उनका बंधक भी होता है।

प्रश्न 1 जिस-जिस कृष्टि का क्षय करता है उस-उस कृष्टि की किस-किस प्रकार की स्थिति और अनुभागों मे उदीरणा करता है ?

2 जिस कृष्टि को अन्य कृष्टि से संक्रमण करता है तो किस-किस प्रकार की स्थिति और अनुभागों से युक्त कृष्टि मे संक्रमण करता है ?

3 विवक्षित समय मे जिस स्थिति और अनुभाग युक्त कृष्टियों मे उदीरणा और संक्रमण किये हैं अनन्तर समय मे क्या उन्हीं कृषियों मे उदीरणा संक्रमणादि करता है अथवा अन्य कृष्टियो मे करता है ?

उत्तर विवक्षित कृष्टि का जिस कृष्टि में संक्रमण किया जाता है उसके सर्व अनुभाग विशेषो मे संक्रमण होता है, किन्तु उदय मध्यम कृष्टि रूप से जानना चाहिए।

प्रश्न सब स्थिति विशेषों के द्वारा क्या यह क्षपक संक्रमण और उदीरणा करता है ?

उत्तर वेदन नियम से मध्यवर्ती अनुभागो का ही करता है।

प्रश्न, 1 जिन कर्मांशों का अपकर्षण करता है। उनको अनन्तर समय में क्या उदीरणा मे प्रवेश करता है ?

2. पूर्व समय में अपकर्षण किये गये कर्मांशों को अनन्तर समय में उदीरणा करता हुआ सदृश रूप से प्रविष्ट करता है अथवा असदृश रूप से प्रविष्ट करता है ?

3. जिन कर्मांशों का उत्कर्षण करता है, उनको अनन्तर समय में क्या उदीरणा में प्रवेश करता है ?

4. पूर्व समय में उत्कर्षण किये गये कर्मांशों को अनन्तर समय में उदीरणा करता हुआ सदृश रूप से प्रविष्ट करता है या असदृश रूप से प्रविष्ट करता है ?

उत्तर : * जो कर्मांश प्रयोग द्वारा उदयावली में प्रविष्ट कराया जाता है, उसकी अपेक्षा स्थिति क्षय से जो कर्मांश उदयावली में प्रविष्ट होता है, वह नियम से असंख्यात गुणित रूप से अधिक होता है।

* कृष्टि वेदक क्षपक के प्रयोग द्वारा उदय है आदि मे जिसके ऐसी आवली में प्रविष्ट प्रदेशाग्र नियम से उदय से लगाकर आगे आवली काल पर्यन्त असंख्यात गुणित श्रेणी रूप से पाया जाता है।

* क्षपक जिन अनंत वर्गणाओं को उत्तीर्ण करता है, उनमें एक-एक अनुदीर्यमान कृष्टि संक्रमण करती है; तथा, जो आवली में पूर्व प्रविष्ट अवेद्यमान वर्गणाये हैं, वे एक-एक वेद्यमान मध्यम कृष्टि के स्वरूप से नियमतः परिणत होती है।

* एक समय कम पश्चिम आवली में जो उत्कृष्ट और जघन्य अनुभाग स्वरूप कृष्टियाँ हैं, वे मध्यवर्ती बहुभाग कृष्टियों में नियम से परिणमित होती हैं।

प्रश्न : एक कृष्टि से दूसरी कृष्टि को वेदन करता हुआ क्षपक पूर्व-वेदित कृष्टि के शेष अंश को क्या क्षय अर्थात् उदय से संक्रमण करता है, अथवा प्रयोग से सक्रमण करता है, तथा पूर्व-वेदित कृष्टि के कितने अंश शेप रहने पर अन्य कृष्टि मे संक्रमण करता है ?

उत्तर : * एक कृष्टि के वेदित-शेष प्रदेशाग्र को अन्य कृष्टि मे नियम से प्रयोग द्वारा संक्रमण करता है, दो समय कम दो आवलियों मे बँधा हुआ जो द्रव्य है वह कृष्टि के वेदित शेप का प्रमाण है।

* एक समय कम आवली उदयावली के भीतर प्रविष्ट होती है और जिस संग्रह कृष्टि का अपकर्षण कर इस समय वेदन करता है, उस प्रथम कृष्टि की सम्पूर्ण आवली प्रविष्ट होती हैं, इस प्रकार दो आवलियाँ संक्रमण मे होती है।

प्रश्न : कषायों के क्षीण हो जाने पर शेष कर्मों के कौन-कौन क्रिया विशेष रूप विचार होते हैं, तथा क्षपणा, अक्षपणा, बन्ध, उदय और निर्जरा किन-किन कर्मों की कैसी होती है ?
उपसंहार कथन—मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षीण होने तक संक्रमण विधि, अपवर्तना विधि और कृष्टि क्षपण विधि इतनी ये क्षपणा विधियाँ मोहनीय कर्म की आनुपूर्वी से जाननी चाहिए।

क्षपणाधिकार चूलिका (1–12)

1 क्षपक, श्रेणी चढने से पूर्व चार अनन्तानुबंधि और मिथ्यात्व की तीन प्रकृतियों का क्षय करता है।

2 वह अनिवृत्ति गुणस्थान मे अन्तरकरण से पूर्व आठ मध्यम कषायों का क्षय करता है।

3 फिर नपुंसकवेद, स्त्रीवेद छह नोकषाय और पुरुष वेद का क्षय करता है।

4 मध्यम आठ कषायों का क्षय करने के अनन्तर स्त्यान गृद्धि आदि तीन दर्शनावरणीय प्रकृतियां और नरक-तिर्यंच गति सम्बन्धी नाम कर्म की तरह प्रकृतियों का सक्षोभ आदि से क्षय करता है।

5 मोहनीय की सब प्रकृतियो का आनुपूर्वी से संक्रमण होता है लोभ का नहीं होता।

6 स्त्रीवेद तथा नपुंसक वेद का पुरुष-वेद मे संक्रमण करता है, शेष सात नोकषायो का संज्वलन क्रोध मे संक्रमण करता है।

7 जो जीव जिस बंधने वाली प्रकृति मे संक्रमण करता है वह नियम से बंध सदृश ही संक्रमण करता है अथवा बंध की अपेक्षा हीनता में करता है, बंध से अधिक वाली प्रकृति में संक्रमण नही करता।

8 बंध से उदय अधिक होता है उदय से संक्रमण अधिक होता है—अनुभाग के विषय मे गुण श्रेणी असंख्यातगुणी जाननी चाहिए, प्रदेश के विषय मे गुणश्रेणी असंख्यातगुणी जाननी चाहिए।

9 अनुभाग की अपेक्षा साम्प्रतिक बंध से साम्प्रतिक उदय अनंतगुणा होता है, इसके अनंतर काल मे होने वाले उदय से साम्प्रतिक बंध अनंतगुणा होता है।

10 चरम समयवर्ती बादर साम्परायिक क्षपक नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म को वर्ष के अंतर्गत बांधता है तीन घातियां कर्मों को एक दिवस के अंतर्गत बांधता है।

11 जिस कृष्टि का संक्रमण करता हुआ क्षय करता है उसका बंध नहीं करता, सूक्ष्म साम्परायिक कृष्टि के वेदन काल मे उसका बंध नही करता, इतर कृष्टियो के वेदन काल मे उनका बंध करता है।

12 जब तक क्षपक छद्मस्थ अवस्था से नहीं निकलता तब तक तीन घातियां कर्मों का वह वेदक रहता, अनंतर तीनो का क्षय कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो जाता है।

☐

आ० कुन्द कुन्द विरचित

बारस अणुवेक्खा

उत्तम ध्यान द्वारा दीर्घ संसार का क्षय करने वाले सर्व सिद्धों का नमस्कार कर तथा चौबीस जिनों को नमस्कार कर बारह अनुप्रेक्षाये कहता हूँ ।[1] अध्रुव, अशरण, एकत्व, अन्यत्व, ससार, लोक, अशुचि, आश्रव, संवर, निर्जरा, धर्म, बोधि—इन (बारह भावनाओ) का चिन्तन करना चाहिए ।[2]

अध्रुव भावना—

देवराज तथा नरेन्द्रो के उत्तम भवन, शयन, वाहन, शैय्यासन, माता-पिता, स्वजन, भृत्य और चाचा आदि सम्बन्धी अनित्य है ।[3] सभी इन्द्रियों का रूप, आरोग्य, यौवन बल, तेज, सौभाग्य, लावण्य इन्द्र धनुष्य के समान शाश्वत नही होते । अहमिन्द्रो के स्थान (पद), बलदेव आदि पर्याये बुलबुले, इन्द्र धनुष्य, विजली की चमक बादलों की शोभा की भाँति स्थिर नही हैं ।[6] जीव से निबद्ध देह दूध-जल की भाँति शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, तो भोगोपभोग की सामग्री नित्य कैसे हो सकती है ?[6] परमार्थ से आत्मा देवराज तथा मनुजराज के वैभव से भिन्न है; वह आत्मा शाश्वत है, यह नित्य चिन्तन करो ।[7]

अशरण एवं एकत्व भावना —

तीन लोक मे मणि, मंत्र, औषध, रक्षक, घोड़ा, हाथी, रथ तथा सकल विद्यायें मरते समय जीवों की कोई शरण नही है ।[8] जिस इन्द्र के स्वर्ग तो दुर्ग है, देव भृत्य हैं, वज्र अस्त्र है, ऐरावत हाथी है, उसको भी कोई शरण नही है ।[9] देखो ! काल के आ दबाने पर नव निधियां, चौदह रत्न, घोड़ा, मस्त हाथी, चतुरंगिनी सेना चक्रवर्ती की शरण नही होते ।[10] जन्म, जरा, मरण, रोग और भय से आत्मा ही अपनी रक्षा करती है; अतः कर्म के बंध, उदय, और सत्ता से रहित आत्मा ही शरण है ।[11] अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और साधु, ये पाँचो परमेष्ठी आत्मा मे ही चेष्टा करते हैं (स्थित होते है) अतः आत्मा ही मेरी शरण है ।[12] सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और सम्यक्तप, ये चारो आत्मा मे ही चेष्टा करते हैं; अतः आत्मा ही मेरी शरण है ।[13] (जीव) अकेला कर्म करता है, उसका फल भी अकेला भोगता है, अकेला जन्मता मरता है, अकेला दीर्घ संसार मे भटकता है ।[14] विषय निमित्त तीव्र लोभ से अकेला पाप करता है,

है।[57] आश्रव के कारण जीव ससार समुद्र मे शीघ्र डूबता है, अत आश्रव करने वाली क्रिया मोक्ष का निमित्त नही है यह चिन्तन करना चाहिए।[58] आश्रव करने वाली क्रियायें परम्परा मे भी निर्वाण की कारण नही है वे ससार परिभ्रमण का कारण है, इसमे आश्रव को निन्दनीय जान।[59] निश्चय नय से पूर्वोक्त आश्रव के भेद जीव के नहीं है, अत आत्मा का उभय (द्रव्य एव भाव) आश्रवो से मुक्त निरतर चिन्तन करना चाहिए।[60]

सवर भावना—चलता, मलिनता अगाढता से रहित सम्यक्त्व रूप दृढ कपाट से मिथ्यात्व के आश्रव द्वार का निरोध होता है ऐसा जिनदेव ने कहा है।[61] पच महाव्रत रूप मन द्वारा नियम से अविरमण का निरोध होता है। क्रोधादि के आश्रव द्वार कषाय-रहितता के पल्लो से बन्द होते हैं।[62] शुभ योग की प्रवृत्ति अशुभ योग का सवरण करती है, शुभयोग का निरोध शुद्धोपयोग से सभव होता है।[63] पुन शुद्धपयोग से जीव के धर्म शुक्ल (ध्यान) होते हैं, अत सवर का हेतु ध्यान है, यह नित्य चिन्तन करना चाहिए।[64] परमार्थनय से जीव के शुद्ध भाव से (अथवा का) सवर नहीं है (शुद्ध भाव की गगा तो शुद्ध आत्मा में नित्य उमडती है), अत आत्मा सवर के भाव से मुक्त है, ऐसा नित्य चिन्तन करना चाहिए।[65]

निर्जरा भावना—बँधे कर्म प्रदेश का गलना निर्जरा है, यह जिनवर ने कहा है। जिनसे सवर होता है उन्हीं से निर्जरा भी होती है, जानो।[66] पुन, वह दो प्रकार की जानो—(एक) स्वकाल पक्व (दूसरी) तप से की गई, प्रथम चारों गति के जीवो के होती है दूसरी व्रतयुक्त जीवों के।[67]

धर्म भावना उत्तम सुख प्राप्त (जिनदेव) द्वारा सागार तथा अनगारों का सम्यक्त्वपूर्वक धर्म ग्यारह और दस भेद का कहा गया है।[68] दर्शन, व्रत सामायिक, प्रोषध, सचित्त त्याग रात्रि भोजन त्याग ब्रह्मचर्य आरम्भ त्याग परिग्रह त्याग अनुमति त्याग—ये (ग्यारह) देश व्रत कहे गये हैं।[69] उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव सत्य, शौच, सयम, तप त्याग आकिंचन्य ब्रह्मचर्य ये दश विध (मुनि धर्म) हैं।[70] पुन बाह्य म क्रोध उत्पत्ति के साक्षात् कारण हो तो थोडा भी क्रोध जो न करे उसके क्षमा धर्म होता है।[71] कुल रूप जाति बुद्धि तप श्रुत शील में किंचित भी अभिमान जो श्रमण नही करता उसके मार्दव धर्म होता है।[72] कुटिल भाव को छोड कर जो श्रमण निर्मल हृदय से आचरण करता है उसके नियम से तीसरा आर्जव धर्म सभव होता है।[73] पर को सताप के कारण वचन छोड कर जो भिक्षु स्व तथा पर हित कारक वचन बोलता है उसके चौथा सत्य धर्म होता है।[74] कांक्षा भाव की निवृत्ति कर वैराग्य भावनायुक्त होकर जो परममुनि वर्तन करता है, उसके शौच धर्म होता है।[75] पुन व्रत, और समिति के पालन रूप, दण्ड (मन वचन काय योग) त्यागने रूप इन्द्रिय जय रूप परिणाम वाले के नियम से सयम धर्म होता है।[76] विषय तथा कषाय को रोक कर ध्यान की सिद्धि के लिये जो आत्मा की भावना करता है उसके नियम स तप होता है।[77] जो सर्व द्रव्यों में मोह छोड कर तीन (ससार देह भोग) से निर्वेग (उदासीनता) की भावना करता है उसके त्याग होता है, ऐसा जिनवरेन्द्र ने कहा है।[78] जो अनगार निष्परिग्रही होकर सुख-दु ख देने वाले निज परिणामों का निग्रह करके जो निर्द्वन्द वर्तन करता है उसके

आकिंचन्य धर्म होता है।[79] जो सुकृति स्त्रियों के सर्वांग देखता हुआ उनमें दुर्भाव छोड़ देता है वह निश्चय ही दुर्धर ब्रह्मचर्य भाव को धारण करता है।[80] श्रावक धर्म को छोड़ कर जो जीव यति धर्म में वर्तन करता है वह मोक्ष को नही छोडता (अर्थात् पा लेता है); इस प्रकार धर्म का निरंतर चिंतन करना चाहिए।[81] निश्चयनय से जीव सागार—अनगार धर्म से भिन्न है; माध्यस्थ भावना से नित्य शुद्धात्मा का चिंतन करना चाहिए।[82]

बोधि दुर्लभ भावना—जिस उपाय से सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है, उस उपाय की चिंता (चिन्तवन) बोधि होती है; यह अत्यन्त दुर्लभ है।[83] कर्मोदय से उत्पन्न हुई पर्याय रूप क्षायोपशमिक ज्ञान निश्चय से हेय है निश्चय से सम्यग्ज्ञान रूप स्व द्रव्य उपादेय है।[84] मिथ्यात्वादि मूल तथा उत्तर प्रकृतियों के असंख्यात लोक परिणाम पर द्रव्य हैं, निश्चयनय से स्व द्रव्य आत्मा है।[85] इस प्रकार ज्ञान हेय तथा उपादेय रूप होता है; निश्चय से उसमें ये भेद नहीं है। संसार से विरक्त होने के लिये मुनि को बोधि का चिन्तन करना चाहिए।[86]

ये बारह अनुप्रेक्षा प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण, आलोचना, समाधि हैं; अतः निरन्तर इनकी भावना करनी चाहिए।[87] यदि अपनी शक्ति हो तो रात दिन प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, समाधि, सामायिक, आलोचना करते रहो।[88] अनादिकाल से जो पुरुष बारह अनुप्रेक्षाओं को भले प्रकार भा कर मोक्ष गये हैं, उन्हे मै बार बार सम्यग् रूप से प्रणाम करता हूँ।[89] बहुत कहने से क्या, जो श्रेष्ठ पुरुष अतीत में सिद्ध हुए हैं, जो भविष्य में सिद्ध होंगे उन्हे इन ही (अनुप्रेक्षाओं) का माहात्म्य जानो।[90] इस प्रकार निश्चय-व्यवहार जो मुनिनाथ कुंदकुंद द्वारा कहा गया है, उसे जो शुद्ध मन से भाता है वह परम निर्वाण को पाता है।[91]

★

हे प्राणि पात्री वीरजिन ! जग को बताया आपने।
जग जाल में अब तक फँसाया पुण्य और पाप ने ।।
पुण्य एवं पाप से है पार मग सुख-शान्ति का।
यह धरम का ही मरम, विस्फोट आतम क्रान्ति का ।।

नियमसार

(1) जीव अधिकार

श्रेष्ठ अनंत ज्ञान दर्शन स्वभाव वाले वीर जिन को नमस्कार करके मैं केवली श्रुत केवली द्वारा कथित नियमसार कहता हूं।[1] मार्ग और मार्गफल, जिनशासन मे दो प्रकार कहा गया है। मार्ग मोक्ष का उपाय है निर्वाण उसका फल है।[2] जो कार्य नियम से हो वह नियम है, वह दर्शन ज्ञान-चारित्र है। सार वचन वास्तव मे विपरीत के परिहार हेतु कहा गया है।[3] नियम मोक्ष-उपाय है, उसका फल परम निर्वाण है। इन तीनो (दर्शन ज्ञान-चारित्र) की भी भिन्न-भिन्न प्ररूपणा होती है।[4]

आप्त, आगम और तत्त्वों की श्रद्धा से सम्यक्त्व होता है। अशेष दोषो से रहित सकल गुणमय आप्त है।[5] क्षुधा, तृषा, भय, क्रोध, राग, मोह चिंता, जरा, रोग मृत्यु स्वेद खेद, मद, रति, विस्मय निद्रा, जन्म उद्वेग, रूप समस्त दोषों से रहित केवल ज्ञानादि परम वैभव से युक्त परमात्मा कहा जाता है उससे विपरीत परमात्मा नहीं है।[6-7] उनके (आप्त के) मुख से पूर्वापर दोष रहित, शुद्ध वचन आगम कहा जाता है, उस आगम द्वारा तत्त्वार्थ कहे गये हैं।[8] नाना गुण पर्यायो से संयुक्त जीव पुद्गल काय, धर्म, अधर्म, काल और आकाश तत्त्वार्थ कहे गये हैं।[9]

जीव उपयोगमय है उपयोग ज्ञान (एव) दर्शन है, ज्ञानोपयोग स्वभावज्ञान (तथा) विभावज्ञान के भेद से दो प्रकार का है।[10] इंद्रिय रहित, असहाय केवल स्वभाव ज्ञान है, विभावज्ञान सम्यग्ज्ञान एव मिथ्याज्ञान के भेद से दो प्रकार का है।[11] सम्यग्ज्ञान मति, श्रुत अवधि तथा मन पर्यय के भेद से चार प्रकार का है, मति (कुमति) आदि के भेद से अज्ञान चार प्रकार का है।[12] तथा, दर्शनोपयोग स्वभाव एव विभाव के भेद से दो प्रकार का है। इन्द्रिय रहित, असहाय, केवल को स्वभाव कहा जाता है।[13] चक्षु, अचक्षु अवधि—ये तीन विभावदर्शन कहे जाते हैं।

पर्याय दो प्रकार की है—स्वपरापेक्ष और निरपेक्ष।[14] नर, नारक, तिर्यंच एव देव विभाव-पर्यायें कही जाती है। कर्मोपाधि से रहित स्वभाव पर्यायें कही जाती है।[15] मनुष्य दो प्रकार के है—कर्मभूमि मे उत्पन्न तथा भोगभूमि में उत्पन्न। पृथ्वी भेद से नारकी सात प्रकार के जानने चाहिए।[16] तिर्यंच चौदह भेद वाले (तथा) देव चार भेद वाले कहे गये हैं। इनका विस्तार लोक विभाग ग्रन्थ मे से जानना चाहिए।[17]

पुद्‌गल कर्म का कर्त्ता-भोक्ता आत्मा व्यवहार से कहा गया है; कर्म जनित भावों का कर्त्ता भोक्ता आत्मा निश्चय से कहा गया है।[18] द्रव्यार्थिक रूप से जीव पूर्व कथित पर्यायों से रहित हैं, पर्यायार्थिक रूप से वे उनसे (संसारी-मुक्त) दो प्रकार से संयुक्त है।[19]

(2) अजीव अधिकार

पुद्‌गल द्रव्य अणु तथा स्कन्ध के भेद से दो प्रकार का है; स्कन्ध छह प्रकार के हैं, परमाणु दो प्रकार के हैं।[20] अति स्थूल-स्थूल, स्थूल, स्थूल-सूक्ष्म, सूक्ष्म-स्थूल, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म—ऐसे पृथ्वी आदि छह भेद है।[21] भूमि, पर्वत आदि अति स्थूल स्थूल स्कन्ध कहे गये है; घी, जल, तेल आदि स्थूल जानने चाहिए।[22] छाया, धूप आदि स्थूलसूक्ष्म स्कन्ध जानना चाहिए; चार इन्द्रियों (स्पर्शन, रसना, घ्राण तथा श्रोत्र इन्द्रियों) के विषय सूक्ष्म स्थूल स्कन्ध कहे गये हैं।[23] पुनः कर्मवर्गणा के योग्य स्कन्ध सूक्ष्म है, इनसे विपरीत स्कन्ध अतिसूक्ष्म कहे गये हैं।[24] फिर जो चार धातुओं (पृथ्वी, जल, तेज, वायु) का हेतु है, उसे कारण परमाणु जानो; स्कन्धों के अन्त को कार्य परमाणु जानो।[25] जो स्वयं अपना आदि है, मध्य है, अन्त है, अविभागी है उसे परमाणु द्रव्य जानो।[26] एक रस, एक रूप, एक गंध तथा दो स्पर्श उस (परमाणु) के स्वभाव गुण है। विभाव गुण वाले (पुद्‌गल) जैन दर्शन में सर्व प्रकट (सर्व इन्द्रियो से ग्राह्य) कहे गये हैं।[27] अन्य की अपेक्षा रहित जो परिणाम है वह स्वभाव पर्याय है; पुनः स्कन्ध रूप परिणाम विभाव पर्याय है।[28] निश्चय से परमाणु पुद्‌गल द्रव्य व्यवहार से है।[29]

धर्म जीव पुद्‌गलों के गमन का तथा अधर्म स्थिति का निमित्त है; आकाश जीवादि सभी द्रव्यों के अवगाहन का निमित्त है।[30] समय, आवलि के भेद से (काल) दो प्रकार का है, अथवा तीन प्रकार का (भूत, भविष्य और वर्तमान रूप) है। अतीत काल संस्थानों (अनन्त सिद्धों के संसार दशा के अनन्त संस्थान, भव) के संख्यात आवलियों द्वारा गुणाकार जितना है।[31] संप्रति समय जीव पुद्‌गलों से अनंत गुने हैं। जो लोकाकाश में स्थित है वह परमार्थ काल है।[32] जीवादि द्रव्यों के परिवर्तन का कारण काल है, धर्म आदि चार द्रव्यो की स्वभाव पर्याय (ही) होती है।[33] काल को छोड़कर इन छह द्रव्यों को (अर्थात् शेष पांच द्रव्यों को) जिनदर्शन में अस्तिकाय कहा गया है। काय का अर्थ बहुप्रदेशीपना है।[34] मूर्त द्रव्यो के सख्यात, असंख्यात एवं अनंत प्रदेश होते हैं; पुनः, धर्म, अधर्म और जीव के असख्यात प्रदेश होते है। लोकाकाश के भी इतने ही हैं, अलोकाकाश के अनंत-प्रदेश हैं। काल के कायपना (विस्तार) नही है क्योकि वह एक-प्रदेशी है।[35-36]

पुद्‌गल द्रव्य मूर्त है, शेष मूर्तता रहित है। जीव चैतन्य भाववाला है, शेष द्रव्य चेतना गुण से रहित है।[37]

(3) शुद्ध भावाधिकार

जीवादि बाह्य तत्त्व हेय है, कर्मोपाधि से उत्पन्न गुण पर्यायों से रहित अपनी आत्मा-उपादेय हैं।[38]

जीव के वास्तव मे न स्वभाव स्थान हैं, न मानापमानभाव स्थान हैं, न हर्ष भाव स्थान हैं, न अहर्षभावस्थान हैं, न स्थिति बंध स्थान हैं, न प्रकृति स्थान अथवा प्रदेश स्थान है, न

अनुभाग स्थान हैं अथवा न उदय स्थान हैं, न क्षयिकभाव हैं न क्षयोपशम स्वभाव स्थान हैं न औदायिकभाव स्थान हैं, अथवा न उपशम स्वभाव स्थान हैं।[39-41] जीव के चतुर्गति-भव-परिभ्रमण जन्म, जरा, मरण रोग, शोक, कुल, योनि, जीवस्थान मार्गणा स्थान नहीं है।[42]

आत्मा निर्दण्ड (मन-वचन-काय योग रहित), निर्द्वन्द निर्मम, निष्कल (शरीर रहित), निरालम्ब नीराग, निर्दोष, निर्मूढ, निर्भय है।[43] आत्मा निर्ग्रन्थ (परिग्रह रहित), नीराग, निःशल्य, सकल दोषनिर्मुक्त निष्काम, निष्क्रोध, निर्मान, निर्मद है। वर्ण, रस गंध, स्पर्श, स्त्री पुरुष-नपुंसकादि पर्यायें संस्थान संहनन—ये सब जीव के नहीं है।[45] जीव को अरस अरूप, अगंध अव्यक्त चेतना-गुण वाला, अशब्द, अलिंग ग्रहण (किसी बाह्य चिन्ह से ग्रहण नही होने वाला) तथा अनिर्दिष्ट संस्थान (आकार) वाला जानो।[46] जैसे सिद्ध भगवान होते हैं संसारी जीव भी उनके समान जरा-मरण जन्म से मुक्त, आठ गुणों (अनंत ज्ञान दर्शन सम्यक्त्व-सुख-वीर्य-सूक्ष्मत्व-अव्याबाधत्व-अगुरु-लघुत्व) से अलंकृत होते हैं।[47] जैसे लोकाग्र मे सिद्ध अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय, निर्मल, विशुद्धात्मा है, वैसे संसार मे जीवो को जानो।[48] ये सब भाव व्यवहार नय के आश्रय (जीवो के) कहे गये हैं। शुद्ध नय से तो संसार मे सभी जीव सिद्ध स्वभाव वाले हैं।[49] पूर्वोक्त सकल भाव (क्रोध, मान आदि) पर द्रव्य, पर स्वभाव होने से हेय है अतस्तत्त्व आत्मा स्व द्रव्य होने से उपादेय हैं।[50]

विपरीत अभिनिवेश (अभिप्राय) से रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है, संशय, विमोह (विपरीतता) विभ्रम (अनध्यवसाय) से रहित सम्यग्ज्ञान होता है।[51] चलता मलिनता एव अगाढता से रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है, हेय उपादेय रूप तत्वो का जानना ज्ञान है।[52] सम्यक्त्व के निमित्त जिनसूत्र (एव) उसके जानने वाले पुरुष हैं, दर्शन मोहनीय का क्षय आदि अन्तर्हेतु कहा गया है। (अथवा) सम्यक्त्व का निमित्त जिनसूत्र है, दर्शन मोहनीय के क्षय आदि सहित इसके जानने वाले पुरुष अन्तर्हेतु कहे गये हैं।[53]

सुनो, मोक्ष हेतु सम्यक्त्व है सम्यग्ज्ञान है (एव) चारित्र है। अत व्यवहार एव निश्चय से मैं चारित्र कहता हू।[54] व्यवहार नय के चारित्र मे व्यवहार नय का तपश्चरण होता हैं, निश्चयनय के चारित्र मे निश्चय से तपश्चरण होता है।[55]

(4) व्यवहार चारित्राधिकार

जीवो के कुल यानि, जीवस्थान, मार्गणास्थान आदि जानकर उनके आरम्भ (हानि) से निवृत्ति रूप परिणाम होना प्रथमव्रत है।[56] राग से, द्वेश से अथवा मोह से झूठ बोलने के परिणाम को जो साधु छोडता है, उसी के दूसरा व्रत होता है।[57] गाव मे, नगर मे अथवा वन मे अन्य की वस्तु देखकर जो साधु उसके ग्रहण का भाव छोडता है उसी के तीसरा व्रत होता है।[58] स्त्री रूप देखकर उसके प्रति वाछा भाव की निवृत्ति अथवा मैथुन संज्ञा से रहित परिणाम चौथा व्रत है।[59] निरपेक्ष भावपूर्वक सब परिग्रहो का त्याग, चारित्र भार का वहन करने वालो का पाचवा व्रत कहा गया हैं।[60]

जो श्रमण प्रासुक मार्ग से दिन मे आगे जूडा प्रमाण देखकर चलता है, उसके ईर्या समिति होती है।[61] जो पैशून्य हास्य कर्कशता परनिंदा आत्म प्रशसा के वचन छोडकर स्व पर हितकारक

रूप से बोलता है, उसके भाषा समिति होती है।[62] कृत-कारित-अनुमोदना रहित, प्रासुक, प्रशस्त और दूसरे द्वारा दिये गये भोजन करने रूप सम्यक् आहार ग्रहण एषणा समिति है।[63] पुस्तक, कमण्डल आदि लेने-रखने में प्रयत्न परिणाम (सावधानी) आदान-निक्षेपण समिति कही गई है।[64] दूसरे के उपरोध (बाधा) से रहित, गूढ, प्रासुक भूमि में मलादि का त्याग, श्रमण के प्रतिष्ठापना समिति होती है।[65]

कालुष्य, मोह, संज्ञा (आहार, भय, मैथुन और परिग्रह), राग, द्वेषादि अशुभभावों का त्याग व्यवहार नय से मनोगुप्ति कही गई है।[66] स्त्री-राजा-चोर-भोजन कथादि रूप पाप के हेतु वचन का त्याग अथवा असत्यादि की निवृत्ति रूप वचन, वचनगुप्ति है।[67] बाँधना, छेदना, मारना, सिकोड़ना, फैलाना आदि काय की क्रियाओं की निवृत्ति काय गुप्ति कही गई है।[68] मन में से रागादि की निवृत्ति मनोगुप्ति जानो; असत्यादि की निवृत्ति, अथवा, मौन वचन गुप्ति होती है।[69] काय क्रिया की निवृत्ति रूप कायोत्सर्ग शरीर सम्बन्धी गुप्ति है, अथवा, हिंसादि की निवृत्ति शरीर गुप्ति कही गई है।[70]

अरहत घन घाति कर्म से रहित, केवलज्ञानादि परमगुण सहित, चौतीस अतिशय सयुक्त-ऐसे होते है।[71] अष्ट कर्म बंध को नष्ट करने वाले, अष्ट महागुणों से समन्वित, परम, लोकाग्र मे स्थित, नित्य—ऐसे सिद्ध होते हैं।[72] पचाचार से परिपूर्ण, पचेन्द्रिय रूपी हाथी के मद का दलन करने वाले, धीर, गुण गभीर—ऐसे आचाय होते हैं।[73] रत्नत्रय स सयुक्त, जिन कथित पदार्थों के शूरवीर उपदेशक, निष्कांक्ष भाव सहित—ऐसे उपाध्याय होते हैं।[74] व्यापार से विप्रमुक्त, (छूटे हुए) चार प्रकार की आराधनाओं (दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप) मे सदा लीन, निर्ग्रन्थ, निर्मोह—ऐसे साधु होते हैं।[75]

ऐसी भावना में व्यवहार नय का चारित्र होता है; निश्चय नय का चारित्र इसके पश्चात कहूंगा।[76]

(5) परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार

न मैं नरक भाव हूं, न तिर्यंच पर्याय हूं, न मनुष्य पर्याय हूं, न देव पर्याय हूं, न मार्गणा-स्थान हूं, न गुणस्थान हूं, न जीवस्थान हूं, न बालक हूं, न बुढ़ा न तरुण हूं, न इनका कारण हूं; न राग हूं, न द्वेश हूं, न मोह हूं, न इनका कारण हूं, न क्रोध हूं; न मान हूं, न माया हूं, न लोभ हूं—न मैं (इन भावों का) कर्त्ता हूं, न कारयिता (कराने वाला) हूं, न कर्त्ताओं का अनुमोदक हूं।[77-78] इस प्रकार भेदभ्यास से जीव मध्यस्थ होता है; अतः चारित्र होता है; उसे दृढ़ करने हेतु मैं प्रतिक्रमणादि कहूंगा।[82]

वचन रचना छोड़कर, रागादि भावों को हटाकर जो आत्मा का ध्यान करता है, उसके प्रतिक्रमण होता है।[83] विराधना को विशेष रूप से छोड़कर जो आराधना में वर्तता है, वह प्रतिक्रमण कहलाता है क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय है।[84] अनाचार को छोड़कर जो आचार में स्थिरभाव करता है, उन्मार्ग को छोड़कर जिनमार्ग मे जो स्थिरभाव करता है, शल्यभाव को छोड़कर जो साधु निःशल्य

हो परिणमन करता है, अगुप्तिभाव को छोड़कर त्रिगुप्ति से गुप्त जो साधु होता है वह प्रतिक्रमण है क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय है।[85-88] आर्तरौद्र ध्यान को छोड़कर जो धर्म-शुक्ल ध्यान ध्याता है, वह जिनवर निर्दिष्ट सूत्र में प्रतिक्रमण कहा जाता है।[89]

मिथ्यात्वादि भाव जीव के द्वारा पूर्व मे दीर्घकाल तक भाये गये हैं और सम्यक्त्वादि भाव नहीं भाये गये हैं।[90] मिथ्या दर्शन ज्ञान चारित्र निरवशेष रूप से छोड़कर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को भाता है सो प्रतिक्रमण है।[91] उत्तमार्थ आत्मा है उसमे स्थित होकर मुनिवर कर्म नष्ट करते हैं अत ध्यान ही उत्तमार्थ का प्रतिक्रमण है।[92] ध्यान मे लीन साधु सब दोषों का परित्याग करते हैं, अत ध्यान ही सर्व अतिचारो का प्रतिक्रमण है।[93] प्रतिक्रमण नाम के सूत्र में जैसा प्रतिक्रमण का वर्णन किया गया है, उसे जानकर जो भाता है वह प्रतिक्रमण है।[94]

(6) निश्चय प्रत्याख्यानाधिकार

सकल जल्प (वचन विस्तार) को छोड़कर अनागत शुभाशुभ का निवारण करके जो आत्मा को ध्याता है उसके प्रत्याख्यान होता है।[95]

ज्ञानी ऐसा चिन्तवन करता है कि जो केवल ज्ञान स्वभावी केवल दर्शन स्वभावी, सुखमय केवल शक्ति स्वभावी है वह मैं हू, जो निजभाव नही छोड़ता है किंचित भी परभाव को ग्रहण नही करता है सबको जानता देखता है वह मैं हू, प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेशबन्ध से रहित जो आत्मा है वह मैं हू। इस प्रकार चिन्तवन करता हुआ ज्ञानी उसी मे स्थिर भाव करता है।[96-98]

निर्ममत्व मे उपस्थित होकर मैं ममत्व को छोड़ता हू। आत्मा मेरा आलम्बन है, शेष का मैं परिहार करता हू।[99] मेरे ज्ञान मे आत्मा है दर्शन और चरित्र मे आत्मा है प्रत्याख्यान मे आत्मा है, संवर-योग मे आत्मा है।[100] जीव अकेला मरता है, स्वय अकेला जीता है अकेले का मरण होता है अकेला कर्म रजमुक्त सिद्ध होता है।[101] ज्ञान दर्शन लक्षण वाला शाश्वत एक आत्मा मेरा है मुझसे बाह्य शेष सब पदार्थ सयोग लक्षण वाले हैं।[102]

जो कुछ मेरा दुश्चरित्र है उस सबको मैं त्रिविध रूप से (मन वचन काय से) छोड़ता हू, और त्रिविध सब सामायिक को निराकार करता हूँ।[103] सब जीवों मे मुझे समता है मेरा किसी से वैर नही है आशा छोड़कर मैं वास्तव मे समाधि को प्राप्त होता हूँ।[104]

जो निष्कषाय हैं, दान्त (इन्द्रिय दमन करने वाले) हैं, शूर हैं व्यवसायी (उद्यमी) हैं संसार भय से भीत हैं उन्हें सुखमय प्रत्याख्यान होता है।[105] इस प्रकार जो जीव और कर्म मे नित्य भेदाभ्यास करता है वह सयत नियम से प्रत्याख्यान धारण करने मे समर्थ होता है।[106]

(7) परमालोचनाधिकार

कर्म नोकर्म एव विभाव गुणपर्यायों से रहित आत्मा को जो श्रमण ध्याता है, उसे आलोचना होती है।[107] शास्त्र में आलोचना का लक्षण चार प्रकार का कहा गया है—आलोचन, आलुञ्छन, अविकृतिकरण और भावशुद्धि।[108]

समभाव मे परिणामों को संस्थापकर (स्थिर कर) जो आत्मा को देखता है वह **आलोचन है**, ऐसा परम जिनेन्द्र का उपदेश जान ।[109] कर्म रूपी वृक्ष का मूल छेदने में समर्थ, समभाव रूप, स्वाधीन, निज परिणाम **आलुंछन** कहा गया है ।[110] कर्म से भिन्न विमल गुणों के निवास आत्मा को जो मध्यस्थ भाव से भाता है. उसे **अविकृतिकरण** जानो ।[111] मद, मान, माया आदि लाभ से रहित भाव **भावशुद्धि** है; ऐसा लोकालोक के दृष्टाओ द्वारा भव्यो को कहा गया है ।[112]

(8) शुद्ध निश्चय प्रायश्चिताधिकार

व्रत, समिति, शील और संयम के परिणाम तथा इन्द्रिय निग्रह रूप भाव प्रायश्चित है और निरन्तर कर्त्तव्य है ।[113] **अपने क्रोधादि भावों के क्षयादि की भावना करते रहना तथा निजगुण चिन्तवन निश्चय प्रायश्चित कहा गया है** ।[114] (योगीजन) क्रोध को क्षमा से, मान को मृदुता से, माया को सरलता से, लोभ को सन्तोष से—इस प्रकार चतुर्विध कषायो को वास्तव मे जीतते हैं ।[115] **उत्कृष्ट जो बोध, ज्ञान, वह ही अपना चित्त; उसे जो मुनि नित्य धारण करता हैं, उसे प्रायश्चित होता है** ।[116] बहुत कहने से क्या, अनेक कर्मो के क्षय का हेतु महर्षियों का सर्वतपश्चरण प्रायश्चित जानो ।[117] अनन्तानन्त भवों में उपार्जित शुभाशुभ कर्म समूह तपश्चरण से नष्ट होता है, अत: **तप प्रायश्चित है** ।[118]

आत्म स्वरूप के आलंबन वाले भावों से जीव सर्वभावो का परिहार कर सकता है, **अत: ध्यान सर्वस्व है** ।[119] शुभाशुभ वचन रचना और रागादि भावो को दूर कर जो आत्मा को ध्याता है उसके निश्चय से नियम है ।[120] **कायादि परद्रव्यों में स्थिर भाव को छोड़कर जो निर्विकल्प रूप से आत्मा को ध्याता है । उसके कायोत्सर्ग होता है** ।[121]

(9) परम समाध्याधिकार

वचनोच्चारण की क्रिया को छोड़कर वीतराग भाव से जो आत्मा को ध्याता है, उसे परम समाधि है ।[122] सयम, नियम और तप से तथा धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान से जो आत्मा को ध्याता है, उसे परम समाधि है ।[123] समता रहित श्रमण को वनवास, कायक्लेश, विचित्र उपवास अध्ययन, मौन आदि क्या करते हैं ?[124]

सर्व सावद्य (प्राणी पीड़ा) से विरत, तीन गुप्तियों का धारक, इन्द्रिय निरोधी व्यक्ति के, केवली शासन में, **स्थायी सामायिक है** ।[125] जो स्थावर-त्रस सर्व जीवों में समभावी है उसके, केवली शासन में, **स्थायी सामायिक है** ।[126] जिसकी आत्मा संयम, नियम और तप मे सन्निहित (लीन) है उसके, केवली शासन में, **स्थायी सामायिक है** ।[127] जिसके राग द्वेश विकृति नही करते उसके, केवली शासन मे, **स्थायी सामायिक है** ।[128] जो आर्त-रौद्र ध्यानों को नित्य वर्जता है उसके, केवली शासन में, **स्थायी सामायिक है** ।[129] जो पुण्य और पाप के भाव को नित्य वर्जता है (हनता है) उसके, केवली शासन में, स्थायी सामायिक है ।[130] जो हास्य, रति, शोक, अरति का नित्य वर्जन करता है उसके, केवली शासन मे, स्थायी सामायिक है ।[131] जो नित्य धर्म और शुक्ल ध्यान ध्याता है उसके, केवली शासन में, स्थायी सामायिक है ।[132]

(10) परमभक्त्याधिकार

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र मे जो श्रावक और श्रमण भक्ति करते हैं उनके जिनेन्द्र कथित निवृत्ति (निर्वाण) भक्ति है।[133] जो मोक्षगत (मुक्त) पुरुषों के गुण भेद जानकर उनकी भी परमभक्ति करता है, उसके व्यवहारनय से (निवृत्ति भक्ति) कही गई है।[135] जो जीव मोक्ष पथ मे अपने को स्थित करके निवृत्ति भक्ति करता है, उससे वह असहाय गुण स्वरूप निजात्मा को प्राप्त करता है।[136]

जो साधु रागादि के परिहार मे अपने को लगाता है वह योगभक्तियुक्त है, अन्य को योग किस प्रकार है ?[137] सब विकल्पों के अभाव मे जो साधु अपने को लगाता है, वह योग भक्तियुक्त है, अन्य को योग किस प्रकार है ?[138] विपरीत अभिनिवेश को छोडकर जैन कथित तत्त्व में जो अपने को लगाता है उसका निजभाव योग है।[139] ऋषभादि जिनवरेन्द्र इस प्रकार श्रेष्ठ योगभक्ति कर निवृत्ति सुख को प्राप्त हुए अत श्रेष्ठ योगभक्ति धारण करो।[140]

(11) निश्चयपरमावश्यकाधिकार

जो अन्यवश नहीं होता है उसका कर्म आवश्यक कहाता है, उसे कर्म के विनाश करने वाला योग निवृत्ति का मार्ग कहा गया है।[141] जो (पर के) वश नहीं है वह अवश है, अवश का कर्म आवश्यक जानो, यह निरवयव (शरीर मुक्त) होने की युक्ति उपाय है। यह (आवश्यक शब्द की) निरुक्ति है।

जो श्रमण अशुभ भाव से वर्तन करता है वह अन्यवश है, अत उसे आवश्यक लक्षण वाला कर्म नहीं है।[143] जो सयत शुभ भाव मे आचरण (वर्तन) करता है, वह अन्यवश होता है, अत. उसे आवश्यक लक्षण वाला कर्म नही है।[144] जो द्रव्य-गुण-पर्यायों में चित्त लगाता है सो भी अन्य-वश है, मोहान्धकार रहित श्रमण ऐसा कहते हैं।[145]

पर भाव को छोडकर जो आत्मा को निर्मल स्वभाव रूप ध्याता है वह आत्मवश है, उसका कर्म आवश्यक कहा जाता है।[146] यदि आवश्यक चाहते हो तो आत्म स्वभाव में स्थिर भाव करो, उससे जीव का श्रामण्य गुण सम्पूर्ण होता है।[147] आवश्यक से हीन श्रमण चारित्र से भ्रष्ट है, अत पुन पूर्वोक्त क्रम से आवश्यक करना चाहिए।[148] आवश्यक से युक्त श्रमण अन्तरात्मा है, आवश्यक से हीन श्रमण बहिरात्मा है। अन्तर्बाह्य जल्प में जो वर्तता है सो बहिरात्मा है, जो जल्पों में (विकल्पों में) नहीं वर्तता है वह अन्तरात्मा है।[150] जो धर्म शुक्ल ध्यान मे परिणत है वह भी अन्तरात्मा है ध्यान विहीन श्रमण बहिरात्मा है, ऐसा जानो।[151]

निश्चय चारित्र स्वरूप प्रतिक्रमण आदि क्रियायें करते रहने से श्रमण वीतराग चारित्र मे आरूढ़ होता है।[152] वचनमय प्रतिक्रमण वचनमय प्रत्याख्यान और नियम वचनमय आलोचना इन सबको स्वाध्याय जानो।[153] यदि कर सको तो ध्यानमय प्रतिक्रमणादि करो, यदि शक्ति विहीन हो तो श्रद्धान ही कर्तव्य है।[154] जिनकथित सूत्र मे प्रतिक्रमणादि की स्पष्ट परीक्षा करके योगी को मौन व्रत सहित जिनराय को नित्य साधना चाहिए।[155] नाना (प्रकार के) जीव हैं, नाना

(प्रकार के) धर्म है, नाना प्रकार की लब्धियां हैं, अतः अपने और अन्य धर्मावलम्बियों के साथ वचन विवाद छोड़ दो।[156]

जैसे कोई एक व्यक्ति निधि को प्राप्त कर उसका फल सुजनों के बीच भोगता है वैसे ही ज्ञानी ज्ञाननिधि को पर (विपरीत) जनों के समूह को छोड़कर भोगता है।[157]

सब ही पुराण पुरुष इस प्रकार आवश्यक करके अप्रमत्त आदि स्थान प्राप्त कर केवली हुए हैं।[158]

(12) शुद्धोपयोगाधिकार

व्यवहार से केवली भगवान सबको जानते देखते है; नियम से (निश्चय से) केवलज्ञानी आत्मा को जानते देखते है।[159] केवल ज्ञानी के दर्शन तथा ज्ञान युगपत् वर्तते हैं, जैसे सूर्य का प्रकाश और ताप वर्तता है; ऐसा जानो।[160]

यदि तू मानता है कि ज्ञान पर प्रकाशक ही है और दृष्टि आत्म प्रकाशक ही है तथा आत्मा स्व-पर प्रकाशक है; ज्ञान के पर प्रकाशक होने से ज्ञान से दर्शन भिन्न हैं क्योंकि दर्शन पर द्रव्यगत नही है ऐसा (तेरे द्वारा) कहा गया है। आत्मा पर प्रकाशक हैं तो आत्मा से दर्शन भिन्न है क्योंकि दर्शन परद्रव्यगत नही है ऐसा (तेरे द्वारा) कहा गया है। व्यवहारनय से ज्ञान पर प्रकाशक है, अतः दर्शन पर प्रकाशक है; व्यवहारनय से आत्मा पर प्रकाशक है, अतः दर्शन पर प्रकाशक है। ज्ञान निश्चयनय से आत्म प्रकाशक है, अतः दर्शन आत्म प्रकाशक है; निश्चयनय से आत्मा आत्म प्रकाशक है अतः दर्शन आत्म प्रकाशक है।[161-165] केवली भगवान आत्म स्वरूप को देखते है, लोकालोक को नही; ऐसा यदि कोई कहता है तो उसे क्या दूषण (दोष) है।[166] ज्ञान आत्मा को छोड़कर अन्य को जानता भी अन्य प्रवेश नही करता अतः सब कुछ को जानते भी केवली अपने ही ज्ञान की पर्यायो को, आत्मा को जान रहे हैं, अन्य को नहीं। यह निश्चयनय की दृष्टि है।

मूर्त-अमूर्त, चेतन-अचेतन द्रव्यो को, स्वयं को तथा सबको देखने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष (एव) अतीन्द्रिय है।[167] नाना गुण पर्यायो से सयुक्त पूर्वोक्त सकल द्रव्यो को जो सम्यक् रूप से नही देखता उसे परोक्ष दृष्टि है।[168] केवली भगवान लोकालोक को जानते हैं, आत्मा को नहीं; ऐसा यदि कोई कहता है तो उसे क्या दूषण है।[169] यह व्यवहारनय का कथन है।

ज्ञान जीव का स्वरूप है अतः आत्मा आत्मा को जानता है; यदि आत्मा को न जाने तो (आत्मा/ज्ञान) आत्मा से भिन्न है।[170] आत्मा को ज्ञान जान, ज्ञान को आत्मा जान, इसमें सन्देह नहीं है; अत ज्ञान तथा दर्शन स्वपर प्रकाशक है।[171]

जानते देखते हुए केवली को ईहापूर्वकता (इच्छापूर्वकता) नहीं है, अतः (वे) केवल ज्ञानी है और इसलिये उन्हे अबधक कहा गया है।[172] परिणामपूर्वक वचन जीव के बध कारण होते है, अतः परिणाम रहित वचन होने से ज्ञानी के बध नही है।[173] ईहापूर्वक वचन जीव के बध के कारण

सम्यक्त्व से ज्ञान होता है, ज्ञान से सर्व पदार्थों की उपलब्धि होती है। फिर पदार्थों की उपलब्धि होने पर (व्यक्ति) श्रेयाश्रेय को जानता है।[15] श्रेयाश्रेय का जानने वाला दु शील का उडा देता है और शीलवान हो जाता है। शील के फल से अभ्युदय और फिर निर्वाण प्राप्त करता है।[16]

जिन वचन विषय सुख का विवेचन करने वाली, अमृतभूत जरा मरण की व्याधि हरने वाली और सर्व दु खों का क्षय करने वाली औषध है। [17]

एक जिन रूप, दूसरा उत्कृष्ट श्रावक रूप, तीसरा अवरस्थितो का (आर्यिका रूप) लिंग है। चौथा लिंग दर्शन मे नही है।[18]

छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाच आस्तिकाय, सात तत्व कहे गये है। उनके स्वरूप मे जो श्रद्धा करता है उसे सम्यग्दृष्टि जानो।[19] व्यवहार से जीवादि मे श्रद्धा करना और निश्चय से आत्मा मे श्रद्धा करना जिनवरो द्वारा सम्यक्त्व कहा गया है।[20] इस प्रकार जिनेन्द्र द्वारा कहा गया रत्नत्रय म सारगुण और मोक्ष का प्रथम सोपान दर्शनरत्न धारण करो।[21] जो कर सकते हो सो करो, न कर सकते हो उसकी श्रद्धा करो। श्रद्धा करने वाले को, केवलीजिन द्वारा सम्यक्त्व कहा गया है।[22]

जो दर्शन, ज्ञान, चरित्र तप, विनय मे नित्यकाल सुस्वस्थ (भली प्रकार लीन) हैं, व गुणवादी, गुणधर वन्दनीय है।[23] जो सहज उत्पन्न (यथा जात) रूप को देखकर सत्कार नहीं करता, मत्सरभाव करता है, वह सयम सहित भी मिथ्या दृष्टि है।[24] जो देवो से वन्दनीय शील सहित रूप को देखकर गौरव करता है, वह सम्यक्त्व रहित है।[25] असयत की वदना नही करनी चाहिए, वह वस्त्रविहीन हो तो भी वन्दनीय नही है। दोनो ही समान होते हैं, एक भी सयत नही होता।[26] देह की वदना नहीं होती, न हो कुल की, न ही जाति-सयुक्त की। गुणहीन की कौन वदना करता है ? वह तो न श्रमण है न श्रावक।[27] मैं सम्यक्त्व सहित शुद्ध भाव से तपस्वी श्रमण की–उनके शील, गुण, ब्रह्मचर्य और सिद्धि की ओर गमन की वन्दना करता हू।[28] चौसठ चमर सहित, चौतीस अतिशय सयुक्त, निरन्तर बहुत जीवो का हित तथा कर्मक्षय मे जो निमित्त कारण हैं (वे तीर्थंकर वन्दने योग्य है)।[29]

जिनशासन मे मोक्ष ज्ञान, दर्शन तप और चरित्र-चारों के समायोग सहित सयमगुण से कहा गया है।[30] ज्ञान मनुष्य का सार है, सम्यक्त्व भी मनुष्य का सार है, सम्यक्त्व से चरित्र होता है और चरित्र से निर्वाण।[31] सम्यक्त्व सहित ज्ञान, दर्शन, तप और चारित्र, चारो के समायोग से जीव सिद्ध होते है, इसमे सन्देह नही है।[30] जीव विशुद्ध सम्यक्त्व कल्याण परम्परा सहित प्राप्त करता है अत सुरासुर लोक म सम्यक्दर्शन रत्न पूज्य है।[33] व्यक्ति उत्तम गोत्र सहित मनुष्यत्व पाकर तथा सम्यक्त्व पाकर अविनाशी सुख और मोक्ष पाता है।[34]

जब तक जिनेन्द्र एक हजार आठ लक्षणयुक्त और चौतीस अतिशय सयुक्त विहार करते है, वह स्थावर प्रतिमा कहे जाते हैं।[35] बारह प्रकार तप युक्त विधि के बल से कर्मो को नष्ट कर, देह छोडकर (जिनेन्द्र) अनुत्तर निर्वाण को प्राप्त करते हैं।[36]

सूत्रपाहुड

अरहंत द्वारा कहा गया और गणधर देवों द्वारा सम्यक् रूप से गूँथा गया सूत्रार्थ खोज का प्रयोजन वाले श्रमण परमार्थ (मोक्ष) साधते है।[1] सूत्र मे आचार्य परम्परा रूप मार्ग से ज भले प्रकार बताया गया है उसे शब्द और अर्थ दोनो रूप से जानकर जो शिवमार्ग मे वर्तन करता वह भव्य है।[2] सूत्र का जानकार ससार मे जन्म होने का नाश करता है। **जैसे सुई असूत्र हो पर नष्ट हो जाती है, सूत्र सहित नष्ट नहीं होती, वैसे ही संसार में गत होने पर जीव का अदृश्यमा स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष नष्ट होता है, पर सूत्र सहित पुरुष के वह नष्ट नही होता।**[3-4]

जिनेन्द्र कथित सूत्रार्थ, जीवाजीवादि बहुविध अर्थ तथा उनमे हेयाहेय जो जानता है, व सम्यग्दृष्टि है।[5] जो जिनोक्त सूत्र है उन्हे व्यवहार व परमार्थ से जानो। उन्हे जानकर योगी सुर प्राप्त करता है, (तथा) मलपुंज को खिपाता है।[6] सूत्र का अर्थ और पद जिसके नष्ट हो गये उसे मिथ्यादृष्टि जानो; वस्त्रधारी को खेल मे भी पाणिपात्र मे (निर्ग्रन्थ मुनियो की भाँति) आहा दान नही करना चाहिए।[7] (जिनेन्द्र के सूत्रार्थ से भ्रष्ट) हरिहर तुल्य पुरुष भी (चाहे) स्वर्ग चं जाये पर वे कोटिभव भ्रमण करते है, सिद्धि प्राप्त नही करते, उन्हे ससारस्थ ही कहा गया है। सिंह की भाँति उत्कृष्ट आचरण करने वाला, गुरुपद का भार उठाने वाला यदि स्वच्छन्द विहा करता है तो पाप पाता है, मिथ्यादृष्टि होता है।[9]

परमजिनवरेन्द्रो द्वारा कहा गया निर्वस्त्र, पाणिपात्र रूप एक ही मोक्ष मार्ग है, शेष स अमार्ग है।[10] जो सयम से सहित और आरम्भ परिग्रह से विरत है, वह ही सुरासुर-मनुष्य लो मे वन्दनीय होता है।[11]

कर्मक्षय रूप निर्जरा करने वाले सैकड़ो शक्तियों से सहित जो साधु बाईस परीषह सहते वे वन्दनीय है।[12] अन्य वस्त्रधारी लिंगी जो सम्यग्दर्शन ज्ञान संयुक्त है वे इच्छाकार करने योग है।[13] जो इच्छाकार के महार्थ मे तथा सूत्र मे स्थित है, आरम्भ आदि कर्म छोड़ता है, अपने स्था (प्रतिमा) में सम्यक् प्रकार स्थित है वह परलोक मे सुख करने वाला होता है।[14] **जो आत्मा क नहीं इच्छता है वह अशेष धर्म को करता हुआ भी सिद्धि को नहीं पाता है. उसे संसारस्थ ही कह गया है।**[15] इस कारण से इस आत्मा की तीन प्रकार श्रद्धा करो, जिससे मोक्ष प्राप्त होता है उसे प्रयत्न पूर्वक जानो।[16]

साधु के बालाग्र जितना भी परिग्रह का ग्रहण नही होना, वह एक स्थान पर अन्य क दिया हुआ पाणिपात्र मे भोजन करता है।[17] वह यथाजात रूप सदृश होता है, अपने हाथ से तिल तुष मात्र भी ग्रहण नही करता है, यदि थोडा बहुत भी ले तो वह फिर निगोद जाता है।[18] जिन मत मे अल्प-बहुत परिग्रह ग्रहण रूप लिंग होता है वह गर्हित है, जिन वचन मे लिंग परिग्रह रहित निर्दोष है।[19]

जो पंचमहाव्रत तथा तीन गुप्ति युक्त है, वह संयत है। मोक्षमार्ग निर्ग्रन्थ रूप है, वह ही वन्दनीय है।[20] दूसरा लिंग उत्कृष्ट श्रावक का कहा गया है, वह भाषा समिति व मौन पूर्व

श्रमण करके पात्र मे भिक्षा (भोजन) प्राप्त करता है।[21] स्त्रियों का लिंग इस प्रकार है वे एक बार भोजन करती हैं, आर्यिका भी एक वस्त्र धारी होती हैं और वस्त्र धारण किये ही भोजन करती है।[22] जिन शासन मे वस्त्रधारी तीर्थंकर भी हो ना सिद्धि नही प्राप्त करता। नग्नता ही विशिष्ट मोक्ष मार्ग है, शेष सब उन्मार्ग है।[23]

स्त्रियो की योनि मे, स्तनो के मध्य भाग मे, नाभि मे, कांखो मे सूक्ष्मकायिक जीव कहे गये हैं। अत वह दीक्षा कैसे प्राप्त हो ?[24] यदि स्त्री दर्शन से शुद्ध है तो मार्ग सयुक्त कही गई है। घोर चरित्र का आचरण करती हुई वह पापी नहीं है।[25] स्वभाव से ही स्त्रियों का चित्त शुद्ध नहीं होता, ढीले भाव होते हैं मासिक स्राव होता है। अत शकाशील होने से उनके दर्शन नही होता।[26]

जो अल्प ग्राह्य (जैसे भोजन) को अपने कपडे धोने हेतु समुद्रजल की भांति ग्रहण करते हैं और जिनकी इच्छा निवृत्त हो गई है उनके सब दु ख निवृत्त हो गये हैं।[27]

चरित्र पाहुड

सर्वज्ञ, सर्वदर्शी निर्मोह, वीतराग, परमेष्टी, तीन जगत के भव्यो द्वारा वद्य अरहतो की वदना करके सम्यक् ज्ञान-दर्शन की शुद्धि का कारण तथा मोक्ष आराधना का हेतु चरित्र पाहुड कहूँगा।[1-2]

जो जानता है वह ज्ञान है तथा जो देखता है वह दर्शन कहा गया है। ज्ञान और दर्शन के समयोग मे चारित्र होता है।[3] ये तीनों भाव जीव के अक्षय अमेय हैं, इनके शोधनार्थ जिनो ने दो प्रकार का चरित्र कहा है।[4] प्रथम सम्यक्त्वाचरणचारित्र जिनज्ञान सदेशित (कहा गया) शुद्ध है।[5] इस प्रकार जिनेन्द्र के कहे हुए मिथ्यात्व दोष तथा शकादि सम्यक्त्व के मलों को जानकर त्रिविध योगो से छोड दो।[6] निशकित तथा निकाक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये आठ (सम्यक्त्व के अग या गुण हैं)।[7] इन गुणो से विशुद्ध जिन सम्यक्त्व को जो मोक्षस्थानार्थ ज्ञानयुक्त आचरण करता है, वह प्रथम सम्यक्त्वाचरण चरित्र है।[8] सम्यक्त्वाचरण से शुद्ध, अमूढदृष्टि ज्ञानी यदि सयमाचरण से भी सुशुद्ध हो जाये तो शीघ्र निर्वाण प्राप्त करता है।[9] जो सम्यक्त्वाचरण से भ्रष्ट हैं वे मनुष्य सयमाचरण का आचरण भी करते हो, पर वे अज्ञान से मूढ निर्वाण को नहीं पाते हैं।[10]

जो जीव अजीव भाव से अमोहित रह जिन सम्यक्त्व का आराधन करते हैं उनमे ये लक्षण देखे जाते हैं वात्सल्य, विनय, अनुकम्पा, सुदानदक्षता, मार्ग तथा गुणो की प्रशसा, उपगूहन तथा रक्षण।[11-12]

कुदर्शन और अज्ञान स्वरूप मोहमार्ग मे उत्साह, भावना, प्रशसा, सेवा, श्रद्धा करने वाला जिन सम्यक्त्व को छोड देता है।[13] ज्ञान पूर्वक सुदर्शन मे उत्साह, भावना, प्रशसा सेवा, श्रद्धा करने वाला जिन सम्यक्त्व को नहीं छोडता है।[14]

ज्ञान से अज्ञान को, विशुद्ध सम्यक्त्व से मिथ्यात्व को, अहिंसा धर्म से आरम्भ सहित मोह को छोड दो।[1] सगत्याग मे दीक्षित हो, सुतप और सुसयम भाव मे प्रवृत्त हो, निर्मोही और वीतराग

होने से सुविशुद्ध ध्यान होता है।[16] मूढ जीव मिथ्यात्व और अबुद्धि के उदय से अज्ञान मोह दोष से मलिन मिथ्यादर्शन मार्ग मे बँधते है (प्रवृत्त होते है)।[17]

यह आत्मा द्रव्य पर्यायों को सम्यग्दर्शन से देखता है, ज्ञान से जानता है और सम्यक्त्व से श्रद्धा करता है (और तब) चरित्र के दोषों को छोड़ता है।[18] जिस मोह रहित जीव के ये तीन भाव होते है, वह निजगुणो को आराधता हुआ शीघ्र ही कर्म का परिहरण (नाश) करता है।[19] सम्यक्त्व का अनुचरण करता हुआ धीर व्यक्ति संसार की मर्यादा स्वरूप दुःख का संख्यात गुणा असंख्यातगुणा क्षय करता है।[20]

सागार और निरागार के भेद से संयमाचरण दो प्रकार का है। सागार सग्रन्थ है और निरागार परिग्रह रहित है।[21] दर्शन, व्रत, सामायिक, औपध, सचित (त्याग), रात्रिभोजन (त्याग), ब्रह्मचर्य, आरम्भ (त्याग) देश विरत है।[22] पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत सागार संयमाचरण है।[23] स्थूल त्रसकाय का वध, स्थूल मृषा, स्थूल अदत्त ग्रहण, परमहिला का परिहार, परिग्रह-आरम्भ परिमाण (पाँच) अणुव्रत है।[24] दिशाविदिशा का मान प्रथम, अनर्थदण्डत्याग द्वितीय भोगोपभोग परिमाण तृतीय गुणव्रत है।[25] सामायिक प्रथम, प्रौषध द्वितीय, अतिथिपूजा तृतीय और अन्त मे सल्लेखना चतुर्थ (शिक्षाव्रत है)।[26] इस प्रकार कलासहित (एक देश) श्रावक धर्म रूप संयमाचरण कहा ! अब कलारहित (सम्पूर्ण) शुद्ध यति धर्म रूप सयमाचरण कहूँगा।[27]

पंचेन्द्रिय संवरण, पाँचव्रत, पच्चीस क्रिया, पाँच समिति, तीन गुप्ति निरागार संयमाचरण हैं।[28] अमनोज्ञ और मनोज्ञ, सजीव तथा अजीव द्रव्यो मे राग-द्वेष न करना पँचेन्द्रिय सवर कहा गया है।[29] हिंसाविरति रूप अहिंसा, असत्यविरति, अदत्तविरति, चतुर्थ अब्रह्मविरति और पंचम संगविरति (महाव्रत) है।[30] महापुरुष इन्हे साधते है, पूर्व मे महापुरुषो ने आचरे है, तथार्थ महान है, अतः ये महाव्रत है।[31]

वचनगुप्ति, मनगुप्ति, ईर्यसिमिति, सुदाननिक्षेप, अवलोक्य भोजन अहिंसा की भावनायें है।[32] क्रोध, भय, हास्य, लोभ, मोह से विपरीत भावना द्वितीय की पाँच भावना है।[33] शून्यागार निवास, विमोचितावास, परोपरोध, एषणाशुद्धि और सावर्मी अविसवाद (तृतीय की पांच भावना है)।[34] महिलालोकन, पूर्वरतिस्मरण संसक्तवसतिका, विकथा और पौष्टिक रस, इन पांच से विरति चतुर्थ की भावना है।[35] समनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध मे रागद्वेश आदि का परिहार अपरिग्रह की भावनायें है।[36] संयम की शुद्धि रूप ईर्या, भापा, एपणा, आदान और निक्षेपण जिनदेव ने ये पाँच समितियाँ कही है।[37]

जिन मार्ग में भव्य जनों के वोधनार्थ जिनेन्द्रों द्वारा ज्ञान और ज्ञान का स्वरूप जैसा कहा गया उसे आत्मा जानो।[38] जीवाजीव के भेद को जो जानता है वह सम्यग्ज्ञानी होता है, उसका शंकादि दोप रहित होना जिनशासन में मोक्ष मार्ग है।[39] दर्शन, ज्ञान और चारित्र, तीनो को परम श्रद्धा से जानो। इनको जानकर योगी शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करते है।[40] ज्ञान सलिल को पाकर जो निर्मल सुविशुद्ध भाव संयुक्त होते है, वे त्रिभुवन चूड़ामणि, शिवालयवासी सिद्ध हो जाते है।[41] ज्ञान गुण से विहीन सुइष्ट लाभ प्राप्त नही करते हैं. यह जानकर उस सम्यग्ज्ञान को

नो ।[40] चरित्र समारूढ ज्ञानी आत्मा में परद्रव्य की इच्छा नहीं करते हैं तथा शीघ्र अनुपम सुख ते हैं, यह निश्चय जानो ।[43]

इस प्रकार वीतराग ज्ञान द्वारा कहे गये सम्यक्त्व और संयम के आश्रय से दो प्रकार का रित्र संक्षेप में कहा गया ।[44] स्फुट रूप में रचित इस चरणपाहुड को भाव शुद्धि से भावो तुम चतुर्गति को छोड़कर शीघ्र अपुनर्भव हो जाओगे ।[45]

बोध पाहुड

बहुत शास्त्रों के अर्थों के ज्ञाता, संयमी, सम्यक्त्व और शुद्ध तपश्चरणवाले, कषाय मल से वर्जित, शुद्ध आचार्यों की वंदना करके भव्यजनों के बोधनार्थ जिन मार्ग के सम्बन्ध में जिनवरों द्वारा जैसा कहा गया वह, छहकाय के जीवों को सुखकर, संक्षेप से कहूंगा, सुनो ।[1-2] अरहंत द्वारा भले प्रकार कहे गये आयतन, चैत्यगृह, जिन प्रतिमा दर्शन, जिन बिंब, सुवीतराग जिनमुद्रा, आत्मीयज्ञान देव तीर्थंकर अरहंत, गुण विशुद्ध प्रव्रज्या—ये यथाक्रम से जानने योग्य हैं ।[3/4] जिसके मन-वचन काय रूप द्रव्य और इन्द्रिय विषय अधीन हैं ऐसा संयमी जिन मार्ग में आयतन कहा गया है ।[5] मद, राग, दोष, मोह, क्रोध, लोभ जिसके अधीन हैं ऐसा पंचमहाव्रतधारी महर्षि आयतन कहा गया है ।[6] जिस ज्ञान युक्त विशुद्ध ध्यान वाले, अर्थों के ज्ञाता, मुनियों में श्रेष्ठ के सदय सिद्ध हो गये वह सिद्धायतन है ।[7] अपने को बुद्ध (ज्ञानी) तथा अन्य को चेतन जानने वाला, पंचमहाव्रत से शुद्ध ज्ञानमय पुरुष को चैत्यगृह जानो ।[8] बंध-मोक्ष, सुख-दुःख चेतन आत्मा के होते हैं । अतः यह चैत्यगृह जिन मार्ग में छह काय का हित करने वाला कहा गया है ।[9] दर्शन-ज्ञान से शुद्ध चरित्र वाले निर्ग्रन्थ, वीतराग की अपनी व अन्य की देह जिन मार्ग में जंगम प्रतिमा (कही गई) है ।[10] जो शुद्ध चरण का आचरण करते हैं, शुद्ध सम्यक्त्व को जानते देखते हैं, वह निर्ग्रन्थ संयत प्रतिमा वंदने योग्य है ।[11] अनंत दर्शन अनंत ज्ञान, अनंतवीर्य, अनंत शाश्वत सुख, अदेह, आठकर्मों से मुक्त, निरूपम, अचल, अक्षोभ जंगम रूप से निर्मापित और सिद्ध स्थान में स्थित सिद्ध ध्रुव व्युत्सर्ग (देहरहित) प्रतिमा है ।[12-13] जो निर्ग्रन्थ रूप ज्ञानमय, सम्यक्त्व रूप, संयम एवं सुधर्म रूप मोक्षमार्ग को दिखाता है वह जिन मार्ग में दर्शन कहा गया है ।[14] जैसे फूल गंधमय और दूध घीमय होता है वैसे ही मुनिश्रावक रूप सम्यग्दर्शन-ज्ञानमय ही होता है । जो ज्ञानमय, संयमशुद्ध, सुवीतराग, कर्मक्षय के कारण शुद्ध है और दीक्षा-शिक्षा देते हैं, वे जिनबिंब है ।[16] उनको प्रणाम करो, सब प्रकार पूजा करो विनय करो, वात्सल्य करो, उनके दर्शन, ज्ञान, चेतनाभाव ध्रुव हैं ।[17] जो तप, व्रत और गुणों से शुद्ध है, शुद्ध सम्यक्त्व को जानता देखता है, ऐसा दीक्षा शिक्षा देने वाला अर्हन्त मुद्रा है ।[18]

दृढ संयम मुद्रा द्वारा इन्द्रिय मुद्रा तथा कषाय दृढ मुद्रा की जाती है । यह मुद्रा (वश करना) ज्ञानपूर्वक होती है तो जिन मुद्रा कही जाती है ।[19]

संयम संयुक्त और सुध्यान के योग्य मोक्ष मार्ग का लक्ष्य ज्ञान से प्राप्त होता है अतः ज्ञान जानने योग्य है ।[20] जैसे धनुष बाण रहित व्यक्ति लक्ष्य को प्राप्त नहीं करता है, वैसे ही अज्ञानी

मोक्ष मार्ग का लक्ष्य नहीं प्राप्त करता है।[21] ज्ञान पुरुष का होता है, उसे वह सत्पुरुष प्राप्त करता है जो विनय संयुक्त होता है। मोक्ष मार्ग का लक्ष्य रखने वाला ज्ञान से लक्ष्य प्राप्त करता है।[22] **जिसका मति रूपी धनुष स्थिर है, श्रुत रूप-प्रत्यंचा है और रत्नत्रय रूपी बाण अच्छे हैं, और जिसने परमार्थ का लक्ष्य बांधा है वह मोक्ष मार्ग को नहीं चूकता है।**[23]

वह देव है जो अर्थ, धर्म, काम और ज्ञान भले प्रकार दे। तथा दे वह जिसके स्वयं के पास अर्थ, धर्म और दीक्षा है।[24] धर्म दया विशुद्ध है, सर्व आरंभ (परिग्रह) से रहित प्रव्रज्या है तथा भव्य जीवों का उदय करने वाला मोह रहित देव है।[25] **हे मुनि! विशुद्ध व्रत-सम्यक्त्व रूप, पंचेन्द्रिय संयम, रूप निरपेक्ष तीर्थ में दीक्षा-शिक्षा रूप** सुस्नान करो।[26] **यदि भावों में शान्ति है तो निर्मल सुधर्म, सम्यक्त्व, संयम, तप, ज्ञान जिन मार्ग में तीर्थ है।**[27]

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव (निक्षेपानुसार) गुणपर्यायें, च्यवन, आगति, सपदा—ये भाव अरहंत को बताते हैं।[28] अनन्त दर्शन और ज्ञान जिनके है, आठ कर्मो के नाश से मोक्ष को जो प्राप्त है, निरूपम गुणो मे आरूढ है ऐसे वे अरहंत हैं।[29] जरा, व्याधि, जन्म-मरण, चतुर्गति गमन, पुण्य, पाप और दोषमय कर्मो को नष्ट कर जो ज्ञानमय हो गये है वे अरहंत हैं।[30] **गुणस्थान, मार्गणा स्थान, पर्याप्ति, प्राण और जीव स्थान—इन पांच विधियों से स्थापना कर अर्हन्त पुरुषों को प्रणाम करो/प्राप्त** करो।[31] तेरहवे सयोग केवली गुणस्थान मे अर्हन्त होते है, उनके चौतीस अतिशय होते है और आठ प्रातिहार्य होते हैं।[32]

गति, इन्द्रिया, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, सज्ञी और आहार (ये चौदह मार्गणाये है)।[33] **आहार शरीर, इन्द्रिय, मन, आनपान और भाषा-रूप पर्याप्ति गुणों से समृद्ध उत्तम देव अर्हन्त हैं।**[34] पांच इन्द्रिय प्राण, मनवचन काय रूप तीन बल प्राण, आनपान प्राण और आयु प्राण—ये दस प्राण होते है।[35] पंचेन्द्रिय मनुष्य रूप चौदहवें जीव स्थान मे इतने गुण गण मे युक्त गुणस्थान आरूढ अर्हन्त होते हैं।[36] अर्हन्त पुरुष की औदारिक काय जरा-व्याधि दु ख से रहित, आहार-निहार वर्जित, विमल, श्लेष्म-थूक-पसीना-जुगुप्सा से रहित होती है। वह दस प्राण, पर्याप्तियां, एक हजार आठ लक्षण, गाय के दूध और शंख सा सफेद सर्वांग मे मास और रुधिर वाली होती है। इस प्रकार सर्व अतिशय वाली निर्मल सुगन्धिमय वह देह होती है।[39-10] मद-राग-दोष रहित, कषाय मल से रहित, सुविशुद्ध, चित्त-परिणाम से रहित कैवल्य अवस्था जानो।[10] द्रव्य पर्यायी को अरहन्त सम्यग्दर्शन से देखते है, ज्ञान से जानते है। अर्हन्त अवस्था को सम्यक्त्व गुण से विशुद्ध जानो।[41]

शून्य गृह, तरु मूल, उद्यान, श्मशानवास, गिरिगुहा, गिरिशिखर, भयंकर वन अथवा बस्ती (मुनियो के निवास स्थान है)।[42] **मुनियों के स्वाधीन रहने का क्षेत्र, तीर्थ, जिन वचन, चैत्य (मूर्ति आदि) आलय (वेदी आदि) जिन भवन, जिनवर ध्यान के योग्य है।**[43] पच महाव्रतयुक्त, पचेन्द्रिय संयत, निरपेक्ष, स्वाध्याय ध्यानयुक्त, मुनियो मे श्रेष्ठ इन उक्त की इच्छा करते ही है।[41]

गृह-परिग्रह के मोह से मुक्त होना, बाईस परीषह और कषाय जीतना, पापारंभ से मुक्त होना प्रव्रज्या कही जाती है।[15] प्रव्रज्या धान्य, वस्त्र, सोना, शैय्यासन आदि के कुदान से रहित होती है।[16] प्रव्रज्या शत्रु-मित्र मे, प्रशसा-निंदा में, लाभ-अलाभ में, तृण-कनक मे समभाव वाली कही

गई है।[47] उत्तम मध्यम घर मे, दरिद्र-ईश्वर मे निरपक्ष होकर सवत्र पिण्ड (आहार) ग्रहण करना प्रव्रज्या कही जाती है।[48] निग्रन्थ, नि मग, निर्मान, आशा रहित, अराग, निर्दोष निमम, निरहकार होना प्रव्रज्या कही जाती।[49] निर्नेह, निर्लोभ, निर्मोह, निर्विकार, निष्कलुष, निमम, निराश (आशा रहित) भाव होना प्रव्रज्या कही जाती है।[50] यथा जात रूप सदृश्य, लवायमान भुजा रखने वाली, निरायुध, परकृत मकान मे रहने वालो के प्रव्रज्या कही जाती।[51] उपशम क्षमा दम आदि मे युक्त, शरीर सस्कार से रहित, (तैलादि से रहित) रूक्ष वदन रहना मद-राग द्वेश मे रहित होना प्रव्रज्या कही जाती है।[52] मूढ भाव मे विपरीत के, अष्ट कर्मों आदि मिथ्यात्व को नष्ट करने वाले के सम्यक्त्व गुण से विशुद्ध के प्रव्रज्या कही जाती है।[53] जिन माग मे प्रव्रज्या छह सहननधारी निग्रन्थ पुरुषो के कही गई है। उसे भव्य पुरुष भाते हैं और यह कमक्षय का कारण कही गई है।[54] सवदर्शी द्वारा प्रव्रज्या इस प्रकार कही गई है कि उसमे तिलतुस मात्र भी वाह्य परिग्रह और उसका भाव नहीं है।[55]

प्रव्रज्या ग्रहण करने वाला उपसग तथा परिषह सहन करता है, नित्य निजन दश मे शिला, काष्ठ, भूमितल आदि सब स्थानों मे रहता है।[56] पशु, महिला, नपु सक और कुशीलो का सग नहीं करता, विकथा नहीं करना तथा स्वाध्याय-ध्यान युक्त होना प्रव्रज्या कही गई है।[57] तप-व्रत गुणो मे शुद्ध, सयम और सम्यक्त्व गुणो मे विशुद्ध तथा शुद्ध गुणो से शुद्ध प्रव्रज्या कही गई है।[58] निग्रन्थ विशुद्ध सम्यक्त्व शुद्ध जिन माग मे आयतन स्वरूप, गुणों से परिपूर्ण प्रव्रज्या जैसी कही गई है वह सक्षेप से इस प्रकार है।[59]

जिन माग मे जिनवरो द्वारा जैसा शुद्ध रूपस्थ मोक्ष माग निरूपित हुआ है वह छह काय के जीवो का हितकारी भव्य जनों के बोध हेतु कहा गया है।[60] भाषा सूत्रों मे शब्द विकार रूप जैसा मोक्ष माग जिनेन्द्र द्वारा प्ररूपित किया गया है उसे भद्रबाहु के शिष्य द्वारा जानकर कहा गया है।[61] वारह अग विज्ञान और चौदह पूर्वागो के विपुल विस्तार के ज्ञाता श्रुत ज्ञानी गमक गुरु भद्रबाहु जयवत हो।[62]

भाव पाहुड

जिनवरेन्द्रो को, नरेन्द्र, सुरेन्द्र, और भवनेन्द्र द्वारा वदनीय सिद्धो को तथा अवशिष्ट सयतो को सर झुकाते हुए वदना कर मैं भाव पाहुड कहूँगा।[1]

जिन भगवान कहते हैं कि भाव ही प्रथम लिंग है द्रव्य लिंग परमार्थ नहीं है, भाव गुण-दोषो का कारणभूत है।[2] भाव विशुद्धि के निमित्त वाह्य परिग्रह का त्याग किया जाता है, अभ्यन्तर परिग्रह से युक्त के वाह्य त्याग व्यर्थ है।[3] भाव रहित को सिद्धि प्राप्त नहीं होती, चाहे वह बहुत जन्मान्तरो मे लम्बे हाथ रखे और वस्त्र त्याग कर कोटाकोटि काल तप करे।[4] परिणामों मे अशुद्धि सहित व्यक्ति यदि वाह्य परिग्रह का त्याग करता है तो वाह्य परिग्रह का त्याग भाव रहित का क्या करेगा?[5]

भाव को प्रथम जानो, भाव रहित लिंग से क्या ? हे पार्थ ! यह शिवपुरी पथ जिनेन्द्र द्वारा प्रयत्नपूर्वक कहा गया है ।[6] हे सत्पुरुष ! अनादिकाल से अनन्त संसार में भाव रहित होकर बहुत वार वाह्य निर्ग्रन्थ रूप तूने ग्रहण किये और छोड़े हैं ।[7]

जीव! भीषण नरक गति में, तीर्यंच गति में, कुदेव-मनुष्य गति में तूने तीव्र दुःख पाये है । तू जिन भावना भा ।[8] सात नरकवासो मे दारुण, भीषण असहनीय दुःख हे जीव ! तूने सुचिरकाल तक निरन्तर सहे ।[9] तीर्थंच गति में भाव रहित तूने खनन, उत्तापन, वेदन, व्युच्छेदन, निरोधन प्राप्त किये ।[10] मनुष्य रूप मे आगन्तुक, मानसिक, सहज, शारीरिक चार प्रकार मे दुःख अनन्त काल तक पाये है ।[11] स्वर्गलोक मे देवागनाओं के वियोग काल मे शुभ भावना से रहित हे महायश तूने तीव्र मानसिक दुःख प्राप्त किये है ।[12] द्रव्यलिंगी होकर तूने कन्दप आदि पाँच अशुभ भावना भा कर स्वर्ग में हीन देव बना है ।[13] अनादि काल से अनेक बार पार्श्वस्थ रूप कुभावना के भाव बीजों को भा कर तूने दुःख पाया है ।[14] हीन देव के रूप मे देवो के बहुविध गुण वैभव, ऋद्धि, माहात्म्य देखकर तूने बहुत मानसिक दुःख पाया है ।[15] चतुर्विध विकथा मे आसक्त मदमत्त, प्रकट अशुभ भाव के प्रयोजय वाला होकर तू अनेक बार कुदेवत्व को प्राप्त हुआ है ।[16] हे मुनि प्रवर ! तू चिरकाल अनेक जननियो के अशुचि, बीभत्स, पापमल की बहुलतावाले गर्भवास में बसा है ।[17] हे महायश ! अनन्त जन्मान्तरों मे अन्य, अन्य माताओ के स्तन का सागर के जल अधिक दूध तूने पिया है ।[18] तेरे मरने के दुःख से अन्य-अन्य अनेक जननियो के रुदन का नयन नीर सागर के जल से भी अधिक था ।[19]

अनन्त भवसागर मे तेरे कटे, टूटे केश, नख, नाल, अस्थि यदि इकट्ठे किये जाये तो वह मेरु से भी अधिक हो जाये ।[20] तू त्रिभुवन के मध्य अनात्मवश होकर चिरकाल जल, थल, अग्नि, पवन, आकाश, गिरि, नदी गुफा, वृक्ष, वन-सर्वत्र बसा ।[21] भुवनोदरवर्ती सर्व पुदगलो को तूने पुनः-पुनः ग्रहण किया, भोगा पर तृप्ति प्राप्त नही की ।[22] तृषो से पीड़ित तेरे द्वारा त्रिभुवन का सकल जल पिया गया, तो भी तेरी तृषा का छेद नही हुआ । अतः तू भव-मथन (जन्म-मरण के चक्र को नष्ट करने) का उपाय कर ।[23] हे धीर मुनिवर । तूने अनन्त भव सागर मे अनेक शरीर धारण किये, छोडे इनका कोई प्रमाण नही है ।[24]

विष, वेदना, रक्तक्षय, भय, शस्त्रग्रहण, संक्लेश, आहार और श्वास के निरोध से आयु टूट जाती है ।[25] हिम से, जलने से, पानी से, ऊँचे पर्वत तथा वृक्ष पर चढ़कर गिरने से, रस विद्या के योग धारण से, अन्य विविध प्रसंगों से मनुष्य तीर्थंच भवों में बहुत वार पैदा होकर अपमृत्यु का तीव्र महादुःख, हे मित्र । तूने प्राप्त किया ।[26-27] तू निगोदवास मे एक अन्तर्मूहूर्त मे छ्यासठ हजार तीन सो छत्तीस वार मरण को प्राप्त हुआ ।[28] एक अन्तर्मुहूर्त मे बेइन्द्रिय के अस्सी, तेन्द्रिय के साठ, चौन्द्रिय के चालीस पचेन्द्रिय के चौबीस क्षुद्र भव जान कि तूने प्राप्त किये ।[28]

रत्नत्रय के नही प्राप्त करने से इस प्रकार दीर्घ ससार मे, हे जीव ! तूने भ्रमण किया, ऐसा जिन वर ने कहा है । तू उस रत्नत्रय का आचरण कर ।[30] जो आत्मा आत्मा मे रत है वह प्रकट सम्यग्दृष्टि होता है, आत्मा को जानना सम्यग्ज्ञान है, उसका आचरण करना चरित्र है । यह मार्ग है ।[31]

हे जीव ! अनेक जन्मान्तरो मे तू कुमरण कर मरा। अब जन्म और मरण का नाश करने वाला सुमरण मा।[32] तीन लोक मे परमाणु मात्र भी स्थान नही है जहाँ द्रव्य श्रमण न जन्मा मरा हो।[33] परम्परा भाव रहित होने से जिन लिंग को पाकर भी जीव जन्म-जरा मरण से पीडित अनन्त काल तक रहा।[34] अनन्त भव सागर मे जीव ने प्रदेश, समय, पुद्गल, आयु परिणाम, नाम और काल बहुत बार ग्रहण किये और छोडे।[35] तीन सौ तियालीस राजू प्रमाण लोकक्षेत्र मे आठ प्रदेशों को छोडकर कोई प्रदेश नहीं है, जहाँ जीव नहीं डोला हो।[36]

मनुष्य के एक एक अगुली मे छियानवे छियानवे रोग जानो, तो शेष शरीर म कितने रोग रोग होंगे ?[37] सब रोग तूने पूर्व भव मे परवश से सहे हैं, महायश ! इन्हे तू फिर सहेगा। बहुत कहने मे क्या ?[38] तू बार बार नव दस मास पित्त, आत, मूत्र, फेफस, कलेजा, रुधिर, खरिस कृमि जाल से भरे उदर मे रहा है।[39] तुझे माता के उदर मे पिता और माता के ससग से आहार प्राप्त हुआ, माता के भक्षण किये अन्न की छर्दि (वमन) तूने ग्रहण की और खरिस (रुधिर मे मिला अपक्व मल) के बीच रहा।[40]

हे मुनिवर ! शैशव काल के अज्ञान मे अशुचिताओ के बीच तू लेटा, बालपन मे बहुत बार अशुचि पदार्थ खाये।[41] (हे मुनि !) मांस, हड्डी, शुक्र, रक्त, पित्त, आंतडियां शव की भांति दुर्गंधयुक्त, खरिस वसा, पीव, राध से भरी देह कुटिया का चिंतन करो।[42]

हे धीर ! भाव मुक्त ही मुक्त है, बन्धु मित्रो से मुक्त मुक्त नहीं है, यह जानकर तू अभ्यन्तर वासना छोड दे।[43] देहादि परिग्रह त्याग आतापन योग धारण कर धीर बाहुबली मान कषाय से कलुषित कितने काल तक रहे।[44] हे भव्यो से नमन योग्य ! देह-आहार आदि व्यापार के लोभी मधुपिंगल नामक मुनि निदान मात्र से श्रमणत्व प्राप्त नही कर सके।[45] अन्य एक वशिष्ठ मुनि निदान के दोष से दुःख को प्राप्त हुए। अतः ऐसा कोई निवास स्थान नही है। जहा यह जीव न डोला हो।[46] चौरासी लाख योनियों के निवास (स्वरूप इस लोक मे) ऐसा कोई प्रदेश नही है जब जीव भाव रहित श्रमण होकर न डोला हो।[47]

भाव से साधु होता है, द्रव्य रूप से ही साधु नहीं होता है, अतः भाव करो, (कोरे) द्रव्य लिंग धारी बाहु मुनि भी अभ्यन्तर के दोष से सम्पूर्ण दंडक नगर को भस्म कर रौरव नरक मे पडा।[49] और, श्रेष्ठ दर्शन-ज्ञान-चरित्र से प्रभ्रष्ट द्रव्य श्रमण द्विपायन भी अनन्त संसारी हुआ।[50]

शिवकुमार नामक भाव श्रमण युवतियो से घिरा हुआ भी धीर विशुद्धमति संसार का त्यागने वाला हुआ।[51] केवली भगवान का कहा हुआ ग्यारह अग रूप सकल श्रुत पढकर भी अभव्य सेन भाव श्रमणत्व को प्राप्त नही हुआ।[52] 'तुषमास' रटते हुए विशुद्ध भाव वाले, महानुभाव शिवभूति प्रकट केवल ज्ञानी हो गये।[53]

भाव से नग्न होता है, बाह्य नग्न लिंग से क्या ? भाव लिंग द्रव्य लिंग (दोनो) से कर्म प्रकृतियों का समूह नष्ट होता है।[54] भाव-रहित नग्नत्व अकार्य है, ऐसा जिनेन्द्र द्वारा कहा गया है।

यह जानकर हे धीर ! नित्य आत्मा को भावो ।[55] देहादि के परिग्रह से रहित, मान-कषाय का सकल त्यागी, जिसकी आत्मा आत्मा मे रत है ऐसा साधु भाव लिंगी है ।[56]

(भाव लिंगी साधु विचार करता है) मै ममत्व को छोड़ता हूँ, निर्ममत्व में उपस्थित होता हूँ, आत्मा ही मेरा आलबन है, मै शेप को छोड़ता हूँ ।[57] आत्मा मेरे ज्ञान में है, मेरे दर्शन-चरित्र मे है, प्रत्याख्यान मे है, मेरे संवर योग मे है ।[58] एक ज्ञान-दर्शन लक्षण वाला शाश्वत आत्मा ही मेरा है, मुझसे बाह्य शेष सब प्रदार्थ संयोग लक्षण वाले हैं ।[59]

यदि चतुर्गति से छूटकर शाश्वत सुख चाहते हो तो सुविशुद्ध, निर्मल, शुद्ध भाव रूप आत्मा भावो ।[60] जो जीव अच्छे भावयुक्त हुआ जीव-स्वभाव को भाता है वह जन्म-मरण का विनाश करता है और प्रकट निर्वाण को प्राप्त करता है ।[61] **जीव जिनेन्द्र द्वारा ज्ञान स्वभावी तथा चेतना सहित कहा गया है; उस जीव को कर्मक्षय करने हेतु जानना चाहिए ।**[62] जिनके (अनुभव मे) जीव स्वभाव का सर्वथा अभाव नही है, वे वचन गोचरातीत, देह से भिन्न सिद्ध परमात्मा होते है ।[63] जीव को अरस, अरूप, अगध, अव्यक्त चेतनागुण वाला, अशब्द, किसी चिन्ह से नही ग्रहण होने वाला, अनिर्दिष्ट आकार वाला जानो ।[64] **शीघ्र अज्ञान विनाशक पांच प्रकार का ज्ञान भावो; भायी गई भावनाओं से सहित व्यक्ति स्वर्ग और मोक्ष सुख का पात्र होता है ।**[65]

भाव रहित पढने और सुनने से क्या होता है ? भाव ही श्रावक और मुनिजनो के लिये कारणभूत है ।[66] **नारक, तिर्यच और सभी जीव द्रव्य (देह) से नग्न है; परिणामों में अशुद्ध होने से वे भाव श्रामण्य को प्राप्त नहीं होते ।**[67] जिन-भावना से रहित नग्न दीर्घकाल तक दु.ख पाता है, ससार सागर मे भ्रमण करता है, बोधि नही प्राप्त करता ।[68] पैशून्य (दूसरे के दोष कहना), हास्य, मात्सर्य (ईर्ष्या), माया की अधिकता वाले, पापमलिन, अपयश के भजन नग्न श्रमण से क्या (साध्य है) ?[69] (हे मुनि !) अभ्यन्तर भाव दोषो से शुद्ध (रहित) जिनवर लिंग प्रकट करो; भाव मल से जीव बाह्य परिग्रह में मलिन होता है ।[70]

जिसका धर्म में निवास नही है, दोपों मे निवास है वह गन्ने के फूल के समान निष्फल और निर्गुण है, वह नग्न रूप नट-श्रमण है ।[71] जो राग रूप परिग्रह से युक्त है, जिन भावना रहित द्रव्य-निर्ग्रन्थ है वे विमल जिन शासन मे बोधि और समाधि प्राप्त नही करते ।[72]

पहले (व्यक्ति) मिथ्यात्वादि दोषों को छोड़कर भाव से नग्न होवे, पीछे जिन आज्ञानुसार द्रव्य रूप मुनि लिंग प्रकट करे ।[73] भाव ही स्वर्ग-मोक्ष के सुख का पात्र है; पाप रूप, कर्ममल से मलिन चित्त वाला भाव रहित श्रमण तिर्यच लोक का पात्र है ।[74]

सुभाव (विशुद्ध भाव) से विद्याधर, देवता और मनुष्यो की अंजुलि माला (नमस्कार) मे सस्तुत (पूजित) चक्रवर्ती की विपुल लक्ष्मी एव बोधि को जीव प्राप्त करता है ।[75]

जरा-मरण से रहित स्थान को प्राप्त नहीं करता है।[115] सम्पूर्ण पाप परिणामो से होते हैं, सम्पूर्ण पुण्य परिणामो मे होते हैं जिनशासन मे परिणाम से ही बन्ध-मोक्ष देखा गया है।[116]

जिन-वचन से पराङ्मुख जीव मिथ्यात्व, कषाय असयम, योग और अशुभ लेश्या से अशुभ कर्म बांधता है।[117] इससे विपरीत भाव शुद्धि को प्राप्त व्यक्ति शुभकर्म बांधता है। ऐसे दोनो प्रकार के बध सक्षेप मे कहे गये ह।[118]

(हे मुनि ! यह चिन्तवन करो कि) मैं ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से वेष्ठित हूँ, इन्हें जलाकर अनन्त ज्ञानादि चेतनागुणों को प्रकट करता हूँ।[119] सम्पूर्ण अठारह हजार शील तथा चौरासी लाख गुण समूह की प्रतिदिन भावनाकर, बहुत असत्प्रलाप से क्या ?[120] (तू) आर्त-रौद्र ध्यान छोडकर धर्म-शुक्ल ध्यान कर रौद्र-आर्त ध्यान तो इस जीव ने चिरकाल किया है।[121] जो कोई द्रव्य श्रमण है वे ससारवृक्ष का छेदन नहीं करते भावश्रमण (ही) ध्यान कुठार से छेदन करते हैं।[122]

जैसे पवन की बाधा से रहित गर्भगृह मे दीपक जलता है, वैसे ही राग रूपी पवन से रहित ध्यान-प्रदीप प्रज्वलित होता है।[123] (हे मुनि !) पच गुरुओ का (परमेष्ठियों का) भी ध्यान करो जो मगल स्वरूप हैं, चार शरण के लोक (अरहत, सिद्ध, साधु और केवली-प्रणीत धर्म) से सहित हैं, मनुष्य देव-विद्याधरो से पूजित हैं, आराधना के नायक हैं, वीर हैं।[124] भव्यजन भावपूर्वक ज्ञान-मय विमल शीतल जल को प्राप्तकर (पीकर) व्याधि, बुढापा, मृत्यु, वेदना, दाह से मुक्त होकर शिव (परमात्मा) होते हैं।[125]

जैसे बीज के जल जाने पर पृथ्वी पीठ पर अकुर उत्पन्न नहीं होता, वैसे ही भावश्रमणों के कर्मबीज के जल जाने पर ससार अकुर नहीं फूटता है।[126] भाव श्रमण तो सुखो को पाता है, द्रव्य श्रमण दुखो को पाता है, इस प्रकार गुण-दोष जानकर भाव सहित सयत बनो।[127] सक्षेप मे, जिनेन्द्र ने कहा है कि भाव सहित अभ्युदय परम्परा तथा तीर्थकर गणधर आदि के सुखो को प्राप्त करते हैं।[128] जो उत्तम दर्शन ज्ञान चरित्र मे शुद्ध हैं, भाव सहित हैं, जिनकी माया नष्ट हो गई है वे धन्य हैं, उन्हें नित्य त्रिविध (मन-वचन-काय से) नमस्कार हो।[129]

जिनभावना भाया हुआ धीर पुरुष किन्नर, किंपुरुष, देवता, विद्याधर की अतुल ऋद्धि और विक्रिया (देखकर) मोह को प्राप्त नहीं होता, तो क्या फिर मोक्ष को जानता, देखता, चिन्तन करता मुनिधवल (मुनि श्रेष्ठ) मनुष्य और देवो के अल्पसार वाले सुखों मे मोह को प्राप्त होगा ?[130-131] (हे मुनि !) जब तक बुढापा न आवे, रोगाग्नि देहकुटि को न जला दे, इन्द्रियबल न घटे तब तक तू आत्महित कर ले।[132]

हे मुनिवर ! तू छह काय के जीवो पर मन, वचन, काय से दयाकर, छह अनायतन को मन, वचन, काय से छोड दे तथा अपूर्व महासत्त्व (महान बल-वीर्यमयता) को भा।[133] तू ने अनत ससार सागर मे भ्रमण करते हुए सकल जीवो के दशविध प्राणों का भोग सुख के हेतु तीन प्रकार (मन, वचन काय से) आहार किया।[134] हे महाशय ! प्राणीवध के कारण तूने चौरासी लाख योनियो के मध्य उत्पन्न होते और मरते निरन्तर दुख प्राप्त किया।[135] हे मुनि ! कल्याण,

सुख की परम्परा के निमित्त त्रिविध शुद्धिपूर्वक प्राणीभूत सत्त्वों को, जीवों को अभयदान दान दो।[139]

एक सौ अस्सी क्रियावादी है, चौरासी अक्रियावादी है, सडसठ अज्ञानी है और विनयवादी बत्तीस है।[137] जैसे गुड दूध को पीता हुआ भी सर्प निर्विष नही होता, वैसे ही जिन धर्म को भले प्रकार सुनकर भी अभव्य प्रकृति नही छोड़ता।[138] मिथ्यात्व से आच्छन्न दृष्टि और दुर्मतो के दोषो से (दूषित) दुर्बुद्धि के कारण अभव्य जिनेन्द्र कथित धर्म में रूचि नही करता।[138]

जो कुत्सित धर्म में रत है, कुत्सित पाखड़ी (साधु) की भक्ति से संयुक्त है, कुत्सित तप करता है वह कुत्सित गति का पात्र होता है।[140] इस प्रकार मिथ्यात्व के आवास स्वरूप कुनय और कुशास्त्र मे मोहित जीव ससार में अनादिकाल से भ्रमण कर रहा है, हे धीर! यह चिन्तन कर।[141] पाखंडियो के तीन सौ तरेसठ भेद रूप उन्मार्ग को छोड़कर अपना मन जिन मार्ग में रोक, वहुत असत्प्रलाप से क्या?[142] **जीव रहित शव है, दर्शन रहित चल शव है, शव लोक में और चल शव लोकोत्तर में अपूज्य है।**[143] जैसे ताराओ मे चन्द्रमा, मृगकुल मे सिह उसी प्रकार ऋपि श्रावक दो विध धर्मो में सम्यक्त्व अधिक होता है।[144]

जैसे अपने फरण की मरिणयों में मारिणक्य की विस्फुरित होती हुई किरणो से फरिणराज (धरणेन्द्र) सुशोभित होता है, उसी प्रकार प्रवचन (मोक्ष मार्ग की प्ररुपणा) मे जिन भक्त विमल दर्शन धारी सुशोभित होता है।[145] जैसे निर्मल आकाश मण्डल में तारामण्डल सहित चन्द्रविम्व (शोभा पाता है) वैसे ही दर्शन से विशुद्ध, धर्म आकाश मे निर्मल तप-व्रत से भावित जिन लिंग (शोभा पाता है)।[146] इस प्रकार गुरण-दोष को जान कर दर्शन रत्न को भाव से धारण करो, यह गुरण-रत्नो का सार है, मोक्ष की प्रथम सीढी है।[147]

(जीव) कर्त्ता, भोक्ता, अमूर्त, शरीर प्रमाण, अनादिनिधन तथा दर्शन ज्ञानोपयोगी जिनवरेन्द्र द्वारा कहा गया है।[148] सम्यक् जिनभाव सयुक्त भव्य जीव दर्शन ज्ञानावरण, मोहनीय अन्तराम कर्मो का निष्ठापन (अभाव) करता है।[149] **चारों घातियों के नष्ट होने पर वल, सुख, ज्ञान-दर्शन चारों गुण प्रकट होते हैं और लोकालोक प्रकाशित करते हैं।**[150] **आत्मा भी कर्म विमुक्त परमात्मा, ज्ञानी, शिव परमेष्ठी, सर्वज्ञ, विष्णु, चतुर्मुख, बुद्ध प्रकट हो जाता है।**[151] यह घाति-कर्म मुक्त, सकल अठारह दोपों से रहित, त्रिभुवन–प्रदीप मुझे उत्तम वोध देवें।[152] जो परम-भक्ति राग से जिनवरचरण कमलो मे नमस्कार करते है वे जन्म-लता की जड़ को उत्तम भाव रूपी शस्त्र से खोद डालते है।[153]

जैसे कमलिनी पत्र अपने प्रकृति स्वभाव से जल से लिप्त नहीं होता, वैसे ही सत्पुरुप विपय कपाय से लिप्त नहीं होता।[154] मैं उन्हे ही मुनि कहता हूं जो सकल कला, शील, संयम गुण वाले है, जो वहुत मलिन चित्त है, वहुत दोपों के घर है वे तो श्रावक समान भी नहीं हैं।[155]

जिन्होंने खमदम (क्षमा, इन्दियदमन) रूपी चमचमाती तलवार से दुर्जय, प्रवल वल से

उद्धत कषाय सुभट को जीता है वे धीर वीर पुरुष हैं।[156] वे भगवत धन्य हैं जिन्होंने दर्शन-ज्ञान रूपी अग्र (मुख्य), प्रवर (श्रेष्ठ) हाथो से विषय समुद्र मे पड़े जीवो को उबार लिया।[157] मोह रूपी महातरुवर पर चढी हुई, विषय विष रूप पुष्पो से फूल रही समस्त माया लता को मुनिजन ज्ञान शस्त्र से काट डालते है।[158] जो मोहमद और गारव (अभिमान) से मुक्त है, करुणा भाव से सयुक्त हैं वे सब पाप रूपी खमे को चारित्र खड्ग से नष्ट कर देते हैं।[159]

जैसे पवन पथ (आकाश) मे तारावली से वेष्टित पूर्णिमा का चन्द्रमा है, वैसे ही जिन मत रूपी गगन मे गुण समूह रूपी मणियो की माला सहित मुनीन्द्र चन्द्रमा हैं।[160]

विशुद्ध भावो स मनुष्यो ने चक्रवर्ती, बलभद्र, केशव, इन्द्र, जिनेन्द्र, गणधर आदि के सुख तथा चारण मुनि की ऋद्धियो को प्राप्त किया।[161] जिन भावना को भाकर जीवो ने शिवस्वरूप, अजर अमर स्वरूप, अनुपम, उत्तम, परम विमल अतुल, श्रेष्ठ सिद्धि सुख का प्राप्त किया।[162] व शुद्ध निरजन नित्य-सिद्ध मुझे श्रेष्ठ भाव शुद्धि दर्शन, ज्ञान और चरित्र दें।[163] बहुत कहने से क्या ? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, तथा अन्य भी सब व्यापार भावो मे परिस्थित हैं।[164]

इस प्रकार इस भाव पाहुड का सर्वबुद्धो ने उपदेश दिया है। जो इसे सम्यक् प्रकार से पढता सुनता और भाता है सो अविचल स्थान को प्राप्त करता हैं।[165]

मोक्ष पाहुड

जिसने कर्मों को नष्ट कर पर द्रव्य को छोडा है तथा ज्ञानमय आत्मा को प्राप्त किया है उस देव का नमस्कार है, नमस्कार है।[1] उस देव को नमस्कार कर परम योगियो को (मैं) अनन्त, श्रेष्ठ ज्ञान दर्शन वाले, शुद्ध, परमपद (स्थित) परमात्मा का निरूपण करूगा, जिसे योगी जन जानकर तथा योग मे स्थित हो निरन्तर अवलोकन/अनुभव कर अव्याबाध अनन्त, अनुपम निर्वाण को प्राप्त करत ह।[2-3]

देहियो (जीवो) के यह आत्मा तीन प्रकार की हैं, परम, अन्तर और बाह्य। इनमे 'बाह्य' को छोड कर अन्तर' के उपाय से 'परम' का ध्यान करना चाहिए।[4] इन्द्रिया बहिरात्मा है, कर्मकलक से रहित परमात्मा है (तथा) वह देव कहा जाना है।[5] वह मल रहित, शरीर रहित, अनीन्द्रिय, केवली, विशुद्धात्मा, परमेष्ठी, परमजिन, शिवकर शाश्वत सिद्ध है।[6] बहिरात्मा को तीन प्रकार (मन वचन-काय से) छोडकर अन्तरात्मा मे आरोहण कर परमात्मा का ध्यान करो यह जिनवरेन्द्रों द्वारा उपदेश दिया गया है।[7]

मूढ दृष्टि बहिरात्म से स्फुरित मन वाला है, इन्द्रिय द्वार से निजस्वरूप मे च्युत है, निजदेह को आत्मा मानता है।[8] निजदेह सदृश अन्य की देह देख कर अचेतन होते भी, प्रयत्न से ग्रहण करता है और परमार्थ से ध्याता है।[9] जिन मनुष्यो न आत्मा का स्वरूप नही जाना है वे देहो म स्व-पर का अध्यवसाय (निश्चय) करके सुत, दारा आदि के विषय मे मोह की वृद्धि करत हैं[10] मिथ्याज्ञान मे रत मिथ्या भाव से भाया हुआ मोह के उदय से पुन भी मनुष्य देह को अच्छा मानना

है (चाहता है)।[11] जो योगी दहे में निरपेक्ष हो, निर्द्वन्द हो, निर्मम हो, निरारभ हो, आत्म स्वभाव में सुरत हो, वह निर्वाण प्राप्त करता है।[12]

विविध कर्मों को पर द्रव्य रत बाँधता है, विरक्त उनसे छूटता है, यह बंध मोक्ष का सक्षेप में जिन देव का उपदेश है।[13] स्वद्रव्यरत (आत्मरत) श्रमण नियम से सम्यग्दृष्टि होता है, सम्यक् रूप से परिणमन करता हुआ फिर-फिर वह दुष्ट अष्ट कर्मो का क्षय कर देता है।[14] जो साधु परद्रव्यरत है वह मिथ्या दृष्टि है, पुनः मिथ्यात्वी रूप से परिणमन करता हुआ वह दुष्ट अष्ट कर्मो को बांधता है।[15] पर द्रव्य से दुर्गति, स्वद्रव्य से सुगति होती है, यह जानकर स्वद्रव्य मे रति करो, और परद्रव्य से विरति।[16] **आत्म स्वभाव से अन्य सचित्त, अचित्त, मिश्र को सर्वदर्शी द्वारा सत्य रूप से परद्रव्य कहा गया है।[17] दुष्ट अष्ट कर्म से रहित, अनुपम ज्ञान शरीरी, नित्य शुद्ध जिनेन्द्र द्वारा आत्मा कहा गया है, वह स्वद्रव्य है,[18]**

जो पर द्रव्य से पराङ्मुख हो सुचारित्र वान होते हुए स्वद्रव्य को ध्याते है, वे जिनवरों के मार्ग में लगकर निर्वाण प्राप्त करते है।[19] योगी जिस जिनवर मत के अनुसार ध्यान में शुद्ध आत्मा ध्याते है और उससे निर्वाण प्राप्त करते है, तो क्या उससे सुरलोक प्राप्त नहीं करते?[20] जो पृथ्वी तल पर एक दिन में गुरुभार लेकर सो योजत जाता है वह क्या आधा कोस नही जा सकता?[21] जो सुभट सर्व करोडो से संग्राम मे न जीता जाये तो क्या वह संग्राम मे एक मनुष्य से जीता जाएगा?[22] तप द्वारा स्वर्ग सब ही पाते है, तो भी ध्यान योग से जो प्राप्त करता है वह परलोक मे शाश्वत सुख प्राप्त करता है।[23]

अतिशोधन योग से जैसे स्वर्ण शुद्ध हो जाता है वैसे ही कालादि लाब्धियों से आत्मा परमात्मा हो जाता है।[24] व्रत-तप से स्वर्ग होना श्रेष्ठ है, अन्य प्रकार से नरक के दुःख मत होवो, छाया और धूप में बैठो के प्रतिपालकों मे (अनुकूलता तथाविपरीतता मे) भारी अन्तर है।[25] **जो भयानक संसार महासमुद्र से निकलना चाहता है वह कर्म ईंधन को जलाने वाली शुद्ध आत्मा को ध्यावे।[26]** लोक व्यवहार से विरत (मुनि) गारव, मद, राग, द्वेष, व्यामोह, सर्व-कषाय को छोड़कर ध्यानस्थ होकर आत्मा ध्याता है।[27] योगी मिथ्यात्व, अज्ञान, पाप, पुण्य को तीन प्रकार छोडकर मौन व्रत पूर्वक योग मे स्थित आत्मा का द्योतन करता है (ध्यान करता है)।[28]

जो रूप मैं देखता है वह सर्वथा जानता नही है, ज्ञाता दिखता नही है, अतः मै किससे बोलूं?[29] हे योगी! जानो कि जिन देव ने कहा है कि योग मे स्थित व्यक्ति सर्व आश्रवो का निरोध करके संचित कर्मो का क्षय करता है।[30] जो योगी व्यवहार में सोता है, वह योगी स्व कार्यो मे जागता है, जो व्यवहार मे जागता है वह अपने कार्य मे सोता है।[31] इस प्रकार जानकर योगी सर्व व्यवहार को सर्वथा छोड देता है, जैसे जिनवरेन्द्रो द्वारा कहा गया है वैसे वह परमात्मा का ध्यान करता है।[32]

पंच महाव्रत युक्त, पांच समिति, तीन गुप्ति और तीन रत्नो से सयुक्त (हे मुनि) ध्यान

अध्ययन सदा करो।[33] रत्नत्रय की आराधन करने वाले जीव को आराधक जानो, आराधन विधान का फल केवल ज्ञान है।[34] आत्मा सिद्ध, शुद्ध, सवज्ञ, सर्वलोकदर्शी जिनवर द्वारा कहा गया है, तू उसे केवल ज्ञान जान।[35] जो योगी जिनवर मत के अनुसार रत्नत्रय की आराधना करता है वह आत्मा को ध्याता है, और पर (कर्मो) को हटाता है, (अथवा) पर को छोडता है, इसमें सन्देह नही है।[36] जो जानता है वह ज्ञान है, जो देखता है वह दशन है, पुण्य पाप का परिहार चरित्र कहा गया है।[37]

तत्व रुचि सम्यक्त्व तत्व ग्रहण को सम्यग्ज्ञान, परिहार को ('अविरति आदि का) चरित्र जिनवरेन्द्र द्वारा कहा गया है।[38] दशन से शुद्ध शुद्ध, है, दर्शन शुद्ध निर्वाण प्राप्त करता है, दशन विहीन पुरुष इच्छित लाभ प्राप्त नही करता।[39] यह जरामरण को नष्ट करने वाला उपदेश का सार है, जो इसे प्रकट मानता है वह सम्यक्त्व है, यह श्रमण तथा श्रावक (दोनों) को कहा गया है।[40]

जो योगी जिनवर के मतानुसार जीव-अजीव भेदो को जानता है वह सवदर्शी द्वारा सत्याथ रूप से सम्यग्ज्ञान कहा गया है, जिसे जानकर योगी पुण्य पाप का परिहार करता है, उस परिहार को कम रहित (परमात्मा) द्वारा अविकल्प (अभेद) चारित्र कहा गया है।[41-42] जो रत्नत्रय से युक्त स्वशक्ति अनुसार तप करता है, वह शुद्ध आत्मा का ध्याता हुआ परमपद प्राप्त करता है।[43] तीन (मन वचन-काय) द्वारा तीन (वर्षा, शीत, उष्ण योग) को धारण कर, नित्य तीन (माया, मिथ्या, निदान शल्य) से रहित होकर तीन (दशन, ज्ञान, चारित्र) से योगी मडित होकर, दो दोष (राग-द्वेष) से मुक्त होकर परमात्मा का ध्यान करते हैं।[44]

जो जीव मद, माया, क्रोध से रहित है, जिसने लोभ को हटा दिया है, जो निर्मल स्वभाव से युक्त है, वह उत्तम सुख प्राप्त करता है।[45] विषय-कषाय से युक्त, रुद्र (क्रोधी), परमात्म भाव से रहित मन वाला, जिन मुद्रा (दिगम्बर मुद्रा) से पराड्मुख जीव सिद्धिसुख को प्राप्त नही करते हैं।[46] जिनवर द्वारा कही हुई जिन मुद्रा नियम से सिद्धि सुख स्वरूप है, जिस जीव को यह स्वप्न मे भी नही रुचती वह गहन ससार मे रहता है (भटकता है)।[47] परमपद का ध्यान करते हुए मुनि मल की रचना करने वाले लोभ से छूटता है, नवीन कर्मो को ग्रहण नही करता है यह जिनवरेन्द्रा द्वारा कहा गया है।[48] दृढ चरित्र होकर, दृढ सम्यक्त्व से भावित मति वाला होकर आत्मा का ध्यान करता हुआ योगी परमपद को प्राप्त करता है।[49]

चरण (चरित्र) स्वधम है, धम आत्म-समभाव (सब जीवो को अपने समान मानना) है, वह राग दोष रहित जीव का अनन्य परिणाम है।[50] जैसे स्फटिक मणि विशुद्ध है, (तथापि) पर द्रव्य युक्त होकर अन्य होता है (अन्य रूप दिखता है), वैसे ही रागादि रूप से युक्त होकर जीव अन्य, अन्य विध होता है।[51]

देव गुरु मे जिसकी भक्ति है, साधर्मी सयतो मे जो अनुरक्त है, सम्यक्त्व को धारण करता हुआ वह योगी ध्यानरत होता है।[52] उग्रतप से अज्ञानी जो कम अनेक भवों मे क्षय करता है

उन्हें तीन गुप्ति सहित ज्ञानी अन्तर्मुहुर्त में क्षय करता है।[53] पर द्रव्य में राग से जो साधु शुभ योग (पुण्योदय) मे प्रीति करता है, वह अज्ञानी है, ज्ञानी इससे विपरीत होता है।[54] मोक्ष के हेतु भी इस प्रकार का भाव (प्रीति) आश्रव का कारण है; अत. आत्म स्वभाव से विपरीत होने से (ऐसे भाव वाला) अज्ञानी है।[55]

जो कर्म-जात-मति (कर्म के ही उदय, क्षय की बात सोचने वाले) है वे स्वभाव ज्ञान को खण्ड-खण्ड रूप से (मति आदि और केवल ज्ञान की भेद कल्पना से) दुषित करने वाले हैं; अतः वे जिन शासन को दूषित करने वाले (निंदा करने वाले) अज्ञानी है।[56]

ज्ञान चरित्रहीन हो, तप से संयुक्त हो पर दर्शनहीन हो, भावरहित अन्य क्रियाये हो तो लिंग धारण करने से क्या सुख है।[57] अचेतन को भी जो चेतन मानता है वह अज्ञानी है, तथा जो चेतन मे ही चेतना मानता है वह ज्ञानी कहा गया है।[58]

जो ज्ञान तप रहित है तथा जो तप ज्ञान रहित है, वे अकृतार्थ (निष्फल) हैं, अतः ज्ञान तप से संयुक्त निर्वाण प्राप्त करता है।[59] नियम से सिद्ध होने वाले चार ज्ञानधारी तीर्थंकर तपश्चरण करते है, यह जानकर ज्ञान युक्त होते भी नियम से तपश्चरण करना चाहिए।[60] अभ्यन्तर लिंग से रहित बाह्य लिग के परिकर्म (क्रियाकॉड) से युक्त साधु स्वचरित्र से भ्रष्ट, मोक्ष पथ का विनाशक है।[61]

जो ज्ञान सुख से (सुविधा पूर्वक) भाया गया है वह दु ख होने पर नष्ट हो जाता है, अतः योगी आत्मा को यथाबल दुःख से (कष्ट के बीच) भाये।[62] जिनवर मत के अनुसार आहार, आसन और निद्रा को जीतकर, गुरु प्रसाद से जानकर निज आत्मा का ध्यान करना चाहिए।[63] गुरु प्रसाद से जानकर कि आत्मा चरित्रवान है, दर्शन ज्ञान से सयुक्त है, वह नित्य ध्यान करने योग्य है।[64] आत्मा दु ख से (उग्र पुरुषार्थ से) जानी जाती है, आत्मा जानकर उसकी भावना दु.ख से की जाती है तथा स्वभाव को भा लेन वाले पुरुषो का विषयो से हटना दुःख से होता है।[65] जब तक विषयो मे मनुष्य प्रवृत्ति करता है वह आत्मा को नही जानता; विषयो से विरक्त चित्त योगी (ही) आत्मा को जानता है।[66]

आत्मा को जानकर भी कितने ही मूढ मनुष्य स्वभाव भाव से अत्यन्त भ्रष्ट हुए विषयों में विमोहित हो चतुर्गति में भ्रमण करते हैं।[67] पुनः जो आत्मा को जानकर भावना सहित हुए हैं, विषय विरक्त हैं, तपगुणयुक्त है वे चतुर्गति छोड़ते हैं, इसमे सन्देह नही है।[68] जिसके पर द्रव्य मे मोह से परमाणु प्रमाण भी रति हो तो वह आत्म स्वभाव से विपरीत मूर्ख अज्ञानी है।[69]

दर्शन शुद्धि युक्त, दृढ़ चरित्रवान, विषयो से विरक्त चित्त, आत्मा का ध्यान करने वाले को नियम से निर्वाण होता है।[70] पर द्रव्य मे राग क्योकि संसार का ही कारण है, अतः योगी आत्मा मे नित्य 'स्व' भावना करते हैं।[71] निंदा-प्रशंसा मे दु ख-सुख मे, शत्रु-बंधु मे समभाव से चरित्र होता है।[72]

जिनका चरित्र आवृत्त है, जो व्रत समिति से रहित है, शुद्ध भाव से अत्यन्त भ्रष्ट है ऐसे कितने ही मनुष्य कहते है कि यह काल ध्यान योग्य नही है।[73] सम्यक्त्व-ज्ञान रहित, मोक्ष से परिमुक्त, ससार सुख मे सुरत, अभव्य जीव ही कहता है कि यह ध्यान का काल नही है।[74]

जो पाच महाव्रतो मे पाच समितियों मे, तीन गुप्तियो मे मूढ है अज्ञानी है, व कहते हैं कि यह ध्यान का काल नही है।[75] भरत क्षेत्र मे दु षमा काल म साधु के धर्म ध्यान होता है, वे आत्मस्थित हैं, जो यह नहीं मानता वह भी अज्ञानी है।[76] आज भी शुद्ध त्रिरत्न वाले आत्मा का ध्यान कर इन्द्रत्व, लोकान्तिकदेवत्व प्राप्त करते हैं, वहा से च्युत होकर निर्वाण को प्राप्त करते हैं।[77]

जो पाप मे मोहित मति जिनवरेन्द्रो का लिंग ग्रहण करके पाप करते हैं वे पापी मोक्ष मार्ग मे च्युत हैं।[78] जो पाच वस्त्रो मे आसक्त है, परिग्रह ग्राही हैं, याचनाशील हैं, अध कर्म (आरम्भ) मे रत हैं वे मोक्ष मार्ग से च्युत हैं।[79]

जो निर्ग्रन्थ, मोहमुक्त, बाईस परिषह व कषाय जीतने वाले, पाप तथा आरम्भ से मुक्त हैं उन्होने मोक्ष मार्ग को ग्रहण किया है।[80] 'ऊर्ध्व-अधो-मध्य लोक मे मेरा कोई नही है, मैं अकेला हूँ,' इस भावना मे योगी शाश्वत सुख प्राप्त करते है।[81] जो देव-गुरु का भक्त, वैराग्य परम्परा का चिन्तन करने वाला, ध्यानरत, सुचरित्रवान् हैं, उन्होने मोक्ष मार्ग को ग्रहण किया है।[82]

निश्चयनय के अनुसार आत्मा आत्मा मे आत्मा के लिये भले प्रकार सुरत है। जो योगी इस प्रकार सुचरित्रवान् होता है वह निर्वाण प्राप्त करता है।[83] जो योगी पुरुषाकार, ज्ञान दर्शन मे समग्र आत्मा का ध्यान करता है वह पाप का हरने वाला, निर्द्वन्द्व होता है।[84]

इस प्रकार ससार का विनाश करने वाला, सिद्धि करने वाला परम कारण श्रमणो के लिये कहा गया, अब श्रावक सुनो।[85] हे श्रावक! दु ख का क्षय करने के लिये सुनिर्मल मेरु की भाति निष्कप सम्यक्त्व ग्रहण करके उसे ध्यान मे ध्याओ।[86]

सम्यक्त्व का जो ध्याता है वह जीव सम्यग्दृष्टि होता है, फिर सम्यक्त्व रूप परिणत हुआ वह दुष्ट अष्ट कर्मों को नष्ट करता है।[87] बहुत कहने से क्या, जो श्रेष्ठ पुरुष अतीत काल मे सिद्ध हुए और जो भव्य सिद्ध होवेंगे, वह सम्यक्त्व का महात्म्य जानो।[88] वे मनुष्य धन्य हैं, सुकृतार्थ हैं, शूर हैं, पडित है जिन्होने स्वप्न मे भी सिद्धि कारक सम्यक्त्व को मलिन नही किया।[89]

हिंसा रहित धर्म मे, अठारह दोष रहित देव मे, निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा सम्यक्त्व है।[90] जो मुनि लिंग को यथाजात रूप, सुसयत, सर्वपरिग्रह त्यागी, परापेक्षा से रहित मानता है, उसके सम्यक्त्व है।[91] कुत्सित देव, कुत्सित धर्म, कुत्सित लिंग की जो लज्जा, भय, गारव से वदना करता है वह मिथ्या दृष्टि है।[92] जो स्व परापक्ष लिंग, असयत तथा रागी देव की वदना करता है, मान्यता करता है वह मिथ्या दृष्टि है, शुद्ध सम्यक्त्वी उन्हे मान्य नही करता है।[93]

सम्यग्दृष्टि श्रावक जिनदेव उपदिष्ट धर्म करता है, विपरीत करने वाले को मिथ्यादृष्टि जानो।[94] जो मिथ्यादृष्टि जीव हैं व जन्म-जरा मरण से प्रचुर, सहस्त्रो दु खो से आकुलित, सुखरहित ससार मे ससरण (भ्रमण) करते हैं।[95] (हे श्रावक!) सम्यक्त्व के गुण तथा मिथ्यात्व के दोष को मन मे भले प्रकार भा कर (चिन्तवन कर) वह कर जो तुझे रुचे, बहुत प्रलाप करने से क्या?[96]

मिथ्या भाव सहित बाह्य परिग्रह से मुक्त निर्ग्रन्थ मुक्त नही है; जो आत्म-समभाव को नही जानता उसके क्या कायोत्सर्ग और क्या मौन ?[97] मूल गुणो को छेद कर जो बाह्य कर्म करता है वह नियत्त रूप से जिन लिग का विराधक सिद्धि सुख को प्राप्त नही करता है।[98] आत्म-स्वभाव से विपरीत के बाह्य कर्म क्या करेंगे, बहुविध क्षमण (उपवासादि तप) क्या करेंगे, आतापन योग क्या करेगा ?[99] आत्म स्वभाव से विपरीत व्यक्ति यदि बहुत शास्त्र पढ़ता है, बहुविध चरित्र पालन करता है तो वे बाल-श्रुत और बाल-चरित्र है।[100]

जो साधु वैराग्य मे तत्पर, पर द्रव्य से पराङ्मुख, ससार सुख से विरक्त, स्वयं के शुद्ध सुख मे अनुरक्त, गुण समूह से विभूषित अग वाला, हेय-उपादेय के निश्चय वाला, ध्यान-अध्ययन मे सुरत होत है वह उत्तम स्थान प्राप्त करता है।[101-2]

देहस्थ कुछ ऐसा है जिसे नमस्कार करने योग्य (परमेष्ठी) नमस्कार करते हैं, ध्याने योग्य निरन्तर जिसका ध्यान करते है स्तुति करने योग्य जिसकी स्तुति करते है, उसे जानो।[103] अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—ये पाचो परमेष्ठी आत्म में चेष्टावान है, स्थित होते है; अतः मेरी शरण आत्मा ही है।[104] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चरित्र और सम्यक्तप ये चारो ही आत्मा में चेष्टारूप है; अतः मेरी शरण आत्मा ही है।[105]

इस प्रकार जिनेन्द्र प्रज्ञप्त इस मोक्ष पाहुड़ को सुभक्तिपूर्वक जो पढ़ता है, सुनता है, भाता है वह शाश्वत सुख को पाता है।[106]

लिग पाहुड़

अरहतो तथा सिद्धो को नमस्कार करके मैं सक्षेप से श्रमण-लिंग पाहुड़ शास्त्र कहूंगा।[1] धर्म से लिग होता है, लिग मात्र से ही धर्म सम्पत्ति नहीं होती; भाव को धर्म जानो, (केवल) लिग से क्या कार्य होता है ?[2] जिनवरेन्द्रो के लिग को ग्रहण करके जो पाप से मोहित मति भाव लिग का उपहास करते है, वे लिगियो मे लिगी नारद है।[3] जो लिग रूप धर कर नाचता है, गाता है, वाद्य बजाता है वह पाप से मोहित मति पशु है, श्रमण नहीं।[4] जो बहुत प्रयत्न से समूह (संग्रह) करता है, रक्षा करता है, आर्तध्यान करता है वह पाप से मोहितमति पशु है, श्रमण नही।[5] जो लिंगी रूप धर बहुमान से गर्वित होकर नित्य कलह करता है, वाद करता है, जुआ खेलता है, वह पापी यह करता हुआ नरक जाता है।[6] लिगी रूप धारण कर जो पाप से उपहत भावो वाला अब्रह्म का सेवन करता है, वह पाप से मोहित ससार वन मे डोलता फिरता है।[7]

जो लिग रूप धर कर दर्शन-ज्ञान-चरित्र का उपधान (धारण) नहीं करता है, आर्त-ध्यान ध्याता है वह अनत संसारी होता है।[8] लिगी रूप हो जो विवाह जोड़ता है, कृषि कर्म करता है, व्यापार तथा जीवघात करता है, वह पाप करता हुआ नरक जाता है।[9] जो चोरो के, झूंठो के तीव्र कार्यो मे, युद्ध और विवाद मे, यन्त्र (झूला आदि) मे दीप्यमान (क्रीडारत) रहता है, मग्न रहता है, वह लिगी नरकवास को प्राप्त होता है।[10]

जो दशन, ज्ञान, चरित्र, तप, सयम, नियम तथा नित्य कार्यों मे पीडा पाता हुआ वर्तता है (जीता है) वह लिगी नरकवास को प्राप्त करता है।[11] जो भोजन मे रस लोलुप बन कदप (काम वासना) आदि मे वतता है, मायाचार तथा व्यभिचार करता है वह पशु है, श्रमण नहीं।[12] जो भोजन के निमित्त दौडता ह, कलह करके भोजन करता है, अपर प्रम्पी (अन्य मे ईर्ष्या करन वाला) होता है, वह श्रमण जिनमार्गी नही है।[13] जो बिना दिया पदाथ ग्रहण करता है, पर निंदा करता है तथा पीठ पीछे दोप बखानता है, वह श्रमण जिनलिंग धारता हुआ भी चोर समान है।[14]

जो लिंगरूप धारण कर उछलता है, गिरता है, दौडता है, पृथ्वी खोदता है, वह ईर्यापथ धारता हुआ (चलता हुआ) पशु है, श्रमण नहीं।[15] जो अनाज कूटता है, पृथ्वी खोदता है, बारबार पड छेदता है, और कम बध होते भी कम बध नहीं मानता, वह पशु ह, श्रमण नहीं।[16] जो नित्य महिला वग से राग करता है और अन्य को दोप लगाता है दशन-ज्ञान विहीन वह पशु है, श्रमण नही।[17] प्रव्रज्या (दीक्षा) हीन गृहस्थों एव शिष्यो पर बहुत स्नह रखता है, (श्रमण) आचार और विनय से हीन वह पशु है, श्रमण नही।[18]

इन प्रवृत्तिया से सहित मुनिवर सयतो के बीच रहता हुआ भी, बहुत कुछ जानता भी भाव विनष्ट है, श्रमण नहो।[19] महिला वग मे विश्वास करके जो दशन, ज्ञान, चारित्र देता है (इनकी शिक्षा आदि देता है) वह पाश्वस्थ साधु से भी अधिक नष्ट, भावविनष्ट है, श्रमण नहीं।[20] जो पुश्चली (व्यभिचारिणी स्त्री) के घर भोजन करता है, नित्य उसकी स्तुति करता है (और इस प्रकार) देह का पोषण करता है, वह भावविनष्ट बाल स्वभाव का प्राप्त करता है, श्रमण नहीं है।[21]

इस प्रकार लिग पाहुड के सव बुद्धो द्वारा उपदेशित धम का जो कष्ट सहित पालन करता है वह उत्तम स्थान प्राप्त करता है।[22]

शील पाहुड

विशालनयन वाले लाल कोमल कमल के समान चरण वाले वीर को तीन प्रकार प्रणामकर मैं शील गुणों को कहूंगा।[1]

शील और ज्ञान मे ज्ञानियो ने विरोध नहीं बताया है, अपितु शील के बिना विषय ज्ञान का नाश कर देते हैं।[2] दुःख से ज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञान को जानकर उसकी भावना दुःख से होती है, भावना किया हुआ जीव भी विषयो से दुःख से विरक्त होता है।[3] जब तक जीव विषय बल मे (विषयाधीन) वतन करता है वह ज्ञान को नहीं जानता है, विषयों से विरक्तमात्र (ज्ञान बिना) पुरातन कर्मों का क्षय नहीं करता है।[4] यदि ज्ञान चरित्र हीन हो, लिंग ग्रहण दशन (श्रद्धा) विहीन हो, तप सयमहीन हो, तो सब आचरण निरथक हैं।[5] चारित्र शुद्धि सहित ज्ञान, दर्शन विशुद्धि सहित लिंग ग्रहण, सयम सहित तप-यह थोडे भी महाफलवान होते हैं।[6]

कितने ही मूढ मनुष्य ज्ञान को जानकर भी विषयादिभावों मे आसक्त हुए, विषयों में विमोहित हुए चतुर्गति में डोलते फिरते है।[7] जो फिर ज्ञान को भावना सहित जानकर विषय विरक्त है, तप गुण युक्त है वे चतुर्गति को छेदते है, इसमे सन्देह नहीं है।[8] जैसे खडिया और लवण के लेप से कंचन विशुद्ध कांतियुक्त होता है वैसे ही जीव भी निर्मल ज्ञान सलिल से विशुद्ध होता है।[9]

कुपुरुष और मंदबुद्धि ज्ञान का गर्वकर विषयों में रंजित होते हैं, यह ज्ञान का दोष नहीं है।[10] सम्यक्त्व सहित ज्ञान, दर्शन, तप और चरित्र से शुद्ध चरित्र वाले जीवों का परिनिर्वाण होता है।[11] शील की रक्षा करने वाले, शुद्ध दर्शन वाले, दृढ चरित्र वाले, विषयों से विरक्तचित्त वाले नियम से निर्वाण प्राप्त करते है।[12] इष्टमार्ग के दिखाने वाले पुरुष को, यद्यपि वह विषयों में विमोहित हो, मार्ग कहा गया है, पर उन्मार्ग के दिखाने वाले पुरुष का ज्ञान तो निरर्थक ही है।[13] जो पुरुष बहुत प्रकार के शास्त्रों को जानता है पर कुमत और कुश्रुत की प्रशंसा करता है वह शील, व्रत और ज्ञान से रहित है, वह इनका आराधक नहीं है।[14]

शील गुण से रहित का मनुष्य जन्म निरर्थक है, चाहे वह यौवन, लावण्य, कांति से मण्डित हो, रूप और श्री का गर्व ही करे।[15] व्याकरण, छंद, वैशेषिक, व्यवहार, न्यायशास्त्र, श्रुत को जानने पर भी उन मे शील ही उत्तम श्रुत है।[16] शील गुण से मंडित भव्यों के देव वल्लभ (सहायक) होते हैं, श्रुत के पारगामी दुःशील बहुत लोग भी लोक में अल्पका (तुच्छ) ही हैं।[17] जो सब में हीन है, रूप से कुरूप है, सुवय से पतित (वृद्ध) है, परन्तु जिनका शील सुशील है उनकी मनुष्यता सुजीवित है।[18]

जीव दया, इन्द्रियदमन, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष, सम्यग्दर्शन, ज्ञान और तप शील का परिवार है।[19] शील ही विशुद्ध तप है, दर्शन शुद्धि है, ज्ञान शुद्धि है, शील विषयों का शत्रु है, शील मोक्ष की सीढ़ी है।[20]

जैसे विषय लुब्धजनो को विष देने वाले है वैसे ही स्थावर, जंगम सब ही प्रकार के विष (प्राणियो को) नष्ट करते है, तथापि विषय विष इन सब मे दारूण है।[21] विष की वेदना से हत (नष्ट) जीव तो जन्म (जीवन) मे एक बार ही मरता है, विषय विष से परिहत संसार वन में भटकता है।[22] विषयासक्त जीव नरक मे वेदना, तिर्यंच-मनुष्य (जीवन) मे दु:ख और देवो मे दुर्भाग्य प्राप्त करते है।[23] जैसे तुस को उडाने से मनुष्य का कुछ द्रव्य नहीं जाता है, वैसे ही तप-शीलवान कुशल व्यक्ति खली के समान विषय विष को फेंक देते है।[24] प्राप्त वृत्त (गोल), खण्ड (अर्द्ध गोल), भद्र, विशाल सब अंगो मे शील उत्तम है।[25]

कुमत से मूढ हुए एवं विषय लोलुप पुरुष संसार में अरहट की घडी के समान भ्रमण करते हैं व इनके साथ अन्य जीव भी करते हैं।[26] विषयो के रागरंग मे जो कर्म गाठ आप ही द्वारा बांधी गई है उसे कृतार्थ पुरुष तप-संयम-शील गुणो से छेदते है।[27] जैसे समुद्र रत्नो से भरा है वैसे ही सुशील व्यक्ति तप, विनय, शील, दान रत्नो से भरा शोभित होता है और अनुत्तर निर्वाण प्राप्त

होता है।[28] क्या कुत्ते, गधे, गाय, पशु, महिलाओं के मोक्ष दीखता है ? सब लोगों द्वारा चतुर्थ पुरुषार्थ के साधने वालों के ही मोक्ष देखा जाता है।[29] यदि विषय लोलुप ज्ञानी द्वारा मोक्ष सधता है तो दस पूर्वज्ञानधारी सात्यकि पुन नरक क्यों गए ?[30] पुन यदि शील के बिना ज्ञान से ही विशुद्धि बुधजनों द्वारा कही गई हो तो दस पूर्वज्ञानधारी के भाव निर्मल क्यों नहीं हुए ?[31]

वर्धमान जिन ने कहा है कि जो विषय विरक्त हुए हैं वे प्रचुर नरक वेदना को समाप्त कर देते हैं और उसमे से निकालकर अर्हंत पद प्राप्त करते हैं।[32] ऐसे बहुत प्रकार प्रत्यक्ष ज्ञानदर्शी लोकज्ञानी जिनदेव द्वारा शील से अक्षातीत मोक्ष पद की प्राप्ति बतायी गई है।[33] आत्मा के सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, तप, वीर्य रूप पचाचार पवन सहित आग की भांति पुरातन कर्मों को जलाते हैं।[34] विषयविरक्त, जितेन्द्रिय, धीर, तप-विनय-शील सहित पुरुष आठ कर्मों को जला सिद्ध गति प्राप्त कर सिद्ध होते हैं।[35] जिस श्रमण का जन्म रूप वृक्ष शील (तथा) सौन्दर्य से समृद्ध है वह शीलवान है, वह महात्मा है, इसका गुण विस्तार भव्य जीवो मे फैलता है।[36]

ज्ञान, ध्यान योग दर्शन शुद्धि वीर्य के आधीन है, जिनशासन में बोधि सम्यग्दर्शन से प्राप्त होती है।[37] जिन वचन के सार को ग्रहण करने वाले, विषयों से विरक्त धीर तपोधन शील सलिल स नहाकर सिद्धालय के सुख को प्राप्त करते हैं।[38] सवगुणधारी, कर्मक्षीण करने वाले, सुख दु ख से न्यारे, विशुद्ध मन वाले, कम रज का प्रस्फोट (नष्ट) करने वाले प्रकट आराधना है।[39] अर्हंत मे सुविशुद्ध दर्शन पूर्वक शुभ भक्ति सम्यक्त्व है, विषय से विरक्तता शील है, ज्ञान फिर कैसा कहा गया है ? (अर्थात् इसके अतिरिक्त ज्ञानी होना क्या है ?)[40]

कुलभूषण और देशभूषण मुनिराज वशस्थल नगर के निकट वशधर पर्वत पर ध्यान मग्न थे। चौदह वर्ष के वनवास काल मे राम, लक्ष्मण और सीता भ्रमण करते हुए उस नगर के समीप सध्या समय पहुँचे। उस समय लोग घबडाये हुए नगर की ओर भाग रहे थे। पूछने पर ज्ञात हुआ कि रात्री मे पर्वत पर भयकर शोरगुल होता है। लोगो ने यह भी बताया कि वहा दो मुनिराज ध्यान कर रहे हैं। सीता ने राम से कहा कि मुनिराज पर कोई देव उपसर्ग करता है, आप उपसर्ग शान्त करने का उपाय करें। राम लक्ष्मण दोनो भाइयो ने पर्वत पर जाकर उपसर्ग शान्त कर दिया। उपसर्ग के शान्त होते ही दोनो मुनिराजो को केवलज्ञान हो गया। राम, लक्ष्मण और सीता ने मुनिराज की वन्दना की।

कुलभूषण तथा देशभूषण दोनो राजकुमार भ्राताओ के वैराग्य की कथा भी स्मरणीय है। दोनो ही न जानते हुए अपनी ही बहन पर आसक्त हो परस्पर युद्ध करने लगे थे। मत्री द्वारा बताये जाने पर कि यह तुम्हारी बहन है, दोनो ससार मे विरक्त हो मुनि बन गये थे।

—क्षु चैत्यसागर

महावीर वंदना

—र० अनूपचन्द्र न्यायतीर्थ
बीली का कुआ, जयपुर–3

(1)

वैशाली के राज कुंअर औ
सिद्धारथ त्रिशला के नन्दन
वीर और अतिवीर सुसन्मति
वर्द्धमान है शत शत वंदन ।।

(2)

महावीर तुम जन्मे थे तब
चारों ओर अशांति बडी थी
नर बलियां पशु बलियां होती
अन्यायों की बाढ़ चढी थी

(3)

तुम आये सब वैभव लाये
संकट क्लेश आपदा भागे
सुख साम्राज्य शांति का छाया
मानव में चेतनता जागी

(4)

तुमने जग जंजाल, समझकर
राजपाट तज दीक्षा धारी
केवल ज्ञान प्राप्त कर काटे
कर्म समूह हुए अविकारी

(5)

सत्य अहिंसा स्याद्वाद औ
अनेकान्त का पाठ पढाया
सर्व धर्म समभाव सिखाकर
लोगो को सन्मार्ग बताया

(6)

किंतु आज है दशा निराली
लूट पाट हत्याएँ होती
और घृणित आतकवाद ने
मानवता पर कालिख पोती

(7)

धर्म दुहाई देने वाले
दगे और फिसाद कराते
भाषा को आधार बनाकर
राष्ट्र बांटते नहीं अघाते

(8)

मदिर मसजिद गुरु द्वारे जो
आत्म—शांति के केन्द्र कहाते
वे ही शस्त्रागार बन गये
जहा लोग अब खून बहाते

(9)

महावीर हम भटक गये हैं—
पथ से, हम को राह दिखाओ
शान्ति पूर्वक जीवन कैसे—
जीए, ऐसा मार्ग बताओ

(10)

सौ सौ बार नमन है तुम को
त्रिशला के आखो के तारे
महा शान्ति के अग्रदूत हे
कुण्डलपुर के राज दुलारे ।।

तृतीय खण्ड

साहित्य एवं पुरातत्व

चौमुखी पर नीचे बायी ओर स्त्री एव दायी ओर पुरुष उपासक । J-230
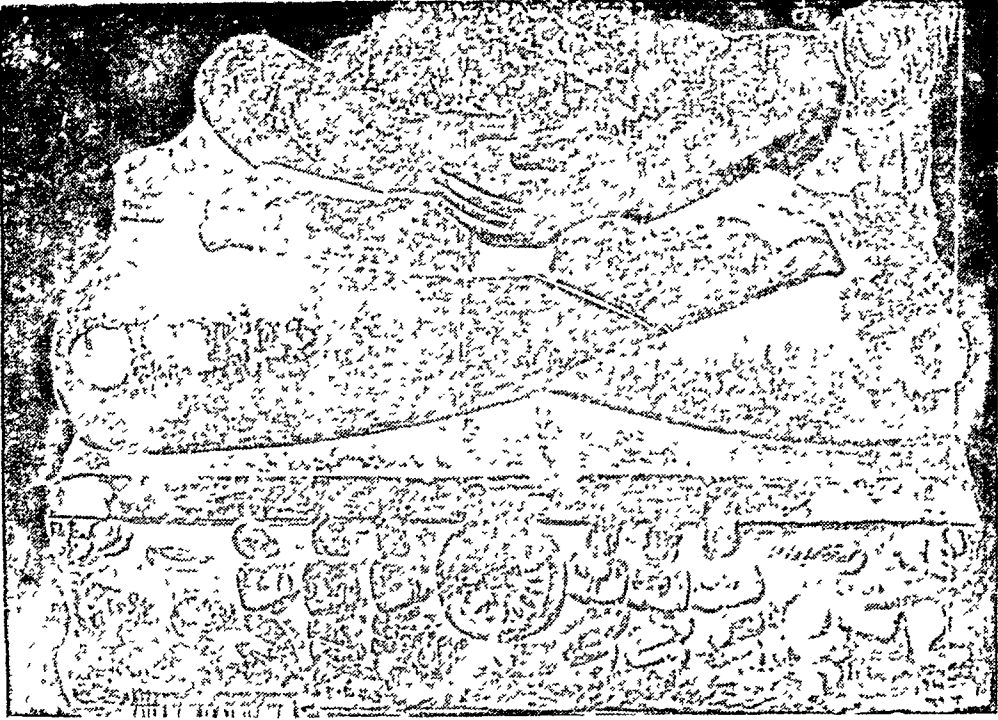
चरण चौकी मे धर्म चक्र तथा दाये बाये तीन-तीन साधु। J-121

पूर्ण विकसित गुप्तकाल तीर्थंकर मूर्ति एवं आसन चौकी।
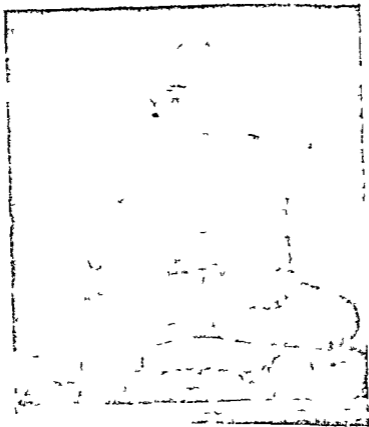
J 144, तीर्थंकर श्वेताम्बर वस्त्र स्पष्ट 12 वीं शती ई० कंकाली टीला, मथुरा
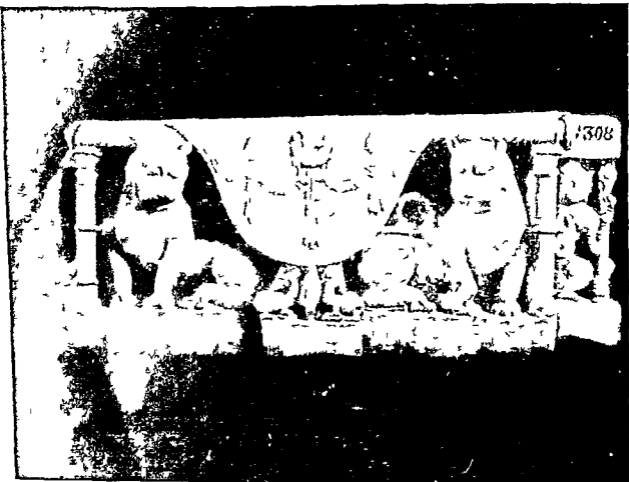
J 308 शान्तिनाथ की आसन पीठिका जिस पर बायीं ओर यक्षी और दायीं ओर यक्ष 12वीं शती ई० महोबा (उ० प्र०)
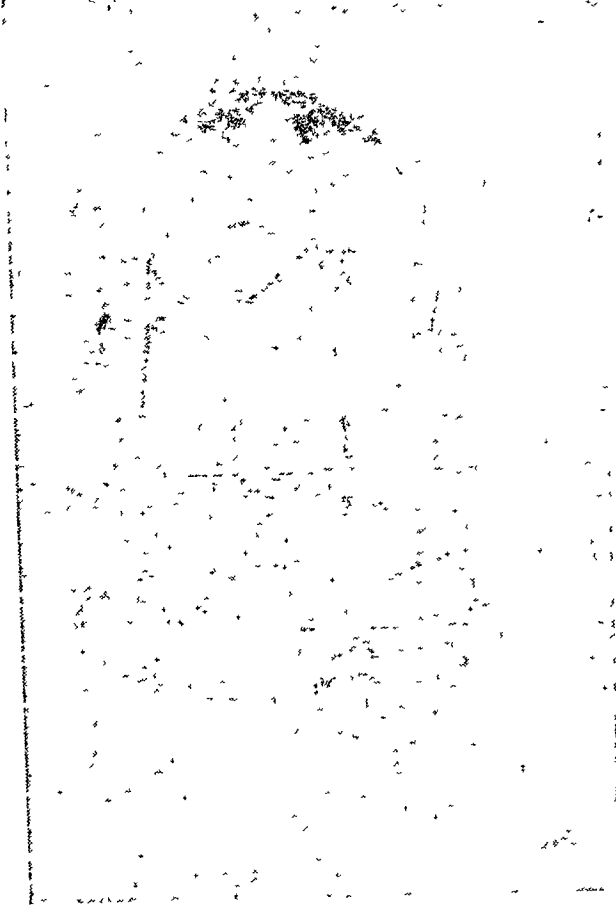
G-316, अम्बिका के मस्तक नेमिनाथ 12 वी शती महोवा (उ० प्र०)

J-887, संवत् 1226–57–1169 ई० महावीर भगवान की खडी प्रतिमा-काला पत्थर उन्नाव, (उ० प्र०)
'साधु माढू प्रणमति नित्य ।'

चौबीसी मूलनायक ऋषभ की यक्षी चक्रेश्वरी, यक्ष कुबेर तथा यक्षी अम्बिका व यक्ष गोमुख—लगभग 12 वीं शती उरई जालौन (उ० प्र०)

जैन मूर्तियों का क्रमिक विकास

शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी,
'सपर्या' 223/10 रस्तोगी टोला;
राजा बाजार लखनऊ ।

कतिपय विद्वान जैन मूर्तियों का प्रारम्भ सैन्धव संस्कृति से मानते है। जबकि जैन परम्परानुसार 'जिन' प्रतिमाएँ कालातीत है। तीसरा पक्ष इतिहास परक है, वह इन प्रतिमाओं को हाथी गुम्भा अभिलेख मे उल्लिखित 'जिन संनिवेश' के लाने के उल्लेख के अनुसार नन्दकाल से पूर्व का मानते हैं। वैसे लोहिनीपुर पटना के दो नग्नधड़ भी तीर्थंकर प्रतिमाओं के रूप में पहचाने जाते हैं।

उदयगिरि एवं खण्डगिरि की उपत्यकाओं में उत्कीर्ण जिन प्रतिमाएं लगभग द्वितीय शती ईसा पूर्व की इतिहासविदों द्वारा मानी गई है। मथुरा शैली की इसी समकालीन "नीलाजनानृत्य" या ऋषभ वैराग्य पट्ट[1] है। इस वास्तु खण्ड पर ऋषभ नाथ भूमि पर ढीली पलथी लगाए वैठे है। इनके वक्षस्थल पर सकर पारे के आकार का श्रीवत्स है। पार्श्व में लोकांतिक देव ऋषभदेव से उपदेश करने की प्रार्थना कर रहे है। यहां पर सिंहोंयुत सिंहासन, चंवरधारी, मालाधारी एवं यक्ष-यक्षी आदि का नितान्ताभाव है।

तत्पश्चात आयाग पट्टों पर तीर्थंकर, मुनि बरोधिवृक्ष, स्तूप, चक्र, स्वस्तिक एवं पद्मादि के अंकन पाते है। एक आयागपट्ट ज. 253 पर तीर्थंकर पार्श्व तीन पट्टियों वाले आसन पर सुशोभित है। ऊपर उनके सर्प फण का छत्र है; दोनों ओर एक-एक विवस्त्र मुनि हाथ जोड़े विनयावनत है। (दे. चित्र1-2) कुषाणकाल की प्रतिमाओंपर जे.8 में वांयी ओर स्त्री मालाधारी, तथा दाँयी ओर मालाधारी पुरुष तथा नीचे गणधर चक्र के दाँये-बाँये हैं। यह मूर्ति अरिष्टनेमि लेख युत है। इसी प्रकार एक तीर्थंकर प्रतिमा जे. 7 के पीछे वक्ष तथा वांयी ओर स्त्री एवं दांयी ओर पुरुष उपासक है। ऐसा लगता है कि यक्ष यक्षियों की प्रतिमा के विकास का बीजरूप यही से प्रारम्भ होता है।

---

1. राज्य संग्रहालय संख्यक जे. 609 एवं 354

इसी प्रकार कुषाण काल की मूर्तियों की चरण चौकी पर श्रावक श्राविका, साधु-साध्वी, अनुचर, एव चवर धारी, प्रभामण्डल एव कहीं-कहीं वृक्षों का अकन प्रतिमाओ के पीछे पात हैं। कही कही कुषाण प्रतिमाओं के पीछे कमल का रेखाकन सुषु'मा, नितम्ब का रेखाकन आदि पाते हैं। हथेली पर चक्र व तलुओं पर चक्र व वदी पद प्राय पाते हैं। गले मे रेखाए दो तथा केश घु घराले, उष्णीष का अभाव लेकिन दो एक मस्तकों पर बि'दी पाते हैं।

कुषाण काल की जन मूर्तियो में ऋषभ को पीछे की जटाओं, नेमिनाथ को श्रीकृष्ण और बलराम पार्श्व को सर्प फणों तथा प्रतिमालेख के आधार पर ऋषभ, समव शांति अरिष्टनेमि एव महावीर या वद्ध मान का ज्ञान हो जाता है। इसी काल की चौमुखी या सवतो भद्र प्रतिमाओ पर भी दायी ओर स्त्री एव बायी ओर पुरुष को पाते हैं (जे 230, दे चित्र3)। गुप्तकालीन प्रतिमाओ पर कुषाण काल की जिनमूर्तियों की चरण चौकी की भीड खत्म हो जाती है। सीधे धमचक्र तथाउसके दाये बाये दो-दो साधु या कही कही एक मुनि भी पाते हैं। यह ठीक वैसे है जसे कि मान कुअर बुद्ध की प्रतिमा तथा (जे 121) नेमि की चरणा चौकी मे देख सकते हैं। यह तीर्थंकर प्रतिमा मासलयुत है, तलवे पर एक चक्र पाते हैं हाथ में रेखाए पाते है प्रभामण्डल पर्याप्त अलकृत है, चवरधारी एकावली व मुकुट पहने मिलते हैं।

इसीकाल में सर्वप्रथम राजगिर की एक तीथकर प्रतिमा की चरण चौकी पर शखका अकन पाते हैं। इसी के बाद धीरे-धीरे प्रत्येक तीर्थंकर के परिचय चिह्न लाछन देने की परम्परा चल पडी। वसे दिगम्बर एव श्वेताम्बर ग्रन्थों मे भी चौबीसों तीर्थंकरों के चौबीस चिह्न न केवल वर्णित किये गये अपितु प्रतिमाओं की चरण चौकी पर मध्य मे लाछन बनाने की परिपाटी चल पडी और इसी के आधार पर कौन तीर्थंकर हैं यह जाना जाता है। जैसा कि ऊपर लिखा गया यक्ष यक्षियों का विचार समाज मे बीजरूप में था कि'तु प्रतिमाओ मे 9वी—10वी शती में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। प्रत्येक तीर्थंकर के लाछन की भाति प्रत्येक तीर्थंकर यक्ष यक्षी एव कैवल्य वृक्ष निर्धारित हुए। यहा पर यह भी ध्यान देने योग्य है कि दिगम्बर एव श्वेताम्बर परम्परा मे कतिपय मतभेद तो पाते हैं वस्त्र मुख्य अ'तर हैं।(दे चित्र 6)

चरण चौकी के कोने पर बायी ओर यक्षी एव दायी ओर यक्ष बनाए जान लगे (देखिए चित्र न 7)। इनके वाहन, आयुध, मुखाकृति नाम पौराणिक देवी देवताओ से मिलते हैं। यथा कुबेर वरुण मातग ईशान अम्बिका ज्वाला मालिनी एव सिद्धायिका आदिनाथ ऋषभ की यक्ष चक्रेश्वरी (वैष्णव) अम्बिका, पद्मावती सिद्धयिका यक्षकुबेर गोमुख। इनके अतिरिक्त त्रिछत्र देव-दु दभिवादक ऐरावत तथा उन पर सवार आदि के अकनो के अतिरिक्त मालाधारी विद्याधर जो पहले अकेले मिलते थे अब सब ठीक दर्शाए जाने लगे। महोबा की कुछ प्रतिमाए सरवर हैं जिसका वणन प्रतिष्ठा सारोद्धार में पाते हैं।

बौद्ध परम्परा मे बोधिसत्त्व के मस्तक पर ध्यानी बुद्ध कुषाण काल मे तथा मध्यकाल 12वी शती मे मारीचि के मस्तक पर ध्यानी बुद्ध पाते हैं। इसी प्रकार बाद वाले क्रमानुसार

चक्रेश्वरी, अम्बिका एवं पद्मावती के मस्तक पर क्रमश: ऋषभ, नेमि एवं पार्श्व को सुशोभित पाते हैं। (देखिए चित्र 8) चौबीसी भी जैन परम्परा में पाते है। इस पर भी यक्ष-यक्षी पाते है। संग्रह की एक श्वेताम्बर चौबीसी पर दोनों ओर यक्षी है, ये चक्रेश्वरी एवं अम्बिका है। (जे 948) एक अन्य ऋषभ मूल नायक युत चौबीसी पर नरवाहनी चक्रेश्वरी के साथ यक्ष कुबेर तथा अम्बिका एवं यक्ष अंकित पाते है (देखिये चित्र 9) (ओ 178)। नीचे दोनों ओर दम्पति अर्चना सामग्री लिये है।

युगलिया दम्पत्ति वृक्ष के नीचे अर्द्धपर्यंकासन में विराजमान रहते हैं, पीछे तले या वृक्ष के ऊपर ध्यानी तीर्थंकर विराजमान रहते है। जिन प्रतिमाओं युत अष्टोत्तर—शत पट्ट भी बनाए जाते थे। इन पर भी यक्षी मध्य मे बनी है। एक अन्य पट्ट पर 'सोमा' लेख है। मध्य में शंख दोनों हाथों से पकड़े स्त्री आकृति तथा दोनों ओर विवस्त्र तीर्थंकरों का अंकन है; यह खंडितपट्ट है। श्वेताम्बर प्रतिमाओं पर वस्त्र चिह्न पाते हैं। मध्यकालीन धातु प्रतिमाओं पर तीर्थंकरों के नेत्र एवं श्रीवत्सादि पर चांदी का भराव पाते है। मध्यकालीन स्तम्भों पर भी तीर्थंकरों का अंकन पाते है। संग्रह मे एक स्तम्भ (ओ. 72) पर, जो कि इलाहाबाद पब्लिक लाइब्रेरी से लखनऊ 1907 ई. में लाया गया था, चार ध्यानासीन तीर्थंकरों का अंकन है।

जैन प्रतिमा की चरण चौकी के लेखों में भी अन्तर होता गया। पहले सं. ऋ. दि. (संवत् ऋतु दिवस,) आचार्य, उपाध्याय शिष्य, गण, शाखादि का उल्लेख पातेहैं। कहीं-कही स्वसुर-सांस, सह माता-पिता, सुगन्ध वणिक, लौह कारुक, लवणशोभिका, शिवयशा, विजयश्री आदि रोचक उल्लेख हैं। जे. 16 की चरण चौकी पर लेख के मध्य अंजिलमुद्रा में एक उपासिका का रेखाकन है। (देखिए चित्र 2) मध्य काल में सवत् महाराजा का नाम, उपाध्याय, आचार्य का नाम पंडित प्रणमति नित्य तथा रूपकार रामदेव, जल्हल के महत्त्वपूर्ण उल्लेख हैं (दे. चित्र 10)

यदि तुलनात्मक दृष्टि से इन प्रतिमाओं का बौद्ध एव हिन्दू पौराणिक प्रतिमाओ के साथ अध्ययन करें तो मूल नायक ज्यो के त्यों रहे, इनके हरिहर, अर्द्धनारीश्वर या सिंहनाद अवलोकितेश्वर जैसे रूप नही परिवर्तित हुए। मूल मूर्ति सदैव ध्यानलीन ही रही, परिकर में समय-समय पर विकास होता गया।

'जिन' सदैव कामिनी संग शून्य अर्थात् विना स्त्री के बनाये जाते रहे हैं। युगलिया या माता पिता के साथ होना अन्य बात है। जहां पर तीर्थंकरों को यक्षिणी के मस्तक पर दिखलाया गया वह यह सिद्ध करने के लिए कि यह इन्ही 'जिन' की शासन देवी है तथा तीर्थंकर इन्हीं से सम्बन्धित है। 'जिन' मानव ही है। श्रेष्ठ गुणो के परिपालन से 'ईश्वर' जिसे जैनेतर मानते है—उनसे श्रेष्ठ है तब ही तो राम, कृष्ण एवं बलराम उनके समक्ष हाथ जोड़े श्रद्धावनत दर्शाए गये हैं। इस प्रकार संक्षेप मे जिन मूर्तियो के विकास का क्रम प्रतीत होता है।

क्या आचार्य श्री कुन्दकुन्द और उनकी पूर्व परम्परा को वह गणितमय नाभिकीय-रसायन ज्ञात था ?

(जिसकी खोज विश्व मे शताब्दियों तक चलती रही)

—प्रोफेसर लक्ष्मीचन्द्र जैन,

1 भूमिका

वर्द्धमान महावीर युग से अखिल विश्व में एक अद्भुत गणितीय क्रान्ति देखने मे आती है जिसने विश्व के विज्ञान को एक नये प्रकाशमय रूपान्तरण परिवर्तन सहित उदित होने का अवसर प्रदान किया। यह वीतराग विज्ञान को कर्म सिद्धान्त विषयक पुद्गल विज्ञान के साथ ही साथ उच्चतम शिखर तक ले जाने हेतु सक्षम बना गयी।* वह किस प्रकार सम्भव हुआ ? यह तथ्य

---

* पुद्गल विज्ञान सम्बन्धी जैन लेखादि के लिए देखिये

(1) जे सी सिक्दार डाक्ट्रीन आफ मेटर इन जैन फिलासफी मान्य डाक्टोरल थीसिस, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, 1967

(2) तीर्थंकर, जैन भौतिकी विशेषाक, इन्दौर, वर्ष 16 अक-4-4 अगस्त सितम्बर 1986

(3) जवेरी जे एस, थियोरी आफ एटम इन जैन फिलासफी, जैन विश्व भारती लाडनू, 1974

(4) जैन, एल, सी दी जैन थियोरी आफ अल्टीमेट पार्टिकिल्स, लेख—जैन दर्शन एव सस्कृति आधुनिक सदर्भ मे, इन्दौर विश्वविद्यालय, पृ 43-55 19 6
जैन एल सी, मेथामेटिक्स फाउन्डेशन्स आफ कम क्वान्टम सिस्टम थियोरी-I अनुसधान पत्रिका, जे वी वी, लाडनू 1973, पृ 1-19
जैन एल सी, प्रिंसिपिल आफ रिलेटिविटी इन जैन स्कूल आफ मेथामेटिक्स तुलसी प्रज्ञा जे वी वी लाडनू, 5, 1976

(5) सिकदार जे सी, जैन एटामिकथियोरी आ जे एच एन, 5 2 (1970) 199-218

षट्खंडागम, कषाय पाहुड के सारभूत लब्धिसारादि की बड़ी टीकाओं (कर्णाटक वृत्ति, जीव तत्त्व प्रदीपिका, सम्यक्ज्ञान चन्द्रिका टीका) में समाहित गणितीय प्रक्रियाओं से अनुमानित हो सकता है कि जैन दिगम्बर ग्रंथों मे नाभिकीय-रसायन गुप्त रूप से श्रृंखला-अभिक्रियाओं (Chain-reaction) गणित रूप में आया था। वहां समान्तर और गुणोत्तर श्रेणियों में उदित और गणित परमाणुओं और उनके अनुभागो का स्वरूप आधुनिक नाभिकीय प्रक्रियाओं के गणित से तुलनीय है। आत्मा का निर्मल श्रृंखला-अभिक्रिया युक्त परिणाम पुंज कितना सशक्त होता है जिसे निमित्त पाकर ध्यानावस्था में जो पौद्गलिक कर्म पारस्परिक-प्रक्रियाएं निर्जरादि हेतु चलने लगती है—उससे अनुमान लगाया जा सकता है। अनेक समयों में विकासशील, पल-पल मे परिवर्तनशील त्रिकोण यत्र रचना का अध्ययन अब आज परम आवश्यक हो गया है जिससे भौतिकी नाभि विज्ञान के गहनतम सिद्धान्त निकाले जा सकते है—तुलना तो साधारण सी बात है—और इस चुनौती को हमारी अगली वैज्ञानिक पीढ़ी को स्वीकार करना है। कठोरतम परिश्रम और कर्म सिद्धान्त के गणितमय अध्ययन में रुचि तथा आत्म चारित्र की उत्कृष्टता—इन सभी का समन्वय वाला सघ इसमे सफल हो सकेगा।

इस लघु लेख से हम एक अल्प झलक प्रस्तुत करेंगे उस रहस्य की जो आचार्य कुन्दकुन्द की इन गाथाओं में निहित है और उद्घाटित करने के लिए एक बार विश्व का वैज्ञानिक वर्ग कीमियाई या जीवन कायाकल्प रसायन या अमर जीवन तथा धातु विज्ञान की गहराई में डूबता चला गया। अंततः वह अणु-शक्ति का रहस्य पा सके किन्तु उसे आत्मोद्धार में लगाना वह भूल गया। "गये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास" कहावत चरितार्थ हो गयी।

ये पंक्तियाँ व्याख्या रूप में ज. वृ. मे अतिरिक्त रूप से उपलब्ध हैं—

णाग फलीए मूलं णाइणितोएण गब्भणागेण।
णागं होइ सुवण्णं धम्मतं भच्छवाएण ।।

कायं हवेइ किट्टं रागादि कालिया अह विभाओ।
सम्मज्झाणाण चरण परमोसहमिदि वियाणाहि ।।

झाणं हवेई अग्गी तवयरणं भत्तली समक्खादो।
जीवो हवेइ लोहं धमियव्वो परम जोईहि ।।*

ये गाथाएं 219 वी गाथा समयसार के पश्चात् आती हैं। डा. हीरालाल जैन ने इसे समयसार गाथाएं 229-235 बतलाई हैं।*

---

* देखिये समयसार, आचार्य कुन्दकुन्द, ज्ञानोदय प्रकाशन, जबलपुर, 1969, पृ. 222-223.

* जैन, डा. हीरालाल, "भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, भोपाल 1962, पृ. 204।
उन्होंने अर्थ इस प्रकार किया है—नागफणी का मूल, नागिनितोय गर्भनाग से मिश्रित कर

ग्राचाय श्री विद्यासागर का पद्यानुवाद इम प्रकार है—

सिंदूर नागफणि की जड ढूढ लाग्रो ग्रौर मूत्र भी हथिनि की उनमें मिलाग्रो ।
ज्यों घोकनी धुनक्ती रस प्राप्त होता, सीसा स्वर्ण बनता जब भाग्य होता ।। 231 ।।

है ग्रष्ट कम मल किट्ट ग्रसार सारा, लोहा बना पतित ग्रातम हमारा ।
रागादि ही कलुप कालिख मात्र जानो सम्यक्त्व बोध व्रत ग्रौपध पात्र मानो ।। 232 ।।

सद्ध्यान की धधकती ग्रगनी जलाग्रो, त्यों धोकनी तपमयी तुम तो चलाग्रो ।
योगी बनो सतत ग्रातम गीत गालो, ज्योतिर्मयी शुचिमयी निज को बना लो ।।

तत्वो के ग्रुप मे देखें तो निम्न चित्र एक सूत्रपात की दिशा बतलाता है—*

लोहा 26	सोना 79	पारा 80
55 84	196 96	200 5
2	1	2
14	18	18
8	32	32
2	18	18
	8	8
	2	2

सीसा 82	यूरेनियम 92	प्लूटोनियम 94
207 2	238 02	244
4	2	2
18	9	8
32	21	24
18	32	32
8	18	18
2	8	8
	2	2

(लोहे को) मन्शिका की धौंक से ग्रग्नि मे तपाने पर शुद्ध स्वर्ण बन जाता है । कर्म कीट है ग्रौर रागादि विभाव उसकी कालिमा । इनको दूर करने के लिए सम्यग्दशन, ज्ञान ग्रौर चारित्र ही परम ग्रौषधि जानना चाहिए । ध्यान ग्रग्नि है तपश्चरण धौंकनी (भस्त्रिका) कहा गया है । जीव लोहा है जो परम योगियो द्वारा धौंका जाता है, (ग्रौर इस प्रकार परमात्मा रूपी सुवण बना दिया जाता है) ।

* उपयुक्त तत्त्व के दाई ग्रोर लिखी सख्या धनात्मक (स्निग्ध ग्र श) विद्युत वाले प्रोटानो की सख्या है ग्रौर बाई ग्रोर नीचे लिखी सख्या प्रोटोनो ग्रौर न्यूट्रानो की कुल सख्या है । इन्हे क्रमश इलेक्ट्रिक चाज ग्रौर मास नम्बर भी कहते हैं । ये नाभि से सम्बन्धित हैं । ग्राज नाभि की सरचना क्वार्कों द्वारा मानी जाती है जो ग्लुग्रानो द्वारा विशाल शक्ति से बध को प्राप्त माने जाते हैं । सन् 2000 तक नाभिकीय भट्टियो से 90000 मेगावाट से भी ग्रधिक विद्युत ऊर्जा प्राप्त करने की सभावनाए हैं ।

वास्तव में सोना सीसे के प्राय: उतने समीप था जितना अणु शक्ति से सम्बन्धित आज प्लूटोनियम यूरेनियम से सम्बन्धित है। तत्त्व परिवर्तन का रहस्य नाभि के विभंजन में निहित था जिसकी कहानी बड़ी लम्बी है।

तत्त्वाणु की नाभि की खोज करते करते वैज्ञानिकों के बीच शताब्दियां गुजर चुकी थी और संहारक विध्वंसक शक्ति की भी खोज जारी थी जो विश्व पर अपना राजदण्ड स्थापित कर गरीबो, अज्ञानियों का शोषण करता रहे। कणाद, नागार्जुन, डेमोक्रिटस और चीनी विद्वानों, तथा बाद में अरबादि देशो के कीमियागरो ने अणुसम्बन्धी जानकारियां एकत्रित कर प्रस्तुत की थी, किन्तु दिगम्बर जैन महर्षियों की वाणी, संभवत: हीनाक्षरी मे निबद्ध कर्म एवं पुद्गल का गणितमय सिद्धांत लिये मुख्यत: दक्षिण भारत की कन्दराओ में छिपी पड़ी थी।* इस खोज भरे प्रयत्नो का एक लम्बा इतिहास है* किन्तु इसकी एक झलक आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार मे उपरोक्त अगणितीय पंक्तियों मे प्रस्तुत कर दी थी। उस युग की यह रहस्य भरी बात से कुन्दकुन्दाचार्य का मात्र आध्यात्मिक प्रयोजन ही था जिसके और भी कर्म सिद्धान्त विषयक षट्खण्डागम मे आये रहस्यमय तथ्यो पर उन्होने गणित सूत्रों या हीनाक्षरी विद्या की सहायता से परिकर्म नामक टीका रचित की होगी। यहाँ हम हीनाक्षरी का अर्थ संदृष्टिमय गणित के रूप मे ले रहे है, जिसे आचार्य श्री पुष्पदंत एव श्री भूतबलि ने सिद्ध की थी। कर्म सिद्धान्त गणितमय तो है ही जहा हर वस्तु का प्रमाण उपमा एवं सख्या द्वारा निश्चित किया गया है। दिगम्बर जन ग्रन्थो का संदृष्टिमय गणित अलौकिक तो था किन्तु उसकी विधिया जानकारों द्वारा लौकिक रूप मे भी प्रकट होती चली गयी होगी। नेमीचद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती (दसवी ग्यारहवी सदी मे) जब यह गणित माधवचद्र त्रैविद्य एव केशववर्णी कृत वृत्तियो मे गृहस्थों के पास चामुण्डराय की अपेक्षा पर प्रकट हुआ तो उसी समय से एक नई-क्रांति का पुन: उदय हुआ होगा। आचार्य कुन्दकुन्द के समय के गणित और रहस्यमय कर्म सिद्धान्त मे उसका प्रयोग अरब से यूरोप तक

---

* आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा पुद्गलद्रव्य सम्बन्धी लोकप्रिय जानकारी और उसका जीव के साथ कर्म रूप में कथन अनेक गाथाओ मे उपलब्ध है। पुद्गलद्रव्य सम्बन्धी गाथाए निम्नलिखित हैं—पुद्गल के भेद—नियमसार 20, स्कन्ध के भेद - नियमसार 21-24, पुद्गल के अन्य प्रकार से भेद—पंचास्तिकायसार 74. स्कन्धादि का लक्षण—वही 75, परमाणु के दो भेद—कारण एवं कार्य रूप—नियमसार 25, परमाणु का स्वरूप वही 26 एवं पचास्तिकाय 80, परमाणु मे गुण—पचास्तिकाय 81, पुद्गल की पर्याय—नियमसार 28 एवं 29, परमाणु किस प्रकार स्कन्ध रूप होता है—प्रवचनसार 2.71; परमाणु मे स्निग्ध और रूक्ष गुणों का परिणमन—वही 2.72, किस प्रकार के स्निग्ध रूक्षगुणबंध मे कारण होते हैं—वही 2.73,74,75; आत्मा और कर्म का बन्ध—पुद्गल जीव और उभयबंध—प्रवचनसार 1, 81, 82, 83, 84, 85, 86, मूर्त पुद्गल द्रव्य के गुण—वही 2-40, इत्यादि।

देखिए, साइंस एण्ड सिविलिजेशन इन चायना, नीधम जे., लिंग, डब्लू., भाग 2, पृ 636 आदि केम्ब्रिज, 1959.

छा गया और इस विसर ज्ञानाश को वहा के वैज्ञानिक नजर अदाज न कर सके होंगे। उन्होंने बीज-गणित के समीकरणों और प्रयोगो के सहारे धीरे-धीरे रसायन शास्त्र के सिद्धान्तो की रचना प्रारम्भ कर दी होगी। जहा दिगम्बर जैन मुनियो का प्रायोगिक दृष्टिकोण आध्यात्मिक था जिसमें गणित ने भरपूर भाग लिया, वहा यूरोपीय वैज्ञानिको का दृष्टिकोण मात्र भौतिकतापूर्ण था। सभी समझ चुके थे कि मात्र प्रयोग द्वारा ज्ञान मे आगे नहीं बढा जा सकता है जब तक गणित के सहारे उसकी पृष्ठभूमि मे सिद्धान्त को परिष्कृत न किया जाये। महानतम आविष्कार का तकनीक इसी तथ्य पर आधारित है। जहा जैन परम्परा मे परमाणु तक भेद, उसके कर्मानुभाग, स्पश के अश आदि की विस्तृत सामग्री मौजूद थी वहा तब तक वैज्ञानिकों को अणु की नाभिकीय शक्ति और उससे बने परमाणुओ की अदृष्ट रचना का सिद्धान्त ज्ञात नही था।

जब रेडियम जैसे तत्त्व से रेडियो सक्रिय स्कन्ध विकीरित होते पाये गये, तब वैज्ञानिको को ज्ञात हुआ कि उन्हें पुन कोई गणित का सहारा लेकर नवीन सिद्धान्त बनाने होंगे। रेडियम की नाभि विखडित होकर सीसे और कार्बन की नाभियो मे परिवर्तित हो जाती है। यह विकिरण क्रिया सशक्त स्कन्ध पुजों को निर्जरित करती रहती है। इसे कई दशको तक गणितीय सूत्रो में बाधने के प्रयास हुए किन्तु अन्तत आइस्टाइन ही विश्व को 1905 मे सापेक्षता सिद्धान्त के आधार पर वह सूत्र दे सके जिसने परमाणु शक्ति की विशालता से सम्पूर्ण लोक को विचलित कर दिया। यह सूत्र था शक्ति = मात्रा × प्रकाश गति × प्रकाश गति ($E = mc^2$)। यह प्रकाश की गति को सवत्र सर्व दशाओ मे उत्कृष्ट मान लेने पर प्राप्त हुआ। उस समय तक मैक्स प्लांक (ऊर्जा × काल) रूप से मान्य क्रिया (action) का जघन्य निश्चल प्रमाण (h) निर्धारित कर चुके थे। इस जघन्य ने भी भौतिक एव रसायनिक सिद्धान्त मे क्रान्ति ला दी जैसे आइन्टाइन के उत्कृष्ट ने अणु बम बनाने के तकनीक तक वैज्ञानिकों को ला दिया। केवल एक छोटा सा रहस्य शेष था इसे बनाने के लिए—वह था श्रृंखला प्रतिक्रिया (Chain reaction) अथवा क्रिया का प्रारम्भ हो जाने पर वह लगातार जारी रहे और शक्ति को गुणोत्तर रूप मे विस्फोटित करती चली जाये। किन्तु यह अत्यन्त अल्प समय मे विशाल मात्रा मे ऊर्जा विकिरित कर दे। अणु की नाभि को विखडित करने के लिए न्यूट्रान की गति यदि अति तीव्र हो तो वह श्रृंखला-प्रक्रिया उत्पन्न नही कर सकता है। उसे विमर्दित किया जाता है तो किसी उत्कृष्ट-जघन्य के बीच की गति उसकी यह प्रक्रिया उत्पन्न कर सकती है, तभी परमाणु शक्ति का विस्फोट होता है।

आचार्य कुन्दकुन्द के इस अभिप्राय को गणितीय रूप में गोम्मटसार कर्मकाण्ड का इन गाथाओं मे प्रारम्भिक रूप से देखा जा सकता है—

"सिद्धाणतिमभाग अभव्व सिद्धादणत गुणमेव।
समयपबद्ध बधदि जोगवसादो दु विसरित्थ ॥ 4 ॥

जीरदि समय पवद्ध पओगदोऽणेग समयवद्ध वा।
गुणहाणीण दिवड्ढ समय पवद्ध हवे सत्त ॥ 5 ॥

अर्थात् (प्रति समय) सिद्धराशि के अनन्तवें भाग और अभव्यराशि से अनन्तगुणे परमाणु रूप समयप्रवद्ध को वांधता है। योग के वश से कमती-वढ़ती परमाणुओं के समूह रूप समयप्रवद्ध को वांधता है। प्रति समय एक कार्मण समय प्रबद्ध की निर्जरा अर्थात् उदय होता है। (अथवा सातिशय क्रिया सहित आत्मा के सम्यक्त्व आदि रूप) प्रयोग के कारण (जो निर्जरा के ग्यारह स्थान कहे हैं उनकी विवक्षा से) एक समय मे अनेक समय प्रवद्धों की निर्जरा करता है। तथा प्रतिसमय डेढ़ गुण हानि प्रमाण समय प्रबद्ध का सत्त्व होता है।

उपर्युक्त का विशेष गणितीय निरूपण जो बंधास्रव, उदय, निर्जरा से त्रिकोणयंत्रादि द्वारा लब्धिसारादि मे दिया गया है—उस प्राकृतिक सत्य को उद्घाटित करता है, जो सर्वत्र सर्वदा देखने में, अनुभव में आता है। जघन्य और उत्कृष्ट की सीमाओं मे निर्धारित, प्रकृति, प्रदेश, अनुभाग और स्थिति के ये गणित इन ग्रंथो मे अति सरल रूप मे दिये गये दिखाई देते हैं, किन्तु इन्हे कैसे, कौनसे गणितीय तकनीक द्वारा सम्पूर्ण कर्म सिद्धान्त मे लाया गया होगा यह छद्मस्थ की समझ से परे दृष्टिगत होता है। फिर भी करणों से प्राप्त समीकरण एवं असमीकरण रूप बीजगणित हमें अमूर्त द्रव्यों में होने वाले भावों और मूर्त-द्रव्यो मे होने वाले भावों के मध्य जो पारस्परिक प्रतिक्रियादि रूप दिखाई देते है उन्हे **प्रमाण** द्वारा गूंथता है। योग के अतिरिक्त कोई **प्रयोग** जैसा शब्द भी है जो सामान्य रूप से होती घटना मे कुछ परिवर्तन भी ला देता है। स्पष्ट है कि यहा योग और कषाय की मंदता, असख्यात गुणी निर्जरा में निमित्त उस रूप में है, जहां तक इस मंदता से आत्मा की विशुद्धि प्रकट होती है। इसमे तप भी समन्वित हो जाता है और सुध्यान भी।

अणु-शक्ति जो विखंडन ऊर्जा (Fission energy) रूप में यूरेनियम तत्त्व को वेरियम, क्रोमियम आदि तत्त्वो मे विखण्डित करने से प्राप्त होती है, उसे हम गल-प्रक्रिया रूप कह सकते हैं। किन्तु जो इस ऊर्जा का उपयोग उद्जन बम वनाने मे, इससे कई गुना ऊर्जा उतने ही अल्प समय मे प्राप्त करने के लिए होती है, उसे हम पुद् (fusion) प्रक्रिया रूप कह सकते हैं। तप की तुलना अग्नि से और ध्यान की तुलना धुकनी से की गयी है।* यह प्रयोग ही है जिसे परम योगी जानते हैं और सम्यक् आचरण में लाते हैं। विखण्डन श्रृंखला की कड़ी न्यूट्रान (स्निग्ध रूक्षत्वांश रहित) होते हैं तथा संलयन (fusion) श्रृंखला की कड़ियां प्रोटान या ड्यूटरॉन होते है। यहां आचार्य कुन्दकुन्द ने

---

* श्री क्षु. गणेश वर्णी का उपरोक्त पंक्तियो का अनुवाद इस प्रकार है—"जिस प्रकार सता-फनी की जड़ हस्तिनी का मूत्र और सिन्दूर के साथ सीसा धोंकनी की वायु से गलाने पर सुवर्ण वन जाता है, उसी प्रकार अशुद्ध आत्मा शुद्ध वन जाता है। कर्म कीट है, रागादि विभाव कालिमा है. सम्यक्त्व, ज्ञान और चारित्र परम औषधि है, ऐसा जानो। ध्यान अग्नि है, तपश्चरण मातली-पात्र कहा गया है और आत्मा लोहा है। परम योगीश्वरो को इसे तपाना चाहिए।

देखिए समयसार, प्रवचनकार श्रीगणेश वर्णी, वाराणसी. पृ 349, वी. नि. स. 2501। ये तात्पर्य वृत्ति मे व्याख्यात हैं।

स्वण तत्त्व रूप लाने मे लौह के लिए तथा सीसे के लिए विभिन्न रसायन प्रयोग बतलाया है, किन्तु अग्नि और हवा दोनो मे उभयनिष्ट है। जिस जीव का जैसे तत्त्वरूप कम बधा हो, उसे वैसे रसायन की आवश्यकता होगी, जो अन्य अन्य होगी, कहीं पुद् कहीं गल रूपान्तरण हेतु। प्रयोगो की विभिन्नता में शक्ति के ऊर्जा के आविर्भाव विभिन्न रूप मे होंगे। इनका विवरण गणित के प्रमाण द्वारा प्रदेश, प्रकृति, अनुभाग एव स्थिति रूप कैसे रूपान्तरित होंगे यह लब्धिसारादि मे सक्षिप्त रूप मे उपलब्ध हैं। इनके रैखिक चित्रो से आधुनिक रखिक ग्राफो से तुलनात्मक अध्ययन करना आज के विद्यार्थी के लिए चुनौती है। मात्र शब्दो की तुलना मे इसे पडे नही रहना है वरन् उस सैद्धान्तिक माडेल और इस सैद्धान्तिक माडेल की सम्पूर्ण रूप मे तुलना कर बतलाना है कि प्रयोजन सिद्ध करने वाला कौन है, जबकि प्रयोजन पारमार्थिक हो। विमन्दन यहा कुजी रूप है जब विश्राम की अवस्था का अध्ययन हो। चाहे वह योग राग द्वेषादि का हो अथवा न्यूट्रान का हो।

लब्धिसार मे वर्णित एक विखण्डन चित्र यत्र जो द्रव्य और अनुभाग (मात्रा और ऊर्जा) समन्वित है —

नाम	मिथ्यात्व	मिश्र	सम्यक्त्व मोहनी
निषेक			
द्रव्य	1— व स व 12— गु 7 ख 17 गु ब	स व 12 - व 7 ख 17 गु	स व 12 - 1 7 ख 17 गु
अनुभाग	3——— वा 9 ना	3——— व 9 ना ख	3——— व 9 ना ख ख

नोट उपर्युक्त से ज्ञात होगा कि परिमाणात्मक प्रयोग जो दिगम्बर जैन दक्षिण भारतीय महर्षियो ने सदृष्टिमय रूप लेकर दिया वह वैज्ञानिकता को अपने अचल मे लेकर चल रहा था। स्पष्ट है कि उन्हें इसी प्रामाणिक रूप में लौह सीसा जैसे तत्त्वो को स्वर्ण मे परिवर्तित करन का गणितीय चिन्तन भी ज्ञात रहा होगा। आज यूरेनियम—235 से नाभिक का बेरियम, क्रिप्टान, तथा तीन न्युट्रानों मे विखण्डन और श्रृखला अभिक्रिया जारी रखी जाती है।

यूरेनियम 235 की श्रृंखला अभिक्रिया (Chain reaction)
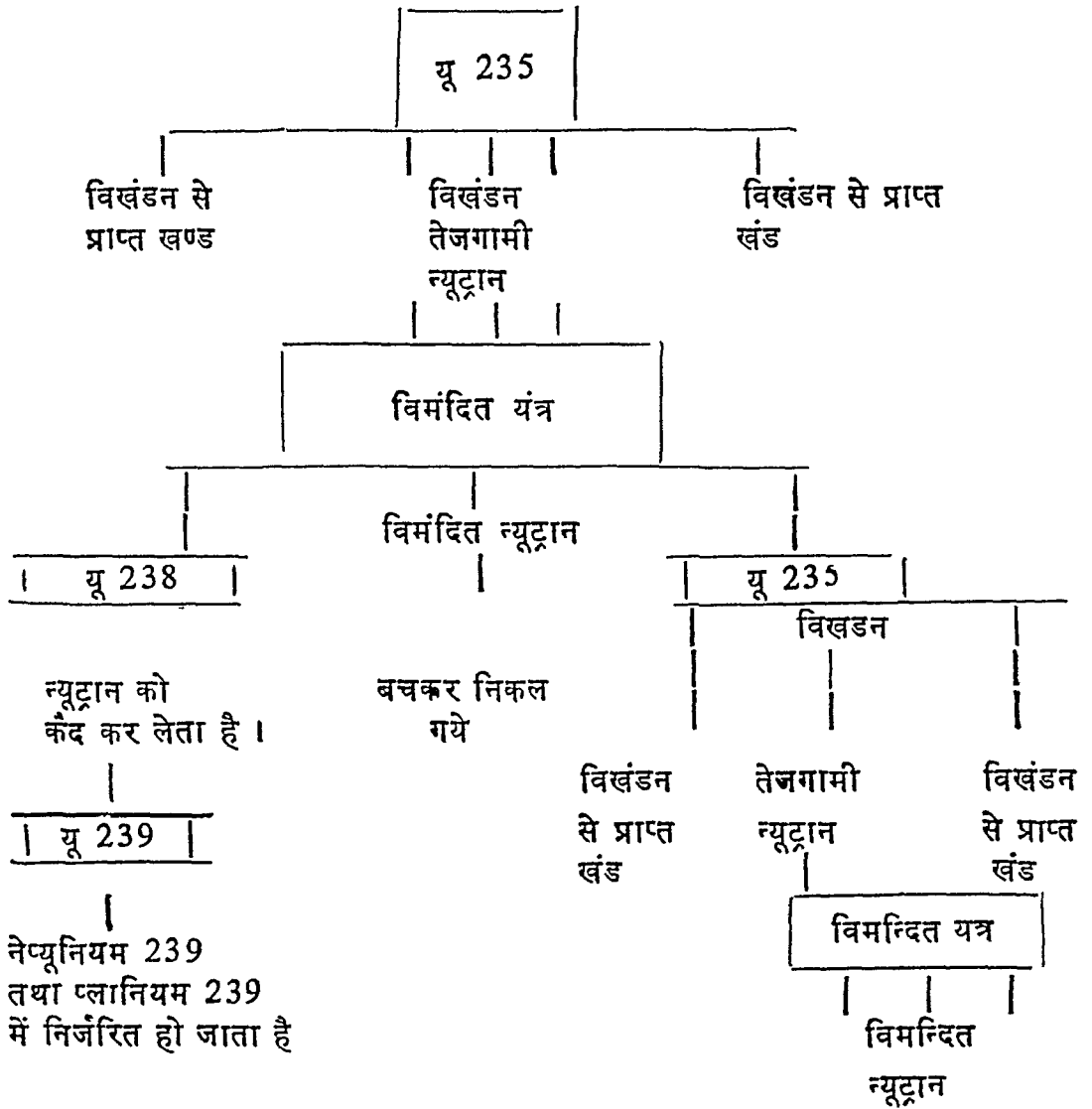
मानद निदेशक
आचार्य श्री विद्यासागर शोध संस्थान
554 सराफा, सूर्या एम्पोरियम,
जबलपुर 482002

"सुदंसण चरिउ" में सुचिन्तन

डॉ० प्रेमचन्द रावका

अपभ्रंश भाषा के प्रसिद्ध कवि मुनि नयनन्दी द्वारा सं 1100 में विरचित 'सुदसण चरिउ' 'सुदर्शन काव्य परम्परा" का प्रमुख ग्रन्थ है। पांचवें अन्तकृत् केवली तद्भव मोक्षगामी मुनि सुदर्शन इस प्रथित काव्य कथा के अमर नायक हैं। संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी आदि भाषाओं में सुदर्शन के चरित्र को आधार बनाकर अनेक लघु वृहद काव्यों की रचना हुई है। मुनि नयनन्दि कृत सुदंसण-चरिउ" अपभ्रंश-कथा काव्य परम्परा का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसको परवर्ती हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी भाषी कवियों ने भी अपनी काव्य-रचना का मूलाधार बनाया। इसमें 15वीं सदी के महाकवि ब्रह्म जिनदास का "सुदर्शन रास" उल्लेखनीय रचना है।

आलोच्य सुदंसण चरिउ' बारह संधियों में विभक्त एवं कथात्मक महाकाव्य है। इसमें प्रथित 'पंच नमस्कार मंत्र' के महात्म्य को प्रकट किया गया है। यह उन विरले काव्यों में से हैं, जिनका आरम्भ 'णमोकार मंत्र' के मंगलश्लोक से होता है। इस काव्य का कथन एक सद्गृहस्थ के महनीय व्यक्तित्व का उद्घाटन करता है जो स्वदार सन्तोषी एक पत्नीव्रतस्थ है और परकीया द्वारा साम-दाम दण्ड भेद सब नीतियों से प्रेरित किये जाने पर भी स्खलित नहीं होता है। स्त्री पर-पुरुष पर मोहासक्त होकर उसका प्रेम प्राप्त करने का उत्कट प्रयत्न करती है। असफलता में वह सत् पुरुष को ही उल्टे कलंकित करती है जिसकी परिणति उसके स्वयं द्वारा आत्म घात में होती है। इस घटना से सत्पुरुष सुदर्शन का वैराग्य वृद्धिगत होता है। वे निश्चल निष्काम योगी बन अपने कर्म बन्धनों का जाल काट कर मोक्ष लक्ष्मी का वरण करते हैं। स्त्री प्रभाव का मोहासक्त होना सांसारिक जीवन का अंश है। उनका यह प्रेम पति-पत्नी के रूप में मर्यादित होकर सुख का सागर बन जाता है, परन्तु परकीय प्रेम का छलावा किस नर-नारी के जीवन में छल छद्म बन कर उन्हें नर्कगामी नहीं बनाता? इसी मूलभूत तथ्य को जन जीवन में प्रकट करना नयनन्दि को अभीष्ट है।

कोई भी रचना साहित्य की संज्ञा को तभी प्राप्त होती हैं, जब उसमें प्राणी-मात्र के शाश्वत हित के तथ्य निहित हो। कसौटी पर वही काव्य खरा उतरेगा—जिसमें उच्च चिन्तन हो, सौंदर्य का सार हो और जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो।

विवेच्य 'सुदंसण चरिउ' यथार्थोन्मिलित आदर्श महाकाव्य है। इसमें सत्यं, शिवं और सुन्दरम का अद्भुत समन्वय है। अपने अभीष्ट की सम्पूर्ति में कविवर मुनि नयनन्दि ने बारह सन्धियों में विभक्त अपने प्रिय "सुदंसण चरिउ" को सार्थकता प्रदान की है। प्रत्येक सन्धि में कवि ने यथा स्थान अपने आदर्श चरित्र पात्रों द्वारा उच्च मानवीय चिन्तन प्रस्तुत किये है, जो साहित्य में सुभाषित है, जन-जीवन में शिवत्व है और प्राणि-मात्र हेतु इहलोक में अभ्युदय और पारलौकिक जीवन मे निःश्रेयम के कारण हैं। यहां इस काव्य के कतिपय सुचिन्तन प्रस्तुत हैं—

[1]अह एक्कहिं दिणि वियसिय-वयणु मणे णयणणंदि वियप्पइ।
सुकवित्ते चाए पोरिसण जसु भुवणम्मि विढप्पइ ॥

—एक दिन, विकसित मुख होकर नयनान्दि अपने मन मे विचारने लगे कि सुकवित्व, त्याग और पौरुष से ही भुवन मे यश मिलता है।

[2]मणुयत्तहा फलु धम्म विसेसणु, मित्तहा फलु हियमिय उवएसणु।
विहवहा फलु दुत्थिय प्रासासणु, तक्कहा फलु वर सक्कयभासणु ॥

—मनुष्यत्व का फल धर्म की विशेषता ही है। मित्रता का फल हित मित उपदेश मे है। वैभव का फल दुखियों को आश्वासन में ही है, और तर्क का फल सुन्दर संस्कृत भाषण करना है।

[3]तवचरणहा फलु इंदिय दंडणु, सुयणहा फलु पर गुण सु पसंसणु।
पेम्महा फलु सब्भाव णिहालणु, णाणहा फलु गुरुविणय पयासणु ॥

—तपश्चरण का फल इन्द्रियों का दमन करना है, सज्जनता का फल पर—गुण प्रशंसा में है, प्रेम का फल सद्भाव का निर्वाह है, ज्ञान का फल गुरुजनों के प्रति विनय प्रकाशन में है।

[4]पंच विगुरु छुडु सुमरइ णरु अइसय भत्तिए जुत्तउ।
ण चिरावइ मोक्खु वि पावइ णहे गमु केत्तिय मित्तउ ॥

—यदि मनुष्य अतिशय भक्ति से युक्त होकर पंच परमेष्ठी का स्मरण करे, तो फिर देर नही लगती, मोक्ष को भी पा जाता है; नभ गमन तो कौन बड़ी बात है।

[5]सप्पाइ दुक्खु इह दिंति एक्क भाव दुण्णिरिक्खु।
विसय विणभति जम्मंतर कोडिहिं दुहु जणंति ॥

---

1. संधि 1-1
2. 1-10
3. 1-10
4. 2-9
5. 2-10

—सर्पादि विषैले जन्तु तो इसी एक भव में असह्य दुःख देते हैं, परन्तु विषय-भोग करोड़ों जन्मान्तरों में दुःख उत्पन्न करते हैं।

[1]जिह पचिंदिएहिं सोहइ मणु पंच वण्ण कुसुमहिं जिह उववणु।
पचसिलि मुहेहिं जिह वम्महु पचहिं पडवेहिं जिह भारहु।
पचाणुव्वएहिं जिह भवियणु पंच महव्वएहिं जिह मुणिगणु।
पच पच भावणहिं वयक्कमु पचाचारहिं जिहि रिसि पुगमु।
पच महाकल्लाणहिं जिह जणु पचत्थिकायहिं जिह तिहुयणु।
पच हिं मदरेहिं जिह महियलु पचच्छरियहिं जिह दाणहा फलु।
पचंगे मते जिह महिपहु पच विहहिं जोइ सयहिं जिहणहु।
पच सयहि पमाणु जोयणु जिह पचणमोक्कारहिं मरणु वितिह।

—जिस प्रकार पंचेन्द्रियों से मन शोभायमान होता है जैसे पंचवर्ण कुसुमों से उपवन, पंच बाणों से कामदेव पांच पाडवों से भारत पंचाणुव्रतों से जैसे भव्यजन, पंच महाव्रतों से मुनिगण पांच-पांच भावनाओं से व्रत क्रम पंच आचारों से ऋषि पुंगव, पंच महाकल्याणकों से जैसे जिनेन्द्र देव, पंच अस्तिकायों से त्रिभुवन, पांच मदरों से पृथ्वीतल, पंचाश्चर्यों से दान का फल, पंचांग मंत्र से महीपति पंचविध ज्योतिषी देवों से नभ और पांच सौ योजनों से प्रमाण योजन होता है, वैसे ही पंच नमस्कार मंत्र सहित मरण शुभ होता है।

[2]मणु खचवि जे पय पंच वि इय झाय हिं आणदिय।
सिद्धालउ अट्ठगुणालउ ते लहति णयणदिय॥

—मन को वश में कर जो आनन्दयुत होकर पांच पदों वाले नमस्कार मंत्र का ध्यान करते हैं वे अष्टगुणालय सिद्धालय को प्राप्त करते हैं ऐसा नयनन्दि कहते हैं।

[3]अह सच्चु जि णिय पयतल जलतु जणु णियइ ण उम्मग्गे चलतु।

—सच है, उन्मार्ग में चलता हुआ मनुष्य अपने पांव के तलवे की जलन को नहीं देखता।

[4]गुरुसिक्खालाव सिसुत्तदिण्ण लग्गहिं जिह घडए अपक्कि कण्ण।

—शिशुकाल में गुरु द्वारा प्रदत्त शिक्षायें, कच्चे घड़े में कण की तरह हो जाती है।

तरुवरहो मूलु सिरु धडहो जेम,
सारउ सम्मत्तु वि वयहा तेम॥

---

1 2-15
2 2-15
3 3-12
4 3-8

—जिस प्रकार वृक्ष का मूल व धड़ का सिर सारभूत अंग है, उसी प्रकार व्रतों का सार सम्यक्त्व है।

विहलु जाई कह दिण्णु अवत्तए, ववि‍उ वीउ जह ऊसरछेत्तए।

—अपात्र को दिया दान वैसे ही विफल जाता है, जैसे ऊसर क्षेत्र में बोया हुआ बीज।

दुद्धहा भरियउ जिह घडु, सुर विंदु विणासइ।

तिह णिसि असणे, तवहा महाफलु णासइ॥

—जैसे दूध से भरा हुआ घट सुरा की बूंद मात्र से विनष्ट हो जाता है, ही वैसे रात्रि भोजन से तप का महाफल नष्ट हो जाता है।

सहि पियमु इह धुत्तीहि तेम, वाहिज्जइ पय पाणहिय जेम।

—हे सखि, चतुर स्त्रियां अपने प्रियतम को उसी प्रकार वश में कर लेती हैं; जिस प्रकार पैर पनही को पहन लेते हैं।

कोमल पयं उदारं छंदाणुवरं गहीरमत्थड्ढं।

हिय इच्छिय सोहग्गं कस्स कलत्तं व इह कव्वं॥

—कोमल पद, उदार, छन्दानुवर्ती, गंभीर, अर्थ समृद्ध, मनो वांछित सौन्दर्य युक्त कलत्र व काव्य किसी सौभाग्यशाली को ही मिलता है।

एक्के हत्थे तालु कि वज्जइ, किं मरेवि पंचमु गाइज्जइ।

किज्जइ अणुरइ तहा जो मण्णइ जो पुणु अणु णियंतु अवगण्णइ।

होउ सुवण्णेण वि ते पुज्जइ, कण्णजुयलु जसु संगे छिज्जइ।

—क्या एक हाथ से तालि बजती है? क्या मृतक के आगे पंचम राग होता है? अनुराग उसी से करना चाहिये जो उसे माने, जो अनुनय करने वाले की अवहेलना करे तो क्या? जिसके संग (पहिनने) से कान टूटे, ऐसे सुवर्ण की पूजा दूर से ही भली।

दीहु सुहावहु चिंतियउ, अच्चग्गलु णउ बोलिज्जइ।

पच्छुत्तावउ जं जणइ, त किं पि कज्जु णउ किज्जइ॥

—दीर्घकाल तक सुखदायी चिंतन की उपेक्षा कर अनर्गल नहीं बोलना चाहिये। ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिये जो पश्चाताप को जन्म दें।

अंगो वग सहोच्छिय दावइ, तं खज्जइ ज परिणइ पावइ।

—नहीं खाना चाहिये जो पच जाय व अंगों तथा उपांगों को स्वास्थ्यप्रद हो।

रहमें मीलु परिच्चएवि जए णिदु कज्जु एउ किज्जइ ।
वर सुवण्ण कलसहा उवरि ढकणु कि खप्पर दिज्जइ ।।6।।

—प्रावेश मे आकर शील को छोड जन-निन्द्य काय नहीं करना चाहिये । उत्तम सुवर्ण के कलश पर क्या खप्पर का ढक्कन दिया जाता है ?

जणणिए छारपु जु वरिजायउ पाउ कुमील मयणे णुम्मायउ ।
मीलवतु बुहयण सलहिज्जइ सील विवज्जिएण कि किज्जइ ।।

जननि ! जल कर राख का ढेर हो जाना अच्छा, किन्तु मदन के उन्माद से कुशील अच्छा नहीं । शीलवान की बुधजन सराहना करते हैं । शील से विवर्जित मनुष्य किस काम का ?

कसु तणउ तणउ कसु घरु कलत्तु, परमत्थे को वि ण सत्तु मित्तु ।
भुवणत्तए वि पवियमियासु आवज्जियकम्महा णत्थि णासु ।

—किसका पुत्र किसका घर और किसकी पत्नी ? परमार्थ से न कोई शत्रु है और न मित्र । तीन लोक मे कहीं भी अर्जित कर्म का फल दिये बिना नाश नहीं हो सकता ।

परि मेसिवि णिय मण राउ दोसु पालिज्जइ किर छुडु वयह लेसु ।
सुरणरेह पुज्ज त कवण चोज्जु लब्भइ मोक्खु विभ्रणवज्जु पुज्जु ।।

—अपने मन मे राग-द्वेष का त्याग करके लेश मात्र भी व्रतो का पालन किया जाय तो देवों और मनुष्यो की पूजा प्राप्त करना तो आश्चर्य ही क्या, निर्दोष और पूज्य मोक्ष भी प्राप्त किया जा सकता है ।

मो दूरे अच्छउ ताम राउ देव वि णमति जसु धम्मे भाउ ।

—राजा तो दूर रहे जिसका धर्म मे भाव हो उसे देव भी नमन करते हैं ।

सप्पु रिसहो कि बहुगुणहि पज्जत्त दोहि णराहिव ।
तडि विप्फुरणु व रोसु मणे मित्ती पहाणरेहा इव ।।

—सत्पुरुष के बहुत गुणों से क्या ? उसके दो ही गुण पर्याप्त हैं—उसके मन मे रोष बिजली की चमक के समान क्षणिक और मैत्री पत्थर की रेखा के समान चिर स्थायी होती है ।

णवइ सव्वया वि जमहा बालु जुवाणु विद्धु णउ छुट्टइ ।
अवसप्पिणीए विसेसेण जल बुब्बोवमु जीविउ वट्टइ ।।

—सर्वदा ही यम से कोई नहीं छूटता चाहे वह बाल हो युवा हो या वृद्ध । विशेषत इस अवसर्पणी काल मे जीवन पानी के बुदबुदे के समान क्षण भगुर होता है ।

त पेम्मु ज ण पयडेइ देमु, त भोयणु ज मुणि मुत्तसेसु ।
सा पण्णा जा ण करेइ पाउ सो धम्मु जत्थ णउ डमनाउ ।
सो मक्कइ जो जिणवरु थुणेइ, सो सूरउ जो इदिय जिणेइ ।

—प्रेम वही, है जो द्वेष प्रकट न करे। भोजन वही है जो मुनि आहार से शेष रहे। वही प्रज्ञा है, जो पाप न कराये। वही धर्म है, जिसमें दंभ भाव न हो। वही सत्कवि है जो जिनेन्द्र का स्तवन रचे और वही शूर है जो इन्द्रियों को जीते।

जो पुणु पंच वि इंदियइं पसरंतइं ण धरेइ।
सो अंगाराय कड्ढणउ, सइं हत्थेण करेइ॥

—जो अपनी पंच इंद्रियों के प्रसार को नही रोकता, वह स्वयं अपने हाथ से अंगार खीचने का काम करता है।

तिणकट्ठेहिं सिहि तीरि णिसय सह सहिं सायरु।
ण लहइ तित्ती जिह तिह जीउ वि भोयति सायरु॥

जिस प्रकार अग्नि तृण व काष्ट से तथा सागर लाखो नदियों से तृप्त नही पाता, उसी प्रकार तृष्णातुर जीव भोगों से सन्तुष्ट नही होता।

पंडिय चिंतइ तं सुणेवि, इय गोहगाहु किर सुम्मइ।
इत्थीगाहु तसु वि गरुउ, जे सयरायरु जगु दुम्मइ॥

—सुनकर पडित विचारते हैं—इस संसार में 'गोह' की पकड सुनी जाती है, किन्तु स्त्री का ग्राह (हठ) उससे भी बड़ा है; जिसके कारण समस्त सचराचर जगत दुःखी है।

सप्पुरिसहं उवसमु पर जुत्तउ।
सुद्ध संहाउ सुमणु उवहसणहिं, णिच्च वि णिंदिज्जतउ पिसुणहिं।
छारें दप्पणु व्व उब्भासइ, णिम्मलु अहिययरं पडिहासइ।

—सत्पुरुष के उपशम ही परम योग्य है। वह ऐसा शुद्ध स्वभाव और स्वच्छ मन होता हैं, कि दूसरो के उपहास से व दुर्जनो की निन्दा से क्षार द्वारा दर्पण के समान उद्भासित होता हैं।

विणासी सरीर हो जाणिवि थत्ति, हियत्थे पयत्तणु कीरइ झत्ति।
अहो जण धम्मु पईउ जि लेहु, वलेवि म जम्मणकूव पडेहु॥

—शरीर की स्थिति को विनश्वर जानकर झट पट आत्म हित में प्रयत्न करना चाहिये। हे मनुष्यों! धर्म रूपी प्रदीप को लो, जिससे पुनः जन्म रूपी कूप मे न गिरो।

—इस प्रकार मुनिवर नयनन्दि ने अपने सुदंसण चरिउ' मे पदे-पदे पाठको के हितार्थ' 'सुचिन्तन' दिये है जो चिन्तनीय, मननीय और आचरणीय हैं। □

प्राचार्य
राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय
महापुरा (जयपुर)

हरषचंद की श्रीमहावीर–भक्ति

डॉ० गगाराम गर्ग
भरतपुर

सत ग्रौर वैष्णव भक्तो के समान रत्नकीर्ति, कुमुदचन्द्र, बनारसीदास से लेकर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे ग्राविर्भूत पाश्वदास तक हिन्दी पद' लेखन की चार सौ वर्ष की समृद्ध परम्परा रही है। जैन पद साहित्य के विवेच्य विषयो मे ग्रध्यात्म, नीति तत्त्व एव राजुल-विरह की ग्रपेक्षा भक्ति भावना ग्रधिक मुखरि हुई है। जैन पद साहित्य मे भक्ति भावना विशिष्ट तीर्थंकर के प्रति कम किन्तु सामान्य रूप मे जिनेन्द्र भगवान् के प्रति ग्रधिकाशत ग्रभिव्यक्त हुई। फिर भी तीन महाकवियो द्यानतराय, बुधजन, ग्रौर पार्श्वदास के काव्य मे क्रमश तीर्थंकर नमिनाथ, तीर्थंकर चन्द्रप्रभु ग्रौर तीथकर पाश्वनाथ के प्रति एक निष्ठ भक्तिभाव द्रष्टव्य है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के प्रति सभी भक्त कवियो ने कतिपय पदो मे ग्रपना भक्तिभाव ग्रवश्य प्रदर्शित किया। ग्रवशिष्ट तीर्थंकरो मे भगवान् महावीर ग्रौर तीर्थंकर शातिनाथ के ग्रलावा ग्रन्य तीर्थंकरो के प्रति ग्राराध्य-भाव फुटकर पदो में ग्रपेक्षाकृत कम ही ग्रभिव्यक्त हो पाया हैं। 'चौबीसी स्तवन' परम्परा इस दृष्टि से ग्रपवाद है।

ग्रद्यावधि ग्रचर्चित जैन कवि हरषचद के भक्तिकाव्य की सबसे बडी विशेषता ही यह है कि 'चौबीसी' के ग्रतिरिक्त लिखे गए उनके ग्रन्य बीसियो पद तीर्थंकर महावीर की ग्राराधना मे समर्पित हुए है। इन पदो मे भगवान् महावीर के प्रति उनका 'वात्सल्य' ग्रौर 'दास्य' दोनो भाव समाविष्ट हैं।

वात्सल्य भाव से ग्रपने इष्ट की ग्राराधना करने वाले सूरदास ने श्रीकृष्ण की बाल्यलीलाग्रों का व्यापकता से वर्णन किया है। सभी जैन भक्तो ने तीर्थंकरो के जन्मोत्सव के पद ग्रवश्य लिखें किन्तु न्यून मात्रा मे। हरषचद ने महावीर के जन्मोत्सव मे ग्रायोजित मगल गान वाद्यवादन, नृत्य देवागनाग्रो का उत्साह भरा सेवाभाव इस प्रकार चित्रित किया है—

> ग्राज महोछव रग रलीरी।
> जायो सुत त्रिसला दे रानी कामत पूरण काम कलीरी।
> ग्रासभि सिणगार सकल सुर वनिता, ग्रपनै ग्रपनै मेल चली री।

आवत सिद्धारथ के अंगन, पूरत मोतीन चौक पुरी री।
इन्द्र हुकम करि धनद पठायो, सब वसुधा धन धान्य भरी री।
कनक रजतमणि पंच वरण के, कुसुम वधेरत गली गली री।
इद्राणी मिली मंगल गावै, नाचत नाटक सुर कुमटी री।
बाजत गुहिर सबद सुर दुंदहि, वीरता बेण मृदग वली री।
जै जै कार भयो तिहुं जग मैं, व्याध विथा सब विपत टली री।
'हर्षचन्द्र' जन्म्यो प्रभु मेरौ, मन की आसा सफल फली री।

श्री महावीर की बाल्य छवि बड़ी मनोहर है। कचन जैसा ज्वाजल्यमान वर्ण, कमल के समान नेत्र, प्रीतिभरे तुतलाते वचन–सभी आकर्षक है। रत्न जड़ित और स्वर्ण से निर्मित, नूपुरों की ध्वनि, तथा मौक्तिक माल आदि आभूषण तो लुभावने हैं ही, पृथ्वी पर डिगमगाते पैरो से चलने के प्रयत्न ने भक्ति की आंखों को इतना बांध रखा है कि छुटकारा मिलने की संभावना नही दिखती—

माई मेरो मन तेरो नंद हरै।
कंचन वरन कमल दल लोचन, निरखत नैन ठरै।
पंच वरण मनहरण धरण परि, ठम ठम पाउ धरै।
रतन जड़ित कंचन घूंघरियो, रण झणकार झरै।
हुल फल गत मुगताफल माला, प्रीति वचन उच्चरै।
मानूं चूल हिमवान सिषर तै, गंग प्रवाह विरै।
धन त्रिसला दे भाग्य तिहारो, तु तिहुं भुवन षिरै।
तीन लोक के नायक तेरै, अगन मैं विचरै।
श्री वर्द्धमान जिनंद की मूरति, विन देषै न सरै।
'हर्षचंद' प्रभु वदन विलोकति, सब ही काज सरै।

श्री महावीर के जन्मोत्सव के संस्कार मे मोतियो से चौक पूरे जाते है तथा मंगल-मय वधाये गाए जाते हैं। केसर और चदन से सुगन्धित जल से उनका पक्षाल किया जाता है। हरषचंद के नेत्र इन दृश्यों को देखकर प्रफुल्लित हो जाते हैं—

बाजत रंग वधाई नगर में।
जय जयकार हुई जिन शासण, वीर जिनंद की दुहाई।
सब सखियन मिलि मंगलगावै, मोतीयन चौक पुराई।
केसर चदन भरीय कचोली, प्रभुजी कूं करत न्हवाई।
आज खडे हम प्रभुजी के ध्यान ने, मेरे साहिब के सघाते।
'हरषचद' प्रभु दरसण पायो, विकसत रहे दोय नैनां।

सगुणभक्तो ने अपने आराध्य देव राम और कृष्ण दोनो के रूप, रंग, देह यष्टि और भाव-पूर्ण मुद्राओं के अतिरिक्त उनकी जन्म स्थली, तथा कुल के प्रति अपना सम्मान भरा अनुराग प्रदर्शित

किया है। उसी परम्परा मे हरपचद ने श्री महावीर की छवि अकित करते हुए उनसे दु ख दूर करने की प्रार्थना की है—

मन मा्यो श्री महावीर मेरो मन मा्यौ।
सिद्धारथ सुत स्वामीजी प्रभु त्रिसलानदन वीर।
क्षत्री कुल मे जनमीया हो सुर गिरधर सम धीर।
बारस बहोतर ग्राउगो हो लछन पग सो कीर।
सात हात तनु दीग्तो हो, कचन वरन शरीर।
काश्यप कुल उजवाल के प्रभु पहुता भव जल तीर।
सासन नायक सुरतरु हो भजे भव भय भीर।
'हरपचद' के साहिबा तुम, दूर करो दुख पीर।

अष्ट कमदल को जीतने वाले महावीरजी का गुणस्तवन करते हुए हरपचद उन्हें परम हितैषी मानते हैं। श्रेणिक को तीर्थंकर पद देना मेघकुमार को उपदेश देकर विरक्ति की ओर प्रेरित करना तथा अपने विरोधी मुनि को गणधर का श्रेष्ठ पद देना महावीर भगवान की उदाराशयता के द्योतक है। हरपचद का स्पष्ट कथन है—

नाही रे कोई जिन जी सो मीता।
वाद काज मुनि गौतम आये, ताहू कू गनधर कीता।
अपनो सेवक जानि श्रेणिक कू तीर्थंकर पद दीता।
दे उपदेश पडत भव जल तैं मेघकुमार ऋप लीता।
जिन ध्याये तिन शिव सुप पाए कोउ न गया रीता।
सिद्धारथ भूपति के नदन अष्ट करम दल जीता।
श्री वद्ध मान जिनद जगत मैं ग्रैसो कोउ न सुनीता।
हरषचद ग्रैसे प्रभु ज्या के सोई परम पुनीता।

सभी भक्त कवि ग्रौर विरक्ति मार्ग पर ग्रारूढ सतों के भक्तिभाव का लक्ष्य ग्राराध्य की सेवा मे निरन्तर सलग्नता ही रहा है। हरपचद भी करोडो सूर्यों के समान छविमान तथा ग्रानदनिधान तीर्थंकर महावीर से उनकी पाद सेवा की ही याचना करते हैं—

भेटे वीर जिनद री पावापुर मे प्रभु भेटे।
सिद्धारथ कुल कमल विकासन, उदयो ज्ञान जिनदरी।
कोटिक भानु समान अग छवि ग्रानद का चद।
पद पकज निस वासुर प्रभु के सेवैचौंसठ इद।
दीनदयाल दया नित कीजे चौवीस मा जिन चद।
चरण कमल की सेवा चाहै हरष भरी हरषचद।

तीर्थंकर महावीर के प्रति अधिक निष्ठावान हरषचद ने अपनी 'चौबीसी' रचना मै विलावल, विभास, गूजरी, आसावरी, रामकली. जैत श्री. ईमन, नट और जैजैवन्ती रागों में सभी तीर्थंकरों के प्रतिश्रद्धाभाव प्रदर्शित किया है। तीर्थंकर सुमतिनाथ के प्रति भक्ति निवेदन करते हुए हरपचंद का दैन्य भाव भी परिलक्षित होता है—

प्रभुजी तुम तारक नाम धरयो।
तो तारयो मोहि चाहिये।
मो सो पतित न या जग में कोइ, दूजो और न लहिये।
तुम्ह प्रभु पतित उधारन तारन, अपनो विरुद निवहिये।
असौ कौन दयाल जगत मैं, जा के द्वारे जइये।
जों प्रभु तुम अब मोहि बिसारो, तो काकौ ह्वै रहियै।
सुमति जिनेसुर साहिबजी सुं, बहौत कहा लूं रहियै।
'हरषचंद' सेवग की लज्या, बांह गहे की चहिये।

जैन भक्ति परम्परा में प्रचुरता से उपलब्ध वैधी भक्ति के प्रमुख तत्त्व 'दर्शन' का हरषचंद के भक्तिभाव मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। इक्ष्वाकु वंश मे अवतीर्ण चन्द्रप्रभु उज्ज्वल वर्ण, मुख शोभा और नख-काति के 'दर्शन' के लिए हरषचंद की ललक द्रष्टव्य है—

रहत नयन ललचाने दरस कौ।
चंद्र प्रभु के मुप की सोभा, देषत नाहिं अघाने।
जाके तन की आकृति आगैं, कोटि दिनंद दुराने।
प्रभु पद नख कौ रूप विलौकित, केतक कोमल जाने।
महासेन पिता लछमरण माता, सशि लछरण ठहरांनै।
दस लाष पूर्व आयु दे दसै, धनुष सरीर प्रमांणै।
चदपुरी अवतार लियौ जिन, कुल इक्ष्याग कहाने।
उजल वरन तरन अर तारन, जगत जंतु सुषदानै।
दोषन सहित देव हैं जेतै, मेरे मन नहिं मानै।
'हरपचद' के साहिव तुम ही, हम तुम हाथ विकांने।

संख्यात्मक दृष्टि से अधिक पद साहित्य न मिल पाने पर भी अपने भाव-गाम्भीर्य के कारण श्री महावीरजी के प्रति अधिक निष्ठावान 'हरपचद' श्रेष्ठ भक्त कवि हैं। उनके अधिक पद हो सकने की पर्याप्त सम्भावना है।

समयसार की एक रहस्य पूर्ण गाथा

प्रकाश हितैषी शास्त्री

समयसार ग्रथ आचाय कुदकुद की सर्वाधिक मननीय आध्यात्मिक रचना है जो भेद विज्ञान प्राप्त करने मे प्रमुख साधन है। जिस भेद विज्ञान की महिमा गाते हुए आचाय अमृतचन्द ने कहा है—

भेद विज्ञानत' सिद्धा सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥ 13 ॥

जो आज तक सिद्ध हुए हैं वे सब भेद विज्ञान के बल से सिद्ध हुए हैं, और जो कोई आज तक कमबद्ध है वे सब भेद विज्ञान के अभाव से ही बधे हैं।

इस समयसार मे नवतत्वो को जानने का जो प्रयोजन है उसका उल्लेख आचार्य कुदकुद ने 13वी गाथा मे रहस्यपूर्ण ढग से किया है। वह गाथा इस प्रकार है—

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपाव च।
आसवसवरणिज्जरबधो मोक्खो य सम्मत्त ॥ 13 ॥

भूतार्थनय से ज्ञात जीव अजीव और पुण्य, पाप तथा आश्रव, सवर, निर्जरा, बध और मोक्ष ये नव तत्व सम्यक्त्व है।

इस गाथा मे नवतत्वो को जानने को सम्यग्दशन कहा है, जबकि आचार्य कुदकुद के प्रमुख शिष्य उमास्वामी ने तत्वार्थ सूत्र मे कहा है—तत्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम् ॥ 2॥

साततत्वो का श्रद्धान करना सम्यग्दशन है। यहा विचारणीय तथ्य यह है कि उमा स्वामी ने सात तत्त्वो के श्रद्धान करने को सम्यग्दशन कहा है तव आचाय कुदकुद ने सात तत्त्वो के जानने को सम्यग्दशन कहा है और वह भी भूतार्थनय (परम शुद्ध निश्चय नय) से जानने को कहा है। जबकि परम शुद्ध निश्चय का विषय शुद्ध आत्मा है। नवतत्व का भेद तो व्यवहार नय में

हैं। परम शुद्ध निश्चय नय अखण्ड स्वभाव को ही विषय बनाता है। अतः यहां शंका उपस्थित हो सकती है कि जब भूतार्थनय का विषय ही नवतत्त्व नही है, तब भूतार्थनय नय से नवतत्व को जानने को क्यों कहा है ? दूसरी बात यह है कि इन नवतत्वों का श्रद्धान करना क्यों नहीं कहा है ?

इस शंका का आभास आचार्य अमृतचंद को था, अतः उन्होंने इस गथा के पूर्व ही इस गाथा के रहस्य को खोलते हुए अपने कलश में कहा है—

> एकत्वे नियतस्य शुद्ध नयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
> पूर्ण ज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यांतरेभ्यः प्रथक् ।
> सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयं
> तन्मुक्त्वा नवतत्वसंतति मिमामात्माय मे कोस्तु नः ॥ 6 ॥

इस आत्मा को नव तत्त्वों से भिन्न देखना (श्रद्धान करना) ही सम्यग्दर्शन है, यह आत्मा अपने गुणपर्यायों में व्याप्त रहने वाला है और शुद्धनय से एकत्व रूप से निश्चित किया गया है तथा पूर्ण ज्ञान धन है। एवं जितना आत्मा है उतना ही सम्यग्दर्शन है। इसलिए आचार्य कहते हैं नव-तत्व की परिपाटी को छोड़कर यह एक आत्मा ही हमको प्राप्त हो।

इस कलश को पढ़ने से समाधान मिल जाता है कि इन नव तत्वों को जानकर एक आत्मा को ही प्राप्त करना है। क्योंकि वह मेरा आत्मा इन नव तत्वों के भीतर ही प्राप्त होगा। इन नव तत्त्वों की श्रद्धा करने को इसलिए नही कहा है, क्योंकि श्रद्धा पूज्य के प्रति होती है और पूज्य वह होता है जो सर्वाधिक हितकारी हो, और हितकारी वही कहलाता है, जिससे सुख रूप अपने प्रयोजन की पूर्ति हो। अतः जीव (जाननेवाली ज्ञान की पर्याय) अजीव, आश्रव, बध, संवर निर्जरा और मोक्ष ये नव तत्व के आश्रय से हमारे प्रयोजन की पूर्ति नहीं हो सकती है। क्योंकि अजीव में सुख नाम का गुण है नही। आश्रव बध दुख रूप ही हैं। सवर निर्जरा तत्व सम्यग्दष्टि चतुर्थ गुण स्थान वर्ती से लेकर आचार्य उपाध्याय और साधु परमेष्ठी हैं। किन्तु वे भी हमें सुख नहीं दे सकते है। तथा अरहंत सिद्ध परमेष्ठी मोक्ष तत्व हैं, वे भी अनंत सुख के धनी होकर भी हमें रंचमात्र सुख नही दे सकते हैं।

इनके अतिरिक्त एक जीव तत्व और भी है, जिसका परम पारिणामिक भाव (जीवत्वभाव) ध्रवतत्व, कारण समयसार, कारण परमात्मा, निजदेव आदि नामो से आगमो मे उल्लेख मिलता है। जिसको आचार्य अमृतचंद ने कहा है—

> अतः शुद्धनयायत्त प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत् ।
> नवतत्व गतत्वेपि यदेकत्वं न मुञ्चति ॥ 7 ॥

तत्पश्चात् शुद्ध नयके आधीन जो भिन्न आत्मज्योति है, वह प्रकट होती है, जो नव-तत्वों में रहकर भी अपने एक रूप को नही छोड़ती। अर्थात् वह आत्म ज्योति इन नवतत्व रूप नही होती है।

इससे निर्णित होता है ये नवतत्व जानने योग्य हैं क्योंकि प्राप्त करने योग्य स्वतत्व आत्मा इन नव तत्वों मे ही छिपा है। अत ये नव तत्व ज्ञान के ज्ञेय तो हैं, ध्यान के ध्येय और श्रद्धा के श्रद्धेय नही है। जो ध्यान करने योग्य नहीं वह श्रद्धा करने योग्य भी नहीं होता है।

समयसार निजरा अधिकार मे धर्म को भी परिग्रह कहा है (गाथा 210) रत्नत्रय को धम कहा है अत रत्नत्रय, सम्यग्दशन और मुक्ति की इच्छा परिग्रह है क्योंकि आत्म तत्व को छोडकर ये सब पर तत्व हैं। पर व तु की इच्छा करना परिग्रह सज्ञा ही तो है।

समयसार की ग्यारहवीं गाथा में कहा है कि निश्चयनय का आश्रय करने वाला सम्यग्दृष्टि होता है। निश्चयनय के आश्रय का मतलब है निश्चयनय के विषयभूत त्रिकाल शुद्ध आत्मा का आश्रय करने वाला सम्यग्दृष्टि होता है। निश्चयनय आत्मा को किस स्वरूप मे देखता है इसका उल्लेख करते हुए आचाय अमृतच द्र कहते हैं—

आत्मस्वभाव परभावभिन्नतापूर्णं मद्यात विमुक्तमेकम्।
विलीन सक्ल्पविकल्पजाल प्रका शयन शुद्धनयोभ्युदेति ॥ कलश 10 ॥

परभाव से भिन्न, परिपूर्ण आदि अतरहित एक सकल्प विकल्प से शू य आत्म स्वभाव को प्रकट करता हुआ शुद्ध नय प्रकट होता है।

शुद्ध निश्चयनय आत्मा को परिपूर्ण और अखण्ड देखता है। ऐसा आत्मा ही सम्यग्दशन का विषय है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा को परिपूर्ण देखता है। अत जो परिपूर्ण अपने को देख रहा है, उसे रत्नत्रय धम सम्यग्दशन या सुख की आवश्यकता रह जाती है क्या ? यदि उसे ये धर्मादि चाहिए है तो वह अपने को अपूर्ण मान रहा है। यह अपूर्णता और पूर्णता पर्याय में ही होती है। द्रव्यस्वभाव तो पूर्ण ही है।

अत सम्यग्दर्शनादि की इच्छा करने वाले अपने को पर्याय ही मानते हैं। क्योंकि पर्याय को ही पूर्ण बनने की आवश्यकता है। ऐसा पर्याय को अपना सवस्व समझने वाला पर्यायदृष्टि वाला मिथ्यादृष्टि ही है।

जिसमे कमी हो वही किसी वस्तु की इच्छा करेगा। अपने को पूर्ण मानने वाले जीव को किसी की भी आवश्यकता नहीं है। सम्यग्दृष्टि के निकांक्षित अग होता है। अत उसके किसी की भी आकांक्षा (इच्छा) शेष रहती ही नही है। यदि वह किसी की भी इच्छा करता है तो वह बूद को समुद्र मान रहा है। क्योंकि वह द्रव्य के अनतवें अश को अशी मान रहा है। पर्याय बाह्य तत्व होने से बाह्य तत्व की चाह करने वाला बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है।

नियमसार टीका मे पद्मप्रभ मल धारी कहते हैं—

आत्मध्यानादपरमखिल घोर ससारमूल
ध्यानध्येय प्रमुखसुतप कल्पनामात्ररम्य ।

बुद्ध्वा धीमान् सहज परमानंदपीयूषपूरे
निर्मज्जन्तं सहजपरमात्मानमेकं प्रपेदे ।। 123 ।।

आत्मध्यान के अतिरिक्त अन्य सब घोर संसार का मूल (जड़) है। ध्यान ध्येयादि सुतप. कल्पनामात्र में सुंदर है। ऐसा जानकर बुद्धिमान परमानंद पीयूप के पूर में डूबते हुए एक निज परमात्मा का आश्रय करते है।

ध्यान और ध्येय का भी विकल्प व्यवहारनय का विषय है। अखण्ड द्रव्य के भेद करना अथवा असंयोगी का संयोग से कथन करना व्यवहारनय है। व्यवहारनय का आश्रय लेने से राग की उत्पत्ति होती है, क्योंकि इसमें मन, वचन, काय का प्रयोग होता है। तथा मन वचन काय के प्रयोग से आश्रव होता है। क्योंकि कायवाङ्मनः कर्मयोगः /6-1/स आश्रवः/6/2/त. सूत्र/मन वचन-काय की क्रिया को योग कहते है, वह योग ही आश्रव है।

अतः जो सम्यग्दर्शन, रत्नत्रय या मुक्ति प्राप्ति की इच्छा करते है, उनको ये कभी प्राप्त नही होंगे, क्योंकि उनकी अभी पर्याय बुद्धि है। ये सम्यग्दर्शनादि गुणों की पर्यायें हैं। ये आत्मा के प्राप्त होने पर तद् तद् गुणो की पर्यायें सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। पद्मनंदी आचार्य कहते हैं—मोक्ष की इच्छा करने वालो को मोक्ष की प्राप्ति नही होती है। क्योकि इच्छा (संज्ञा) परिग्रह है। परिग्रह भाव तो मोक्ष मार्ग मे बाधक ही है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने धर्म को भी परिग्रह कहा है—रत्नत्रय धर्म है। अतः रत्नत्रय धर्म की इच्छा करने वालों को रत्नत्रय धर्म की प्राप्ति नही होगी। क्योकि रत्नत्रय पर्यायें है। त्रिकाली आत्मतत्व को छोड़कर पर्यायो को परतत्व, बहिर्तत्व, क्षणिक, व्यवहार नय का विषय, द्रव्यस्वभाव से भिन्न मात्र ज्ञेयतत्व माना है। वे श्रद्धेय या उपादेय और ध्येय नही है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है—

एको में सासदो अप्पा णाणदंसण लक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे सजोग लक्खणा ।। 102 ।।

(—नियमसार)

ज्ञानदर्शन स्वभाववाला शाश्वत एक आत्मा मेरा है; शेष सब संयोग वाले भाव मुझसे बाह्य है।

जिनका वियोग हो जाता है, वे सब संयोगी भाव हैं। शुद्ध अशुद्ध पर्यायें समयवर्ती है, उनका प्रति समय वियोग होता रहता है, नई पयायें प्रतिसमय आती रहती हैं, अतः वे सब द्रव्य स्वभाव से भिन्न हैं और संयोगी हैं।

इसी को स्पष्ट करते हुए आ पद्मप्रभ मलधारी देव कहते है—

अथ मम परमात्मा शाश्वतः कश्चिदेकः
सहज परम चिन्तामणि नित्य शुद्धः।

निरवधिनिजदिव्य ज्ञानदृग्भ्यां समृद्ध
किमिह बहुविकल्पैर्मेफल वाह्यभावे ॥ 138 ॥

(— नियमसार टीका)

मेरा परमात्मा शाश्वत है द्रव्यदृष्टि से कथंचित एक है, सहज परम चैतन्यचिन्तामणि है और अपने अनत दिव्यज्ञानदर्शन से समृद्ध है ऐसा है तो फिर बहुत प्रकार के वाह्यभावों का क्या फल है ?

अध्यात्म शास्त्रो मे कहा है- द्रव्यदृष्टि से सम्यग्दृष्टि और पर्यायदृष्टि सो मिथ्यादृष्टि। पर्याय को लक्ष्य में रखने वाला मिथ्यादृष्टि है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने यहा तक कहा है—कि अरहत भगवान को भी सब प्रथम द्रव्यदृष्टि से देखो पश्चात् गुणो से देखो और अत में पर्याय से देखो। पश्चात् उनके द्रव्यगुण पर्याय को अपने स्वभाव से मिलान करे तो जीव आत्मज्ञानी हो जाता है और उसका मिथ्यात्व नष्ट हो जाता है।

अरहतभगवान को द्रव्यदृष्टि से देखोगे तो दोनो सभी आत्माए समान रूप से जीव द्रव्य रूप अनुभव मे आयेंगी। गुणों से देखोगे तो दोनों, सभी अनत गुणो के धनी दिखेंगे। और पर्यायों से तो मोती की माला की तरह त्रिकालवर्ती पर्यायो को अभेद करके देखो तो चैतन्य स्वभाव का ज्ञान हो जाता है। यहा अरहत भगवान को भी द्रव्यदृष्टि की प्रधानता से देखने को कहा है क्योंकि आत्मनिर्णय मे यही दृष्टि साधन बन सकती है पर्यायदृष्टि तो बाधक ही होगी।

श्रीमद रायचद ने कहा है—'जो प्रत्येक आत्मा मे परमात्मा को देखता है वही धर्मात्मा है।' यहा प्राणी मात्र को एव परमात्मा को भी द्रव्यदृष्टि से देखने को कहा है। क्योकि द्रव्यदृष्टि से देखने पर रागद्वेष का अभाव हो जाता है। जब द्रव्यदृष्टि मे सभी आत्मायें समान है तो कौन अपना और कौन पराया होगा ? सबमे कारण परमात्मा दिखेगा तो फिर राग द्वेष का क्या काम रहा ?

जब द्रव्यदृष्टि जागृत हो जाती है तभी सम्यग्दर्शन रत्नत्रय और मोक्ष की प्राप्ति होती है। बिना द्रव्यदृष्टि के भेद विज्ञान की प्राप्ति नहीं होती और भेद विज्ञान के बिना सम्यग्दर्शनादि रूप धर्म की प्राप्ति नही हो सकती है। भेदविज्ञान का मतलब है—द्रव्यकर्म भावकर्म, नोकर्म और शुद्ध अशुद्ध पर्यायों से अपने को भिन्न देखना। क्योकि द्रव्य स्वभाव इनसे भिन्न ही है, तुम मानते कुछ भी रहो किन्तु द्रव्य अपना स्वभाव कभी नहीं छोडता है।

(535 गाधीनगर दिल्ली)

उद्बोधन

लौकिक उपलब्धियों में समाहित,
भानसी पर्याय के चरम मूल्य,
प्रयोजन या अर्थ,
उद्देश्य और लक्ष्य,
जैसे—
किसी तिलिस्म में पलता—
एक बोधहीन, मायावी भ्रम,
खोया हुआ सत्य,
भटका हुआ तथ्य,
एक भौतिकवादो कत्थ्य।
महावीर !
महावीर का जीवन,
चिन्तन और दर्शन,
ज्ञान और मार्ग,
दिखाता हूँ—
अपरिमित में परिमित का यथार्थ
जीवन का चिरंतन सत्य,
मात्र कहता है करने को,
'स्व' का अनुभव,
आत्मानुभूति का ज्ञान,

ग्रौर—
'स्व' को
'स्व' मे,
सतत्,
स्वभेव रमजाने की प्रवृति,
वृत्ति,
जो यदि,
ग्रक्षर जितनी भी हो जाये तो—
जैसे—
विन्दु से सिन्धु,
ग्रणू से स्कन्ध,
ग्रौर महा से महान वनता है,
रे ग्रकिंचन—
ये ग्रात्मा भी,
ठीक वैसे ही,
'ग्रात्मा से' 'परमात्मा' वनता है ।
पुनश्च मनुष्य जन्म से नही,
कर्म से महान वनता है ।

विजय कुमार सोनी
२२४२, गणगौरी वाजार
जयपुर ।

चतुर्थ खण्ड

विविध

भगवान महावीर का दिव्य सन्देश

1 राग और द्वेष ही ससार के जनक हैं। इनकी निवृत्ति ही ससार से छूटने के उपाय हैं।

2 शरीर अनित्य है, वैभव शाश्वत नही है। मृत्यु समीप मे है। अत धर्म का सग्रह करना श्रेयस्कर है।

3 यदि यह आत्मा परावलम्बन को छोडकर अपनी आत्म ज्योति की ओर दृष्टि करले तो यह अनाथ न रहकर त्रिलोकीनाथ बन जावे।

4 ससार मे शत्रुओ की वृद्धि करने की औषधि है, अन्य की निन्दा करना।

5 जिसके हृदय मे निर्मल आत्मा का वास नही होता उसे शास्त्र, पुराण एव तपश्चर्या निर्वाण प्रदान नही कर सकती है।

6 यह आत्मा ही तो परमात्मा है। कर्मोदय के कारण यह आराध्य के स्थान पर आराधक बनता है।

7 इस आत्मा का प्राण "ज्ञान" है जो अविनाशी रहने के कारण कभी भी विनष्ठ नही होता—इस कारण आत्मा का भी कभी मरण नही होता।

8 जो व्यक्ति कष्ट को सबसे बुरी चीज मानता है वह वीर नही हो सकता तथा जो सुख को सर्वश्रेष्ठ मानता है वह सयमी नही बन सकता।

(दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा प्रसारित)

मत्री कार्यालय

दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी
महावीर भवन, सवाई मानसिंह हाईवे,
जयपुर–302 003

दूरभाष 73202

क्षेत्र कार्यालय

दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी
पो० श्री महावीरजी–322 220
(जिला सवाई माधोपुर) राजस्थान

दूरभाष 223 व 239

भगवान महावीर की अजमत

जोश महिलावादी
सौजन्य : **श्री मदनलाल जैन,** बम्बई

छायी हुई अनवारे[1] हकीकत कोई देखे,
भगवान महावीर की अजमत[2] कोई देखे।
मोहताज के हक में यह मुरब्बत[3] कोई देखे,
लाखों ही लुटाये यह सखावत[3] कोई देखे।
ताजीम को झुकती रही शाहों की भी गरदन,
इक खाक नशीं की यह फजीलत[4] कोई देखे।

वीराने में, बस्ती में, बयाबां में चमन में,
इरफान[5] की लुटती हुई दौलत कोई देखे।
दुश्वार मज़ामीन के इशारे कोई समझे,
बारीक इशारों की नजाकत कोई देखे।
फाको ही में छह सात महिनों की समाधी,
इस नाज के पाले की रियाजत[6] कोई देखे।
चींटी भी कोई लुफ्त ओ करम से नहीं महरूम,
यह दिल यह हमागीर[7] मुहब्बत कोई देखे।

हक हक[8] ही मुखालिफ ने कहा हुस्ने बयां पर,
बातिल[9] का यह इकरारे सदाकत[10] कोई देखे।
हर नक्श जमाली[11] तो हर अंदाज जलाली,[12]
सीरतगरे मानी की यह सूरत कोई देखे।
अय जोश पढे जाओ यह मिसरा सरे महफिल,
भगवान महावीर की अजमत कोई देखे।।

1. प्रकाश 2. महानता 3. औदार्य 4. वडप्पन 5. ज्ञान 6. तपस्या
7. सर्व व्मापी 8. सत्य 9. मिथ्या 10. सचाई 11. सुन्दरता 12. प्रताप

नर से नारायण : महावीर

—मेघराज मुकुल

पीडाओ का विप पीकर जव, घाव मनुजता का गहराया।
महावीर! जलघर वन तुमने, दावानल का ताप बुझाया।।
ओ त्रिशला के वेटे! तुम थे, राज पुरुप की परम्परा मे—
किन्तु तुम्हारे भीतर हरदम, करुणा का सागर लहराया।।
त्याग दिया तुमने ऐश्वर्य, क्रान्ति को फिर सापेक्ष वनाया।
समता के प्रतीक वन तुमने, दीन-हीन का भेद मिटाया।।
रक्तपात का आज नया तूफान उठ रहा है भारत मे—
विवश जिन्दगी मे, उजली उमग का तुमने दीप जलाया।।
हे जिनेन्द्र तीर्थंकर, यह इतिहास तुम्हे पहचान गया है।
कैसे मानव वनता है भगवान, भेद यह जान गया है।।
सत्य अहिंसा की परिभापा, शब्दो तक है आज न सीमित—
इस आयुध से हिंसा की हिंसा होती, यह मान गया है।।
वीतराग! तेरा पुरुपार्थ, आत्म विजयी का पुण्य-समर्थन।
मगल की साघना सिद्धि-का, तू एकान्त आत्म-आराधन।।
वर्द्धमान! है भटक रहा यह विश्व आज-विप्लव-आघी मे—
रोको, यह विलास-वैभव का, ऐरावत कर रहा प्रवर्त्तन।।
धर्म-तत्व का अर्थ तुम्हारा, प्राणि मात्र का है आरक्षण।
तुम कहते, आत्मा-स्वतन्त्र, स्वीकार न करती कोई वघन।।
जो अपनी पहचान न करता, वह कुवेर अथवा भोगी है—
कर्मो से महान जो भी है, वह 'नर से नारायण' हर क्षण।।

जाति-भेद, कुल-भेद देश या प्रान्त-भेद हैं कृत्रिम वंधन।
रग भेद या वर्ण-भेद हैं, जीर्ण-चेतना के आलंबन ।।
महावीर ! तुम को डस पाई नहीं चण्ड-कौशिक की ज्वाला।
कील ठोंक कर, खुद बहरा हो गया, विदग्ध-समय का ग्वाला ।।
उन्मत्त हाथी सा परमाणु-युद्ध केवल है तेरे वश में।
इस विनाश-लीला का अंत, आज सभव तेरे अकुश में ।।
तू तो शिव है, ताण्डव-नृत्य तुम्हारा, हिसा-नाश करेगा।
शांति-क्रान्ति का तू अगुआ है, जीवन में विश्वास भरेगा ।।
हिंसा, हत्याचार, क्रूरता, परपीड़न संहार दहकते।
तेरी मृदु-मुस्कान सूघकर, हँस देते हैं फूल महकते ।।
अव भी तो तू जाग रहा है, सोता है कब, समय जानता।
तेरी चिंता में आँसू की गगा वहती, विश्व मानता ।।
सबका समाधान कारक तू, सर्व-समन्वय-युक्त, सहज मन।
स्थिति निरपेक्ष, बने सापेक्ष, यही तो स्याद्वाद है अनुपम ।।
यह सम्पत्ति, विपत्ति सदा है, यह सुख-बधन उत्पीड़न है।
है आनन्द अतिन्द्रिय शाश्वत, भोग-विलास वृत्ति है कुछ दिन ।।
महावीर ! आओ, समझाओ, भक्त तुम्हारे दिशाहीन हैं।
कुछ शोषण में जुटे हुए हैं, कुछ चरित्र में हीन क्षीण है ।।
कुछ करते हैं मात्र प्रदर्शन, करते कोई आत्म विज्ञान ।
थोड़े से है सत्य-निष्ठ जो, मौन, दुखी, असहाय, विवश-मन ।।
नकली चेहरे देशभक्त बन, लोकतत्र की हँसी उड़ाते।
शासक झूठे शब्द सजाकर, पग पग भ्रष्टाचार रचाते ।।
ये आए, वो गये, फर्क है सांपनाथ का, नागनाथ का।
जनता लुटी लुटी फिर माँगे, आशिष तेरे वरद-हाथ का ।।

महावीर की दिव्य ध्वनि का

—राजमल पवैया

महावीर की दिव्य ध्वनि का समयसार ही उत्तम सार।
यही कारण समयसार है यही कार्य समय का सार।।

पाप पुण्य का फल बधन है शुद्ध भाव से होता मुक्त,
शुद्ध भाव से जो सुदूर है वही जीव भव दुख सयुक्त,
अतरग बहिरग परिग्रह तजने का ही कर अभ्यास,
इसके बिना नही तू होगा साधु कभी भी कर विश्वास,
आगम के अभ्यास पूर्वक श्रद्धा ज्ञान चरित्र सँवार।
महावीर की दिव्य ध्वनि का समयहार ही उत्तम सार।।१।।

ध्यान रूप औषधि पीकर तू ले वैराग्य भाव का मत्र,
इन्द्रिय विषय कषाय जीतले यही मोक्ष पाने का तत्र,
जो अकषाय भाव के द्वारा सर्व कषायें लेगा जीत,
मुक्ति वधू उसको वर लेगी धर उर निश्चय सुदृढ प्रतीत,
निज मे ही एकत्व भावना भाकर अपना रूप निखार।
महावीर की दिव्व ध्वनि का समयसार ही उत्तम सार।।२।।

चिदानद भगवान आत्मा एक अखड स्वरुप महान,
इसके आश्रय बिन न कभी भी होता है शिव पथ निर्माण,
तीन काल तीनो लोको मे मुक्ति प्राप्ति का यही उपाय,
स्वपद प्राप्ति मे साधक केवल निश्चय रत्न त्रय सुखदाय,

जो व्रत में संतुष्ट हो गया वही भ्रमा करता संसार।
महार्वीर की दिव्य ध्वनि का समयसार ही उत्तम सार ॥३॥

यदि समता परिणाम नहीं है तो स्वभाव की प्राप्ति नहीं,
यदि स्वभाव की प्राप्ति नहीं तो फिर शिव सुख की व्याप्ति नहीं,
ज्ञान त्याग वैराग्य भावना ही तो है शिव सुख का मूल,
परका ग्रहण त्याग तो सारा निज स्व भाव के है प्रतिकूल,
जो स्वभाव में रत रहते हैं हो जाते हैं भव के पार।
महावोर की दिव्य ध्वनि का समयसार ही उत्तम सार ॥४॥

राग भाव को हेय जान कर उपादेय निज को ही जान,
सकल ज्ञेय ज्ञाता तू ही है निज ज्ञायक को ही पहिचान,
तू ही ज्ञाता तू ही दृष्टा तू अदृश्य है ज्ञायक रूप,
तूही सिद्ध शाश्वत ध्रुव है तूही है परमात्म स्वरूप,
अविनाशी है अजर अमर है रागद्वेष विरहित अविकार।
महावीर की दिव्य ध्वनि का समयासार ही उत्तम सार ॥५॥

शुद्ध आत्मा का एकत्व यही तेरा वैभव सुख रूप,
परसे तो अन्यत्व रूप है निज स्वभाव से शान्त स्वरूप,
शुद्ध भावना की उपासना ही है शिव कल्याण मयी,
यही मुक्ति का मार्ग शाश्वत यह शाश्वत निर्वाणमयी,
तू ही दर्शन ज्ञान वीर्य सुखमय अनंत गुण का भंडार।
महावीर की दिव्य ध्वनि का समयसार ही उत्तम सार ॥६॥

भगवान महावीर और चन्दन बाला

कविवर—हजारीलाल जैन 'काका'
सकरार (झांसी) उ प्र

वेश्या के बन्धन से चन्दन को लाये छुटा,
बोले सेठ सेठानी से पुत्री तुम्हे लाये हैं,
सुन्दर स्वरूप वाली लम्बे लम्बे केश वाली,
देख के सेठानी सोची सेठ भर माये हैं,

अवसर पाके सेठानी ने चन्दना को कैद किया,
नाई को बुला के सभी वाल कटवाये हैं,
हाथो हथ कडी पाव बेडी डाल कैद किया,
तीजे दिन मट्ठा कोदो खानें को दिलाये है,

कैद मे पडी हू नाथ कोई नही सुने बात,
आओ थाम लीजे हाथ देरी न लगाइये।
कई दिन हुये नाथ अन्न जल त्यागा तात,
दर्श विन न लूगी ग्रास दर्श देते जाइये।

द्रौपदी को चीर वाढो सीताजी को नीरवाढो,
मेरी वार हो रही है देरी क्यो वताइये।
तेरे विना मेरे वीर कौन हरे मेरो पीर,
हो रही अधीर आन वन्धन छुडाइये।

ज्यों ही महावीर प्रभु ध्यान मांहि लीन हुये,
करुणा भरी कानों में पुकार आई नारी की।
एक सुकुमारी नारी कैद मांहि बन्द पड़ी,
ध्यान मांहि भूली छटासारी दुखयारी की।

हाथ हथकड़ो पांव बेड़ी पड़ी भारी भारी,
सिर के काटे बाल ऐसी नारी की ख्वारी की।
बन्धन से मुक्त आज करना जरूर इसे,
इससे प्रभू जल्दी ही आहार की तयारी की।

जैसे आहार को विहार किया वीर प्रभू,
मन एक अनहोनी आकड़ी की आनली।
हाथों हथकड़ियां हों कैद मांहि आंसू झरे,
लूंगा मैं आहार उससे ऐसी ठान ठान ली।

क्षीण सी सुनी अवाज देख प्रभु जाके पास,
जकड़ी है कैद माहि सारी व्यथा जानली।
आंसू का देखा अभाव लौट चले उल्टे पांव,
आकड़ी निभानी थी जो अभी अभी आन ली।

चन्दना की वन्दना में भूल हुई कौन नाथ,
आके द्वार निराहार लौटे कहां जाते हो।
कर्मों की सताई हूं सताओ नहीं और नाथ,
दीन बन्धु होके आज दीनों को रुलाते हो।

बेड़ियों में जकड़ी खड़ी कैदखाने में हूं, पड़ी,
फिर भी इस अनाथनी का दर्द न घटाते हो।
अजन से तारे नाथ एक ही इशारे मांहि,
आज इस अनाथिनी को रोती छोड़े जाते हो।

चन्दना की सुन पुकार देखी आंसुओं की धार,
आये प्रभू लौट द्वार देरी न लगाई है।

ज्योही लेने को अहार अजुली कीनी तयार,
तभी अनहोनी कला देवो ने दिखाई है।

हथकडी वेडियो के हुये स्वर्ण आभूपण,
सिर पर हुये केश देख भीड चकराई है।
मट्ठा कोदो हुये खीर धन्य धन्य महावीर,
जय जय कार करे देव दुन्दुभी वजाई है।

धन्य प्रभू चन्दना की वन्दना पै गौर करी,
'काका' की भी वन्दना पै गौर फरमाइये।
मैं भी हू अनाथ नाथ कोई नही मेरे साथ,
दीन वन्धु फिर से दीन वन्धुता दिखाइये।

भूना प्रभू निज स्वभाव पर मे लग रहा है भाव,
करके कृपा कृपा सिन्धु मार्ग तो वताइये।
चन्दना की सुन पुकार दौडे आये जिस पुकार,
उसी भाति एक वार मेरे लिये आइये।

सफल महावीर जयन्ती

—गुलबचन्द जैन वैद्य
ढाना (सागर)

अहिंसा, सत्य, करुणा पर सही ढंग से अमल होगा,
जयन्ती वीर की सचमुच, मनाना तब सफल होगा।

(१)

अगर नवनीत का कोमल, हृदय अपना नहीं होगा,
अंकुरित बीज करुणा का, वहां कैसे उदित होगा?
देखकर दूसरों का दुख, दुखित गर मन नहीं होगा,
जयन्ती वीर की कैसे, मनाना तब सफल होगा?

(२)

वचन के बाण का भी घाव, कुछ छोटा नहीं होता,
और सब शीघ्र भरते है, किन्तु यह है बड़ा खोटा।
झूठ कर्कश को छोड़ वाणी मिष्ट ही बोलो,
जयन्ती वीर की बेशक, मनाना तब सफल होगा।

(३)

बिना पूछे किसी का धन, उठा लेना हुई चोरी,
कहा है प्राण दशवां धन, नहीं यह गप्प है कोरी।

कभी भी ख्याल चोरी का नही तुम स्वप्न मे लाना,
जयन्ती वीर की बेशक, मनाना तब सफल होगा।

(४)

रात दिन जोडने मे धन सदा जो व्यस्त रहते हैं,
जरूरी हो कही कितना, न कौडी खर्च करते हैं।
नही कुछ साथ जायेगा, पडा रह जायेगा यू ही,
न परहित मे खरच होगा, सफल वह धन नही होगा।

(५)

काम मद मोह माया मे, चित्त व्याकुल बना रहता,
धर्म का तरु मरुस्थल मे, कहा फिर पल्लवित रहता।
चित्त निर्मल बनाम्रो, बाढ सयम की लगाम्रो तो,
जयन्ती वीर की बेशक, मनाना तब सफल होगा।

(६)

घृणा हो पाप से लेकिन, न पापी से घृणा करना,
जो अपने ही किये दुष्कम का है भर रहा भरना।
यही है वीर का उपदेश, समता भाव ही धरना,
जयन्ती वीर की बेशक, मनाना तब सफल होगा।

महावीराष्टक

मूल : **पण्डित भागचन्दजी**
अनुवाद : **वीरसागर जैन**

जिनके चेतन में दर्पणवत् सभी चेतनाचेतन भाव।
युगपद् झलकें अंत-रहित हो ध्रुव-उत्पाद-व्ययात्मक भाव।।
जगत्साक्षी शिवमार्ग प्रकाशक जो है मानो सूर्य समान।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम (हम) हिय आवे नयनद्वार।।1।।

जिनके लोचनकमल लालिमारहित और चंचलताहीन।
समझाते हैं भव्यजनों को वाह्याभ्यन्तर क्रोध विहीन।।
जिनकी प्रतिमा प्रकट शांतिमय और अहो है विमल अपार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम (हम) हिय आवे नयनद्वार।।2।।

नमते देवों की पक्ति की मुकुटमणि का प्रभासमूह।
जिनके दोनों चरणकमल पर झुकते देखो जीव समूह।।
सांसारिक ज्वाला को हरने जिनका स्मरण वने जलधार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम (हम) हिय आवें नयनद्वार।।3।।

जिनके अर्चन के विचार से मेंढक भी जब हर्षितवान।
क्षण भर में बन गया देवता गुणसमूह और सुखनिधान।।
तब अचरज क्या यदि पाते हैं सच्चे भक्त मोक्ष का द्वार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम (हम) हिय आवें नयनद्वार।।4।।

तप्त स्वर्ण-सा तन है फिर भी तनविरहित जो ज्ञानशरीर,
एक रहे होकर विचित्र भी, सिद्धारथ राजा के वीर—
होकर भी जो जन्मरहित हैं, श्रीमन् फिर भी न रागविकार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम (हम) हिय आवें नयनद्वार ।।5।।

जिनकी वाणीरूपी गगा नय लहरो से हीन-विकार।
विपुल ज्ञानजल से जनता का करती है जग मे स्नान ।।
अहो आज भी इससे परिचित ज्ञानीरूपी हस अपार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम (हिय) आवें नयनद्वार ।।8।।

तीव्रवेग त्रिभुवन का जेता कामयोद्धा बडा प्रबल।
वय कुमार मे जिनने जीता उसको केवल निज के बल ।।
शाश्वत सुख शान्ति के राजा बन कर जो हो गये महान्।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम (हम) हिय आवें नयनद्वार ।।7।।

महामोह आतक शमन को जो हैं आकस्मिक उपचार।
निरापेक्ष बन्धु है, जग मे जिनकी महिमा मगलकार ।।
भवभय से डरते भतो को शरण तथा वर गुण भडार।
वे तीर्थंकर महावीर प्रभु मम (हम) हिय आव नयनद्वार ।।8।।

महावीराष्टक स्तोत्र को, 'भाग' भक्ति से कौन।
जो पढ ले अथवा सुने, परमगति वह लीन ।।

—जार्ज बर्नार्डशा

अनु० रविकुमार कक्षा Iyr T.D.C.

पूर्ण रूप से स्वतंत्र व्यक्ति कौन है ? एक व्यक्ति जो कि स्वयं ही जो चाहता है, जहाँ चाहता है, जब चाहता है, कर सकता है, और यदि वह चाहे तो कुछ भी नहीं करे। वास्तव में ऐसा कोई व्यक्ति नही है, और न ही हो सकता है; क्योंकि चाहे हमे पसन्द हो या नहीं हो हमें अपनी जिन्दगी का एक तिहाई हिस्सा सोने में खर्च करना पड़ेगा, नहाने और कपड़े बदलने में, खाने और पीने में हमें कुछ घन्टे खर्च करने पडेंगे और लगभग इतना ही समय एक जगह से दूसरी जगह आने-जाने में खर्च करना पड़ेगा। इस प्रकार लगभग आधा दिन हम अपनी उन आवश्यकताओं के गुलाम रहते हैं, जिनसे कि हम जी नहीं चुरा सकते है। चाहे कोई हजारों सेवकों का स्वामी हो अथवा साधारण मजदूर हो, जिसके उसकी पत्नि के अलावा कोई सेवक न हो, तो भी उनकी पत्नियों को संसार को चलाने के लिए बच्चे पैदा करने की अतिरिक्त गुलामी सहनी ही होगी।

इन सब प्राकृतिक कार्यो से हम जी नही चुरा सकते है, किन्तु इनमे दूसरे कार्य शामिल है जिनसे हम बच सकते है। जैसे हमें खाना होगा, इसके लिए हमें पहले भोजन की व्यवस्था करनी होगी; इसी प्रकार सोने के लिए बिस्तर, आग का स्थान तथा कोयले की व्यवस्था करनी होगी; तथा सड़क पर चलते समय अपनी नग्नता को ढकने के लिए कपड़ो की व्यवस्था करनी होगी। अब भोजन, कपड़ा और मकान मानवीय श्रम से पैदा किए जा सकते है; किन्तु जब वे पैदा हो जाते है. तो चुराए भी जा सकते है। जैसे यदि तुम्हें शहद चाहिये तो तुम मक्खियों को अपने श्रम से उसे पैदा करने देते हो और उसे चुरा लेते हो। उसी प्रकार यदि तुम इतने सुस्त हो कि इधर-उधर अपने पाँवों से आने

जाने मे असमर्थ हो तो तुम एक घोड को गुलाम बना सकते हो। और जो तुम एक घोड़े या मक्खियो के साथ करते हो वैसा ही तुम एक आदमी या औरत या एक बच्चे के साथ कर सकते हो। तुम उन पर बल से, धोखे से या और किसी भी तरह की चालाकी से अथवा उनको यह सिखाकर कि यह उनका धार्मिक कर्त्तव्य है कि वे अपनी स्वतन्त्रता तुम पर बलिदान कर दे, अपना प्रभाव जमा लेते हो।

इसलिए सावधान रहो! यदि तुम किसी व्यक्ति या किसी वर्ग को अपने ऊपर प्रभाव जमाने देते हो तो वे सबसे पहले अपनी प्राकृतिक गुलामी का यथासम्भव हिस्सा तुम्हारे कधो पर स्थानान्तरित करेंगे, और तब तुम अपने को 8 से 14 घन्टे कार्य करते हुए पाओगे। जबकि यदि तुम्हें सिर्फ अपनी और अपने परिवार के लिए व्यवस्था करनी होती तो उसे तुम शाति और आराम से उसके आधे से भी कम समय मे कर सकते थे। एक ईमानदार सरकार का उद्देश्य तुम्हारे पर इस प्रकार डाले जा रहे बोझे को रोकना होना चाहिये, किन्तु मुझे दुख है कि वास्तव मे आज की सरकार का उद्देश्य इसके विपरीत है। सरकार तुम्हारी गुलामी को बढावा देती है और उसे स्वतन्त्रता कहती है। लेकिन वे तुम्हारी गुलामी को नियमित करते है और तुम्हारे मालिको के लोभ को एक हद से आगे नही बढने देते। जब नीग्रो प्रकार की दास प्रथा मजदूरी की गुलामी से महँगी पड़ती है तो वे उसे समाप्त कर तुम्हे किसी भी एक मालिक के यहाँ मजदूर रहने को स्वतन्त्र कर देते है, और उसे वे स्वतन्त्रता की चमकीली विजय कहते हैं, यद्यपि तुम्हारे लिए यह सिर्फ एक गली की चाबी है।

जब तुम शिकायत करते हो तो वे तुम्हे विश्वास दिलाते हैं कि भविष्य मे तुम इस देश पर तुम्हारे लिए शासन करोगे। वे तुम्हे एक वोट देने का अधिकार देकर तथा लगभग 5 वर्ष मे एक बार सामान्य चुनाव करवाकर अपने इस वायदे को निभाते हैं। चुनाव के समय उनके कोई दो अमीर मित्र तुमसे वोट माँगते है और तुम उनमे से किसी एक को चुनकर दूसरे को हराने के लिए स्वतन्त्र हो। यह एक ऐसा चुनाव है जो तुम्हे पहले से अधिक स्वतन्त्र नही करता और तुम्हारी मजदूरी के घन्टो को एक मिनट भी कम नही करता। किन्तु समाचार पत्र तुमको विश्वास दिलाते है कि तुम्हारे वोट ने ही चुनाव का फैसला किया है। और यह तुम्हे एक प्रजातान्त्रिक देश का स्वतन्त्र नागरिक बनाता है। उसके बारे मे आश्चर्यकारी बात यह है कि तुम उन पर विश्वास करने के लिए पर्याप्त मूर्ख हो।

महावीर की महानता को नमन

डॉ० शोभानाथ पाठक

महावीर की महानता को शतशः वार नमन है।
जहाँ वीर व्रत की वरीयता वही धन्य जीवन है।।

त्रिशला औ सिद्धार्थ धन्य हो गये वीर को पाकर।
वैशाली को मिला श्रेष्ठ वरदान इन्हें अपनाकर।।
भारत माँ को गोद भर गई जन्म लिए तीर्थंकर।
अद्भुत हुआ उजाला युग में पुलक उठे सचराचर।।

वीर जयन्ती के जयनादों पर सुख शांति अमन है।
महावीर की महानता को शतशः बार नमन है।।

उस अतीत की आशाओं को इस युग में पहचानें।
अणु अस्त्रों की होड़ भयानक समझें, बूझें, जानें।।
सभी प्राणियों की रक्षा करना हो लक्ष्य हमारा।
इसी लक्ष्य ने समय समय पर युग का रूप निखारा।।

भौतिकता में भटके जनहित यही अलौकिक धन है।
जहाँ वीर व्रत की वरीयता वही धन्य जीवन है।।

मानवता का मगल करना, जन जीवन में सुख हो।
आत्मतुष्टि से सभी सुखी हो, कहीं न कोई दुख हो।।
सत्य अहिंसा-अपरिग्रह, अस्तेय अलौकिक आशा।
ब्रह्मचर्य की वरीयता ही जीवन की परिभाषा।।

इस सम्बल ने सदा संवारा मानवता का मन है।
महावीर की महानता को शतशः बार नमन है।।

❀

जीवन रा दूहा

□ डॉ० नरेन्द्र भानावत

[1]

घोर अंधारा में फबै, जीवन जळतो दीप।
नेह मिलै, वाती जळै, अग-जग नै दे लीप ।।

[2]

जीवन नी मीधी मटक, ऊंच-नीच घरण मोड ।
जे रेवै आस्या खुळी, नैडी आवै ठौड ।।

[3]

जीवन नी सोरो धनख, राखो इणनै खीच।
खाड्या, राध्या त्यार वैं, मीठो दुधियो खीच ।।

[4]

जीवन जड नी जागरण, जीवन शक्ति-स्रोत।
जो जीवन विपया रमै, भीतर-भीतर रोत ।।

[5]

जीवन नी चलती रकम, जीवन रतन अमोळ।
पैरण-ओटण मे खपै, वो जीवन नी, खोळ ।।

[6]

जीवन केसर री कूई, ठण्डो मीठो नीर।
जो खुशबू बांटै सदा, वोई मिनख अमीर ।।

[7]

जीवन रतनागार अगम, जो मथ जाणै आग।
वो तो अमरित मूत लै, नीतर कोरा झाग ।।

—सी-२३५ ए, तिलक नगर, जयपुर-४

लेख प्रतियोगिता में प्रथम

सुखी होने का उपाय—महावीर स्वामी की दृष्टि में

कु० नमिता श्रीमाल IX
पदमावती जैन बा० उच्च मा० वि०
जयपुर

"नव भारत का निर्माण किया, सपनों का उज्ज्वल उल्लास।
विश्व मानवता को प्यार दिया, उन्नत ज्ञान भक्ति वरदान ।।
एक तुम्हीं तो अपने थे जिसने सुखी होने का उपाय दिया।
तुम्हीं समर्पित श्रद्धा सुमन, सुख शान्ति पैगाम दिया ।।"

संसार दुखों से भरा है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मानव की जिन्दगी में दुःख ही दुःख है। धनवान व्यक्ति घन की लालसा से दुःखी है, तो निर्धन धनाभाव में, निःसन्तान, सन्तनाभाव से दुःखी है तो सन्तान वाले अपनी सन्तान की करतूतों से, तन्दुरुस्त मनुष्य विषयों की आकुलता से दुःखी है तो रोगी अपनी शरीर की असमर्थताओं से। जब मानव के जीवन में ही इतने दुःख है तो पशु पक्षियों की तो क्या बिसात। यह भी सर्वमान्य है कि हर व्यक्ति सुख प्राप्त करना चाहता है। दुःखों से छुटकारा पाना चाहता है। लेकिन वास्तव में सुख है क्या? सुख का वास्तविक अर्थ जाने बगैर मात्र इसकी प्राप्ति की कल्पना निरर्थक है। कुछ व्यक्ति (सामान्य व्यक्ति) भोग सामग्री को ही सुख सामग्री मानते है, और उनकी प्राप्ति को ही सुख प्राप्ति कहते है अथवा जहां सुख का नाम आता है वहां कहा जाता है—औद्योगिक परिवर्तन करो, प्रम से रहो, हिलमिल कर रहो तो सुख प्राप्त हो जाता है। यदि ऐसा ही है तो वे लोग जो इन सब से सम्पन्न है वे भी दुःखी क्यों है। वास्तविकता तो यह है कि "सुख आत्मा द्वारा अनुभव की वस्तु है। इसका सम्बन्ध आत्मा से होता है। पर वस्तुओं से छुटकारा पाकर ज्ञानानन्द स्वभावी आत्मा में अन्तर्यान होने से सुख मिलता है।"

7 अपरिग्रह—वगैरह जरूरत के धान्य, वस्त्र, पैसा अथवा अन्य किसी भी वस्तु का सग्रह न करना, सो अपरिग्रह है। जब मनुष्य सग्रह करने लगता है तो सग्रहीत वस्तुओ से उसकी सतुष्टि नही होती उसमे अधिक सग्रह की लालसा उत्पन्न होने लगती है तथा 'और अधिक, और अधिक' की भावना उसके चित्त को अशान्ति ही प्रदान करती है अत सग्रह बेवजह नही करें। जितनी आवश्यकता हो उतनी ही वस्तुए लो और सुखी रहा।

8 ब्रह्मचर्य—'पर स्त्री गमन न करना' 'ब्रह्मचय' का आशय है। यह भी महावीर स्वामी के पच महाव्रतो मे से एक है। आज पाश्चात्य देश वासना की लौ मे जलते जा रहे हैं। इनको झुलसने से बचाने के लिए यह सिद्धान्त प्रभावी है। इन सबके अतिरिक्त महावीर स्वामी द्वारा बताए गए अष्टांगिक मार्ग पर चल कर (सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दृष्टि, सम्यक् चरित्र आदि) भी हम सुखमय जीवन बिता सकते हैं।

इस प्रकार यदि हम महावीर स्वामी के उपदेशो को यथासामर्थ्य, शक्ति व योग्यता के अनुसार आचरण मे स्थान देते हैं, उनको व्यवहार मे लाते हैं, तो हम मे सम्यक् आत्मत्व हो जायेगी। हम अपने अन्तर्मन को समझेंगे। महावीर स्वामी का मानना था कि सुख स्वय से ही प्राप्त होता है जिसका सबध आध्यात्म ही होता है अत आध्यात्म एक ऐसा तत्व है जो आत्मा को बाहरी शरीर से अन्तर की ओर ले जाता है। अपनी आत्मा को समझ लेने पर मनुष्य उसी के समान आचरण करता है जिससे निश्चय ही सुख का भागी बनता है।

"जिसने राग, द्वेप, कामदिक जीते, सब बातो को जान लिया
सब जीवो को सुख शान्ति का, निस्पृह हो उपदेश दिया।
महावीर या वधमान कहिए, धन्य भाव से प्रेरित हो वह,
लीन उन्ही मे रहिये।

लेख प्रतियोगिता में प्रथम

सुखी होने का उपाय–महावीर स्वामी की दृष्टि में

संजीव बालचन्दानी XII
श्री० दि० जैन आचार्य सस्कृत
महाविद्यालय, जयपुर

जिनका परम पावन चरित्र जलनिधि समान अपार है,
जिनके गुणों के कथन में, गणधर न पावें पार है।
बस वीतराग-विज्ञान ही जिनके कथन का सार है,
उन सर्वदर्शी सन्मति को वदना शत बार है।।

एक उपवन में भाति-भांति के फूल खिलते हैं उनकी भिन्न-भिन्न खुशबु होती है उसी प्रकार इस संसार रूपी उपवन मे भी भांति-भांति के दर्शन हैं उनके अलग-अलग विचार है, सिद्धान्त हैं, मान्यताये है। परन्तु सभी दर्शनो व धर्मों ने यह स्वीकार है कि इस संसार में सुख नही है इससे कोई अलग जगह है जहा सुख है और वह मोक्ष ही है। ससार के सभी जीव दु:खी है और सुख चाहते हैं। इसी की पुष्टि मे अध्यात्मिक विद्वान पं. प्रवर श्री दौलतरामजी अपनी अमर कृति छहढ़ाला में लिखते हैं—

जे त्रिभुवन में जीव अनंत सुख चाहें दु:ख ते भयवन्त।
तातैं दु:खहारी सुखकार कहे सीख गुरु करुणा धार।।1/2

सभी दर्शनों व धर्मों में सुखी होने के उपाय बताये हैं, मंजिल तो सभी की एक है पर मार्ग भिन्न-भिन्न हैं।

जैन धर्म मात्र नर से नारायण ही नही अपितु पशु से परमेश्वर भी बनाने वाला धर्म हैं यही वास्तव मे सच्चा धर्म है। किसी विद्वान ने कहा हैं—

"जिन धर्म विनिमुक्तो मा भवत्च्चक्रवर्त्यवि।
स्याच्चेटोऽपि जिन धर्मा नुवासित: ।।

अर्थात् मैं जैन धर्म से रहित चक्रवती पद को भी नहीं चाहता तथा जैन धर्म सहित दरिद्र होना व चाण्डाल होना भी स्वीकार है।

यहां महावीर की दृष्टि मे सुखी होने का उपाय बताने को कहा तो महावीर हमारे प्रत्यक्ष उपस्थित नही है। हाँ उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो का उल्लेख अवश्य ग्रन्थो मे मोजूद है। जिनके द्वारा जीव सुख की प्राप्ति कर सकता है तो उन्हीं के आधार पर उनके सिद्धान्तो की चर्चा हम करेंगे।

जैन धर्म मे 24 तीर्थंकर माने जाते है जिनमें अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर को माना जाता है। तीर्थंकर से तात्पर्य यह है कि तीर्थ अर्थात् जो संसार सागर से तिरे और ऐसे कार्य का करने वाले व बताने वाले को तीर्थंकर कहते हैं। आज से लगभग 2580 वर्ष पूर्व ये उत्पन्न हुए उनकी माता का नाम त्रिशला व पिता का नाम सिद्धार्थ था। इनके पाँच नाम प्रचलित हैं (i) वीर (ii) अतिवीर (iii) महावीर (iv) सन्मति (v) वर्धमान।

ये बाल्यकाल से ही प्रतिभा सम्पन्न राजकुमार थे। ये बडी से बडी शंकाओं का समाधान चुटकियो मे कर देते थे। कई शंकाओ का समाधान तो इनकी सौम्य आकृति को देखकर ही हो जाता था ये शंकाओ का समाधान नही करते वरन् स्वयं समाधान थे।' दुनिया ने उन्हें अपने रंग में रंगना चाहा अर्थात् शादी के लिए प्रेरित किया परन्तु जो अबंध स्वभावी आत्मा का आश्रय ले चुका हो उसे कौन बंधन बांध सकता है।

अन्तत इन्होंने केवल ज्ञान की प्राप्ति की और इनकी दिव्य ध्वनि तीस वर्षों तक खिरी जिसमे धर्मी जीवो ने अपना स्वरूप समझा। वैराग्य के बीज तो इनमें आरम्भ से ही थे। अत इन्होंने 30 वर्ष के भरे यौवन मे यति धर्म को अङ्गीकार किया। मध्य के (30-42) बारह वर्षों मे जंगल मे परम मंगल की साधना म रत रहे और अंतिम 30 वर्ष तक धर्मी जीवो को अपनी दिव्य ध्वनि के माध्यम से धर्मोपदेश दिया।

इन्होने सिद्धान्तों को बनाया नही अपितु उनका प्रतिपादन किया, कोई अलग से धर्म नही चलाया।

इनके कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त इस प्रकार हैं।

(i) सभी आत्मा समान हैं, परन्तु एक नही।

(ii) सभी जीव अपनी भूल से ही दुखी हैं तथा भूल सुधार कर सुखी बन सकते है।

(iii) यदि सही दिशा मे प्रयत्न करे तो प्रत्येक आत्मा परमात्मा बन सकता है।

(iv) ईश्वर जगत का कर्त्ता धर्ता नही है अपितु वह तो मात्र ज्ञाता-दृष्टा है।

(v) अपने समान दूसरे जीवो को समझो।

दिन प्रतिदिन ऐसे बिगडे हुए माहौल मे महावीर के सिद्धान्तो की अत्यधिक आवश्यकता है, बल्कि आज तो (महावीर के समय की अपेक्षा) उनके सिद्धान्तो की अधिक आवश्यकता है। महावीर

ने बताया कि द्रव्य हिंसा ही हिंसा नहीं है अपितु भाव हिंसा भी हिंसा है। हम प्रतिक्षण राग-द्वेषादि विकारी भवों में प्रवर्तित होकर भावहिंसा कर रहे हैं।

आज ऐसे गंदे वातावरण में किसी सरल पुरुष का रहना दूभर है। अभी अमेरिका ईराक की लड़ाई बंद हुई। तो ईराक मे ही आपस में दो गुटो में लड़ाई आरम्भ है। यह नही कह सकते कि कब तृतीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हो जाये।

पहले पत्थरों लाठियों से युद्ध होता था पश्चात् तलवारों बन्दूकों से अब तोपों, हवाई फायरों से, थल युद्ध, जल युद्ध होते है और तो और अब तो कई देशो ने ऐसे बम तैयार कर लिये है जिनसे एक बड़े देश ही नही अपितु पूरी मानव जाति को, पृथ्वी को समाप्त कर सकते है ऐसे में हमें यह समझना चाहिए कि सभी जीव समान है। मै किसी का कुछ बिगाड़ सुधार नही कर सकता हूँ।

किसी ने कहा है—

दुःख-दर्द मिटाने के लिए पीर चाहिए।
अग्नि बुझाने लिए नीर चाहिए,
एटम्बमों के जोर से हिंसा नही मिटती,
हिंसा मिटाने के लिए महावीर चाहिए।

आज अखबार इन्ही बातो से भरे रहते है कि अमुख माँ-बहन का बलात्कार, अमुख को रिश्वत लेते रगे हाथों पकड़ा अमुख बैंक में डाका आदि। महावीर ने बताया है कि अहिंसा परमो धर्म" कुछ मासहारी मानते है कि हम तो पाप नही करते जीव की हिंसा नही करते तो महावीर ने कहा है ' उनके मन मे दया कहाँ से आ सकती है जो अपना मास बढ़ाने के लिए दूसरों का मास खाते हैं।" अतः महावीर ने जो सिद्धान्त बताये उन पर चल कर सभी अवश्य सुखी हो सकते है।

यह तो पहले बताया जा चुका है कि सभी जीव सुख चाहते है और निरंतर उसकी प्राप्ति का प्रयास भी करते है परन्तु सुखी नही होते है उनकी दिशा गलत है। कुछ लोग मानते है कि भोग सामग्री ही सुख सामग्री है अर्थात् "जितने ज्यादा भोग उतना सुख"। कहते हैं अधिक अन्न उपजाओ, प्रेम से रहो तथा अब सबके पास खाने के लिए अच्छी सामग्री; पहनने के लिए वातावरण के अनुसार कपड़े तथा रहने के लिए आधुनिक सुख सुविधाओं से युक्त मकान होगे तो सभी सुखी हो जायेंगे। सुख समृद्धि का ही सर्वत्र राज्य होगा परन्तु क्या जो देश इस सुख समृद्धि की सीमा को छू रहे है वे दुःखी नही है अपितु देखा जाता है कि वहां ही ज्यादा आकुलता है।

कुछ मनीषी इससे आगे कहते है कि भाई भोग सामग्री मे सुख नहीं है अपितु सुख तो मान्यता में है।" इसी की पुष्टि में एक उदाहरण भी देते है, वे कहते है "एक व्यक्ति का दो मंजिल का मकान है उसके दांयी ओर पाच मंजिल का मकान व बांयी ओर एक झोपड़ी है। जब वह दायी ओर देखता है तो दुःखी होता है और जब बायी ओर देखता है तो सुखी होता है। अतः सुखी होने के लिए अपने से निर्धन, हीन व्यक्ति को देखो।" परन्तु इसे तो कोई भी सज्जन सुख की प्राप्ति का

उपाय नहीं मानेगा क्योंकि अपितु वह भी दयाद्र हो जायेगा अपने से हीन को देखने में सुख मानना तो मान कषाय की पुष्टि मे सतुष्टि मानना है।

कोई कहता है कि जितनी इच्छा पूर्ति होगी उतना सुख होगा परन्तु एक इच्छा कि समाप्ति होने पर दूसरी इच्छा उत्पन्न हो जाती हैं। अत दु खी ही रहता है। सुख के लिए तो इच्छाओं का सवथा अभाव होना चाहिए। सुख के लिए चाह की जरूरत नही है अपितु सुख तो चाह के अभाव से ही प्राप्त होगा। परन्तु उपरोक्त कारणों को ही यदि सुखी होने का उपाय मान लें तो वास्तविक सुख की खोज बद हो जायेगी। सच्चा सुख तो आत्मा के आश्रय से ही होता है। आत्मा चेतन पदार्थ है अत सुख जड पदार्थों से कैसे उत्पन्न हो सकता है? आत्मा सम्पूर्ण सुख से भरा पड़ा है स्वय सुख मय ही है। अत वास्तविक सुख उसके दर्शन, ज्ञान व चारित्र से ही उत्पन्न होता है व उसकी पूर्णता समव है।

जड इन्द्रियों द्वारा अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति सभव नहीं है। अत उसके लिए अतीन्द्रिय आत्मा की ही शरण लेनी चाहिए, उसके लिए सम्यग्दर्शन-ज्ञान व चरित्र की आवश्यकता है यह मोक्ष के मार्ग है।

आचार्य उमास्वामी तत्वार्थ सूत्र में लिखते हैं—
"सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग।"

अर्थात् इन तीनों का समुदाय ही मोक्ष का मार्ग है। सम्यग्दर्शन से तात्पर्य है आत्मा का दर्शन, ज्ञान अर्थात् आत्मा जानना और उसी मे लीन रहना चारित्र है तब पूर्ण सुख की प्राप्ति समव है। इसके लिए सात तत्वो, षट्द्रव्य, नौ पदार्थों का ज्ञान होना व पञ्चास्तिकाय का जानना भी इसलिए आवश्यक है क्योंकि इनसे भिन्न अपनी आत्मा को जानना है। और उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करना है आत्मा कोई भिन्न पदार्थ नही है अपितु सभी आत्मा ही हैं। यदि व्यक्ति कर्ता कर्म, निमित्त उप - वस्तु स्वात त्र्य, चार अभाव को जान ले और इष्ट अनिष्ट की मिथ्या कल्पना को को छोड । पर्याय मे भी परमात्मा बन सकता है। अर्थात् "जब जागा तभी सवेरा है।" यदि सुख की प्त करनी है तो इन सिद्धान्तों को आज मानो कल मानो चाहे अनत काल बाद मानो मानना तो यही है, इन्द्रिय सुख तो वास्तव मे सुख नही है अपितु वह तो दु ख ही है। आचार्य कुन्दकुन्द प्रवचनसार मे कहते हैं—

इन्द्रिय सुख सुख नही दु ख है विषम बाधा सहित है,
है बध का कारण दु खद परतत्र है विच्छिन्न है।

अतीन्द्रिय सुख व इन्द्रियो का क्या मेल? यदि यह मान लिया जाये कि कोई मेरा कर्ता-धर्ता नहीं है कोई मुझे सुखी दु खी नहीं कर सकता है तो अनत सुख की प्राप्ति समव है। 'यदि कोई मेरा भला बुरा कर सकता है तो मेरे पुण्य पाप का क्या होगा" आचार्य कुन्दकुन्द समयसार में कहते है जिसका पद्यानुवाद डॉ हुकमचन्दजी भारिल्ल ने किया है—

"मैं सुखी करता दुःखी करता हूँ जगत में अन्य को।
यह मान्यता अज्ञान है क्यों ज्ञानियों को मान्य हो ।।

आकुलतामय कोई मुझे मार जिला नही सकता, सब आयुक्षय से ही मरते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य कहते है—

मैं मारता हूं अन्य को या मुझे मारे अन्य जन।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन ।।

इन्द्रिय सुख तो वास्तव में दुःख ही है। सुखी होने का सच्चा उपाय तो अतीन्द्र आत्मा के आश्रय से ही प्राप्त होगा किसी कवि ने लिखा है।

"आकुलतामय संसार सुख जो निश्चय से है महा दुःख" तथा जो होना है सो निश्चित है। घटनाये घटती नही हैं अपितु घटना चक्र पर चलती हैं। यह तो अनंत काल पहले ही निश्चित था कि उसके लिए आकुलित होने की आवश्यकता नही है। जो-जो देखी वीतराग ने सो-सो होसी वीरा रे अनहोनी कबहू होसी नहीं काहे होता अधीरा रे।

यही सुखी होने के सच्चे उपाय हैं।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र की प्राप्ति करना कठिन नही है। जयचन्दजी छावड़ा लिखते है—

वोधि आपका भाव है निश्चय दुर्लभ नाही।
जग में प्राप्ति कठिन है यह व्यवहार कहाही ।।

आकुलता का अभाव ही वास्तव में सुख की प्राप्ति है।

जैनों का लक्षण बताते हुए किसी कवि ने लिखा है—

महावीर कह गये सभी से जैनी वह कहलायेगा।
दिन में भोजन, छान के पानी, नित्य जिनालय जायेगा।'

यह जैनियो का ही नहीं अपितु जिन्हें सुखी होना है उसे यह करना पड़ेगा। उसके लिए आचार में अहिंसा, वाणी मे स्याद्वाद, विचारों में अनेकान्त, जीवन में अपरिग्रह होना चाहिए। सर्वप्रथम अभक्ष का त्याग कर, पच अणुव्रतों का पालन कर, पश्चात् पंचमहाव्रतों का धारण कर सुख की प्राप्ति करनी चाहिए। सुख बाहर नही है अपितु अन्दर ही है। स्वय मे ही सुख को बाहर खोजना मूर्खता है। अतः सम्यग्दर्शन. सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र को धारण करके सुख की प्राप्ति संभव है।

सभी ऐसे अतीन्द्रिय, शाश्वत, परिपूर्ण, अखण्डित, पर निरपेक्ष सुख की प्राप्ति करें इसी मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ।

"आत्म बने परमात्मा हो शान्ति सारे देश में।
है देशना सर्वोदयी महावीर के सदेश में ।।

□

लेख प्रतियोगिता मे प्रथम

"सुखी होने का उपाय-भगवान महावीर की दृष्टि मे"

देवेन्द्र कुमार बैराठी कक्षा VIII
बाल शिक्षा मन्दिर, जयपुर

क्या गोलो-बारूद के ढेर पर बैठा मानव सुख शाति प्राप्त कर सकता है ? अपनी लालसा व महत्त्वाकाक्षा की पूर्ति हेतु आग्नेय अस्त्रो का प्रयोग कर हजारों जीवो की जान लेकर क्या मानव सुख प्राप्त कर सकता है ? चारों तरफ भय व अराजकता का वातावरण फैलाने वाला मानव क्या स्वय सुख-शाति की नींद सो सकता है ? इन सभी प्रश्नों का एक ही उत्तर है—नही । आज विश्व मे चारों तरफ भय व अशाति का वातावरण फैला हुआ है । इससे प्रत्येक मानव दुखी है । प्रश्न यह उठता है कि सुख कैसे व कहा से प्राप्त किया जाये । वास्तव मे यदि हम सुख प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें महावीर द्वारा बताए मार्ग का ही अनुसरण करना होगा ।

भगवान महावीर ने यह अनुभव किया कि इस ससार मे सभी जीव दु ख से डरते हैं व किसी न किसी प्रकार सुख की प्राप्ति करना चाहते हैं । प दौलतराम ने उनकी बात का अनुसरण करते हुए कहा है—

'जे त्रिभुवन मे जीव अनन्त
सुख चाहैं दुख तें भयवन्त ।

अर्थात् इस लोक मे जितने भी जीव हैं वे सब सुख चाहते हैं व दुख से डरते हैं । सभी जीव सुख प्राप्ति की इच्छा करते हैं ।

दुख से भय व सुख प्राप्ति की इच्छा आज से ही नहीं वरन् आरम्भ से चली आ रही है स्वय भगवान महावीर ने इस बात का अनुभव किया और वे सुख प्राप्ति के उपायों की खोज में लग गये । इसके लिए उन्होंने न केवल अपने गृहस्थ-जीवन का त्याग किया वरन् गहन आत्म-साधना करके स्वय तो कैवल्य को प्राप्त हुए ही मानव मात्र को भी सुख प्राप्ति के उपाय बताए ।

महावीर ने यद्यपि चरम सुख मोक्ष प्राप्ति बताया उन्होंने यह भी अनुभव किया कि प्रत्येक प्राणी के लिए मोक्ष मार्ग की ओर बढना सम्भव नहीं है । महावीर के उपदेशों की परिपालना हम दो रूप मे कर सकते हैं जिन्हें निश्चय व व्यवहार कहा जाता है । व्यवहार रूप मे भी व्यक्ति

महावीर द्वारा बताए गए उपायों का पालन कर लौकिक सुख भी प्राप्ति कर सकता है। महावीर द्वारा सुख प्राप्ति के लिए बताए उपाय आध्यात्मिक होते हुए भी सामाजिक व व्यक्तिगत जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी, व्यावहारिक, सार्वकालिक, व सार्वदेशिक हैं। आइए, हम व्यावहारिक धरातल पर उतर कर महावीर द्वारा बताए गये सुख प्राप्ति के उपायों पर विचार करें, जो उनके द्वारा प्रतिपादित अहिंसा, अपरिग्रह व सन्तोष के सिद्धान्त के ही रूप हैं। पं. दौलतराम ने पुनः कहा है—

"आतम को हित है सुख सो सुख,
आकुलता बिन कहिए।"

आत्मा का भला सुख पाने में है सुख उसे कहते हैं जिसमें किसी प्रकार की आकुलता अर्थात् चिन्ता न हो अर्थात् निराकुलता ही सुख प्राप्ति का प्रथम उपाय है। आध्यात्मिक रूप में तो यह कथन सत्य है ही परन्तु लोक व्यवहार में बिना आकुलता को त्यागे समाज व ससार में रहते हुए कोइ व्यक्ति सुख प्राप्त नही कर सकता है। यह आकुलता मनुष्य पर बाहर से नहीं थोपी जाती वरन् वह स्वयं ही इसका निर्माण करता है। आकुलता के साथ यदि सारे वैभव भी हैं तो वे बेकार है और यदि निराकुलता के साथ आदि रोटी भी है तो वह जीव सुखी है। चारों तरफ अशान्ति व अराजकता का वातावरण छा रहा है, यह आकुलता का परिणाम है अर्थात् निराकुलता सुख प्राप्ति का प्रथम उपाय है।

भगवान महावीर ने इस आकुलता को दूर करने का जो उपाय बताया, वह है—मन में समता भाव धारण करना, अनियन्त्रित भौतिक समृद्धि को पाने का लोभ छोडना व अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखना। दूसरे शब्दों में, अपरिग्रह व सन्तोष को ही सुख प्राप्ति का उपाय बताया है।

यदि हम स्थायी शान्ति युक्त सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो हमे भौतिक सुखों की दौड़ को रोकना होगा। भगवान महावीर का कहना था कि यदि हम सारे अभावों से ऊपर उठना चाहते है तो हमें अपनी आवश्यकताएं कम करनी होंगी। आवश्यकताए जितनी कम होगी अपनी ही वृद्धि सुख व सन्तोष में होगी। लौकिक जीवन मे गृहस्थी चलाने के लिए भगवान महावीर ने कभी धन की उपेक्षा नही की। भगवान महावीर का कहना था कि सुख-सम्पन्न जीवन बिताने के लिए हमे धन काम में लेना चाहिए, परन्तु उतना ही जितनी आवश्यकता हो। कहा भी गया है—

"माहेण अप्पगाहा समुद्ध सलिले सचेल अत्थेण।"

अर्थात् जिस प्रकार वस्त्र धोने के लिए विशाल सागर के अथाह जल से थोड़ा ही जल ग्रहण करना उचित है, उसी प्रकार ससार मे उपलब्ध वस्तुओ में से हमें अपनी आवश्यकता की वस्तुए ही लेनी चाहिए।

भगवान महावीर का कहना था कि वस्तुओं का आवश्यकता से अधिक संचय या परिग्रह कामनाओ मे वृद्धि करता है तथा कामनाएँ ही दुःख का कारण हैं। हमे अपनी कामनाओ पर

नियन्त्रण कर सुख प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। जीवन का उद्देश्य सुख व शांति प्राप्त करना है, साध्य नहीं। परन्तु धन को जीवन का उद्देश्य बना लेने से सुख शांति प्राप्त नहीं हो सकती। धन साधन है, धन से मानव कभी तृप्त नहीं हो सकता। जो लोग यह सोचते हैं कि सुख पैसों से खरीदा जा सकता है वे भ्रम में हैं। एक विद्वान ने तो कहा है—

The greatest humbing in the world is the idea that money can make a man happy"

भगवान महावीर का कहना था कि शुद्ध साधन व सही तरीके से धन कमाने से सम्पत्ति में कभी असीमित वृद्धि नहीं हो सकती, परन्तु आज का मानव किसी न किसी तरीके से अधिकाधिक धन कमाना चाहता है, जिससे वह रिश्वत खोरी, भ्रष्टाचार, बेईमानी व काला बाजारी जैसे कई गलत रास्तों पर पड़ रहा है। जिससे राष्ट्र में चारो तरफ अशान्ति फैल रही है एक मानव दूसरे मानव का किसी न किसी प्रकार से खून चूस कर अपनी भौतिक सम्पत्ति में वृद्धि करना चाहता है चारों तरफ अधिक से अधिक भौतिक साधनों को प्राप्त करने की होड़ लगी है। इन सबके पीछे असीमित तृष्णा है। लेकिन जो जितना अधिक भौतिक साधनो या धन को इकटठा कर रहे हैं वे उतना ही सुख-शान्ति प्राप्त करने के रहस्य को खो रहे हैं।

रविन्द्र नाथ टैगोर अपरिग्रह जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि 'मैं गरीबी की प्रशंसा नहीं करना चाहता परन्तु सादगी का मूल्य विलासिता के साजो-सामान से कहीं अधिक है।" इसका मतलब बहुतायात की कमी मात्र नहीं है वरन् यह तो पूर्णता का लक्षण है और जो व्यक्ति पूर्णता को प्राप्त कर लेता है वास्तव में वही सुखी है।

आचार्य गुणभद्र ने भी कहा है कि मनुष्य के पास इच्छाओं का इतना बड़ा गर्त है कि उसमे ससार की सारी वस्तुएँ एक अणु के रूप से समा जाएँ। तब कोई कैसे बाहरी भोग विलास के साधनो को बढ़ाकर सुख प्राप्त कर सकता है। कितना सुन्दर सन्देश है— जिसके इच्छा नहीं, उसके दुख का कारण नहीं।' भगवान महावीर के अनुसार सुख प्राप्त करने की सर्वप्रथम सीढी है—अपनी आवश्यकताओ को सीमित रखकर समता भाव से अपना जीवन व्यतीत करना। अपनी अनन्त तृष्णाओ पर विजय प्राप्त करके जो कुछ सहज सुलभ है उसी में सन्तोष करके सामाजिक व्यक्तिक व आत्मिक सुख प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि अपरिग्रह व्रत का पालन जहाँ आत्मा के विकास का व्यक्तिगत साधन है वहीं व्यक्तिक सुख व सामाजिक व्यवस्था का मूलभूत आधार भी है। जो व्यक्ति बाहरी परिग्रह को यथाशक्ति कम करके निराकुलता व समताभाव को प्राप्त करता है उसके लिए ससार के सभी भौतिक साधन तुच्छ हो जाते हैं। कहा भी गया है—

"गौ धन, गज-धन वाजिधन और रतन धन खान।
जब आव सन्तोष धन सब धन धूरि समान॥"

महात्मा गाँधी सन्त विनोबा ऐसे ही महापुरुष थे, जिन्होंने सन्तोष, अपरिग्रह व अहिंसा को अपनाकर सुख प्राप्त करने का प्रयास किया।

भगवान महावीर के अनुसार सुख प्राप्त करने की दूसरी सीढी है—अहिंसा। 'जियो और जीने दो' महावीर के दर्शन की रीढ है। सभी व्यक्ति सुख प्राप्त करना चाहते हैं। सब जीना

चाहते है। कोई मरना नहीं चाहता। जीवेषणा प्राणी मात्र में होती है, जीना सबको अच्छा लगता है। भगवान महावीर ने प्राणि मात्र का वध भी निषेध बताया। सब व्यक्तियों को अपने समान समझना चाहिए। जैसा व्यवहार तुम चाहते हो वैसा ही दूसरों के साथ करो। जैसे तुम्हें दुःख प्रिय नहीं हैं वैसा ही दूसरों के साथ समझो।

सब प्राणियों को अपने समान समझने व उसमें अपना ही प्रतिरूप देखने से सह-अस्तित्व की भावना का विकास होता है जो कि अहिंसा का अभिन्न अंग है। सह-अस्तित्व हमारे सामाजिक जीवन की धुरी है। आज हमारा जीवन सह-अस्तित्व की मर्यादा को तोड़कर स्वच्छ व उच्छृंखल बन गया हैं। जिससे चारों तरफ का वातावरण संघर्ष व तनावपूर्ण बन गया है। इसमे अहिंसा का ही अभाव है। महावीर ने जहां जड़ व चेतन पदार्थों की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की, वहीं उन्होंने सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिए सह-अस्तित्व के सिद्धान्त पर जोर दिया।

अहिंसा व्यक्ति व समाज के विरोधों का शमन करती है। मनुष्य को सकीर्ण भावनाओं से उठाकर उसका दृष्टिकोण व्यापक बनाती है। आज विश्व मे चारो तरफ युद्ध व अशांति का वातावरण छा रहा है, इसको खत्म करने के लिए आवश्यक है कि हम सकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठकर विचार करें तभी शान्ति स्थापित हो सकती है तथा मानव सुख की अनुभूति कर सकता है।

प्रत्येक मानव सुख प्राप्त करना चाहता है इसके लिए आवश्यक है कि महावीर द्वारा प्रदत्त उपदेशों को व्यावहारिक रूप प्रदान किया जाए। ससार व मानव की ऐसी कोई समस्या नही है, जिसका समाधान अहिंसा की आराधना से न हो। महावीर द्वारा सुख प्राप्ति के लिए बताए उपाय जन-साधारण के लिए इतने जीवनोपयोगी हैं कि मानव उनका पालन कर आत्मिक सुख के साथ-साथ लौकिक सुख भी प्राप्त कर सकता है तथा स्वयं का, समाज का, देश व विश्व का कल्याण कर सकता है।

अन्त में प्राणी मात्र के प्रति समर्पित—

"सच्चे सुख का अभिलाषी यदि तू,
हित—अहित का जान ज्ञान ले,
श्रद्धा सहित शुद्धि चारित्र से,
कर्मों का कर विरोध,
नये पाप लागे नही,
धोले ताप से पिछले दोष,
जीवन थोड़ा,
मत प्रमाद कर,
राग द्वेष से नाता तोड़,
परम धाम से नाता जोड़,
सच्चे सुख का अभिलाषी यदि तू ....

रक्तदानदाता सूची वर्ष 1990

गत वर्ष महावीर जयन्ती के दिन समाज के निम्न युवकों तथा युवतियों ने सभा द्वारा आयोजित रक्तदान कार्यक्रम मे भाग लिया था। हम उनके नाम यहां प्रकाशित कर उनका अभिनन्दन करते हैं। उनके नाम के आगे उनके रक्त ग्रुप हम बहुत ही सावधानी रखते हुए प्रकाशित कर रहे हैं फिर भी पुन जाच उचित होगी।

प्राणी मात्र को जीवन रक्षा प्रदान करने के लिये अपने शरीर का अमूल्य रक्त निस्वार्थ भाव से उक्त शिविर मे दान देकर आपने जो श्रेष्ठ एव सर्वोत्तम साहसिक त्याग किया हैं, जिससे अनेकों प्राणियो की जीवन रक्षा हो सकी है, निश्चय ही अविस्मरणीय एव प्रेरणाप्रद है ऐसे महान त्याग के लिये राजस्थान जैन सभा आपका अत्यन्त आभार प्रकट करती है।

नाम	रक्त वर्ग	नाम	रक्त वर्ग
श्री सुन्दर जैन	O+	, पी के जैन	B+
,, महावीर जैन	B+	,, दर्शन कुमार जैन	AB+
, झूमर मल सचेती	O+	, अनिल कुमार गोधा	AB+
, धनपत राय जैन	O+	,, सुरेश कुमार जैन	A+
,, राजेन्द्र प्रताप गुप्ता	B+	, शरद सोगाणी	A+
,, अशोक चगेरिया	B+	,, नरेन्द्र कुमार बडजात्या	B+
, जय कुमार ठोलिया	A+	, सुभाषचन्द जन	A+
राजेन्द्र निरखी	B+	, विनय कुमार जैन	O+
,, सुनील ठोलिया	O+	, ललित कुमार जैन	A+
अनूप छाबडा	A+	श्रीमती विद्या मेहनोत	O+
,, त्रिलोकचन्द	B+	श्री अपर्ण कुमार	B+
, दीपक कुमार जैन	AB+	श्रीमती राजकुमारी साह	O+
, अशोक कुमार जैन	B+	,, वीना जैन	B+
, कुन्थी लाल जैन	B+	,, सुन्दर बाला सरावगी	B+

नाम	रक्त वर्ग	नाम	रक्त वर्ग
श्री सुरेश शाह	O+	,, श्रोमप्रकाश सोमानी	B+
श्रीमती तारामणी जैन	A+	,, योगेन्द्र कुमार जैन	B+
,, चन्द्रकान्ता पाटनी	A+	,, शैलेश जैन	A+
श्री मनीष कुमार जैन	B+	,, विजय कुमार जैन	B+
,, मनोज मुशरफ	B+	,, महावीर कुमार बिन्दायका	O+
,, सुनील कुमार जैन	B+	,, हरिशंकर जैन	O+
श्रीमती ज्योति रंजीव अजमेरा	B+	,, अजय सोगानी	O+
श्री उजास जैन	B+	,, महेन्द्र कुमार सोगानी	O+
,, पीयूष कुमार जैन	B+	,, प्रकाशचन्द जैन	O+
,, सुरेन्द्र कुमार जैन	AB+	,, संजय कुमार जैन	A_2B+
,, पंकज सोगानी	O+	,, चक्रेश जैन	AB+
,, चन्द्र शेखर जैन	B+	,, राकेश कुमार जैन	B+
,, विशेष कुमार शर्मा	(B−)	,, ललित कुमार जैन	B+
,, नरेन्द्र कुमार अजमेरा	B+	,, नवीन कुमार बिल्टी वाला	A+
,, मनोज कुमार जैन	O+	,, दशरथ कुमार जैन	O+
,, अशोक कुमार जैन	B+	,, अनिल कुमार जैन	O+
,, लेखचन्द जैन	A+	,, प्रेमचन्द सोगानी	B+
,, इन्द्र कुमार अजमेरा	B+	,, शीतल प्रसाद जैन	B+
,, राजकुमार सोगानी	AB+	,, पदमचन्द जैन	B+
,, राजेश कुमार जैन	O+	,, सुनील सेठी	O+
,, शरद जैन	O+	,, राज कुमार पापड़ीवाल	A+
श्रीमती तारा कुमारी जैन	O+	,, कमल कुमार जैन	A+
,, पुष्पा शर्मा	O+	,, शरदचन्द गोधा	B+
श्री संजीव जैन	A+	,, गजेन्द्र कुमार जैन	B+
,, देवेन्द्र कुमार जैन	O−	,, अनिल कासलीवाल	B+
,, रमेश कुमार जैन	AB+	,, राजेश जैन	B+
,, राजेश कुमार जैन	O+	,, सुरेन्द्र कुमार जैन	B+
,, संजय ढोलिया	A+	,, संजय कुमार जैन	A_2+
,, राकेश कुमार मुशरफ	AB+	,, राज कुमार मुशरफ	AB+
श्रीमती राज काला	B+	,, मुकेशचन्द जैन	AB+
श्री त्रिलोकचन्द जैन	O+	,, अरुण कुमार जैन	B+
,, राजेश कुमार बगड़ा	A+	,, मनोज कुमार जैन	A+
,, पदमचन्द सेठी	B+	,, जैनेन्द्र कुमार जैन	O−

नाम	रक्त वर्ग	नाम	रक्त वर्ग
, अजय कुमार जैन	B+	,, नरेश कुमार जैन	O+
,, अशोक	O+	,, ससार सेठी	B+
,, राकेश अजमेरा	O+	, दिनेश कुमार सेठी	A+
, दीपक शाह	B+	,, सजय जैन	O+
,, सदीप कटारिया	B+	,, पदम बडजात्या	B+
, राजेश कुमार सोगानी	B+	,, सजय कुमार जैन	B+
देवेन्द्र कुमार छावडा	B+	,, एस के बडजात्या	O+
श्री मोतीलाल जैन	A+	,, किशनसिंह चांवला	O+
श्री अजय गोधा	O+	, अनिल कुमार जैन	AB+
,, नीरज शर्मा	A+	, प्रदीप बज	O+
,, अमरचन्द गगवाल	O+	, सुरेन्द्र सुराना	O+
, रमेश कुमार फतहपुरिया	O+	,, कमल कुमार सरावगी	A+
,, राजेन्द्र कुमार छावडा	B+	, ए के सोगानी	A+
,, सुधाशु कासलीवाल	O+	,, आलोक काला	B+
नीलम कुमार जैन	O+	,, हेमन्त कुमार जैन	O+
,, रामजीलाल मीना	B+	,, रूपनारायण शर्मा	B+
,, धर्मेन्द्र कुमार जैन	A+	, शरद जैन	O+
, गजेन्द्र कुमार जैन	B+	, अशोक पाटनी	B+
, राजेन्द्र भारद्वाज	B+	, देवेन्द्र जैन	B+
,, अरुण कुमार जैन	B+	,, राकेश जैन (अजमेरा)	O+
, सुरेश काला	B+	श्रीमती शकुन सोनी	B+
,, वाई आर गगवाल	O+	,, ज्योती गोदीका	O+
सुशील गगवाल	B+	श्री आलोक कासलीवाल	A+
, विनोद कुमार जैन	AB+	,, पी आर जैन	A+
,, स देश कुमार पाटनी	O+	,, ज्ञान प्रकाश काला	B+
,, अक्षय जैन	O+	, राजेन्द्र रैनवाल वाले	O+
धर्मेन्द्र जैन	O+	, उमेश काला	A+
,, अनिल बाकलीवाल	B+	,, अशोक कुमार जैन	B+
,, निर्मल कासलीवाल	O+		

नामो के आगे रक्त वर्ग बहुत ही सावधानी रखते हुये प्रकाशित कर रहे हैं फिर भी पुन जाच उचित होगी।

रमेश गगवाल
सयोजक
रक्तदान शिविर 1990

पंचम खण्ड

आंग्ल-भाषा

सुनो–जब तक रोग रूपी आग देह रूपी कुटिया को भस्मीभूत नही करती अर्थात् जब तक इन्द्रियों की शक्ति अक्षीण है तब तक आत्म कल्याण करलो अन्यथा पछताने के अलावा कुछ और बचा नही रहेगा।

आचार्य कुन्दकुन्द

The Meaning of Puja

Lawrence A. Babb
Amherst College
U.S.A.

My suject is puja in the Jain tradition, and in what follows I am particularly concerned to stress how misleading the outer appearance of a religious practice can be if we wish to discover its inner meaning. To Jain readers my brief observations may seem obvious, but the point at issue is an important one because it bears on the distinctiveness of Jainism in comparison with other South Asian religious traditions.

Most Jains (though of course not all) worship the Tirthankaras in a ritual known as puja. Many observers have noted that in certain respects the Jain puja is quite similar to Puja in the Hindu tradition. This resemblance has led some to conclude that Jain puja is best understood as a borrowing from the surrounding religious culture of the Hindus (see, for example, R. Williams, **Jaina Yoga : A Survey of the Mediaeval Sravakacaras,** Oxford University Press, 1963). It seems to me, hewever, that to focus on the issue of borrowing is to divert attention from a much more important matter. It is, of course, incontestable that there has been interaction between Jainism and various Hindu traditions over many centuries, and it is my belief that the resulting exchanges have enriehed Jain and Hindu traditions alike. But just because Jain puja may resemble the Hindu rite in some of its features, and may indeed reflect Hindu Influences, this does not mean that it is, in reality, the same rite.

During a recent visit to Amber I saw something that seemed to me to be one of those small and apparently insignificant details that turns out to be emblematic of some larger truth. On the silver door leading into the Kali temple at the palace are images of various forms of the goddess executed in

Neurochemistry of War and Peace

Dr D C. Jain
MBBS MD, DM
Head of the Department of
Neurology Safdarjung Hospital,
New Delhi

Many people believe that violence in the mind comes from others, but recently medical scientists have found that it arises from within self It results from interaction of various chemical substances ingested by men or animals These chemicals are called neuro-excitatory neurotransmitters These chemical substances reach to brain and excite the nervous system to compel the person to indulge in violence This hapothesis support the old proverb Whatever you eat, so shall you become It means your behaviour is regulated through your food If your food is pure, simple, devoid of flesh meat your behaviour will be pleasant, tranquillized But if your food is full or excitant foods like alcohol, chilly, flesh, fish you are bound to be restless, agressive, indecisive

Dietary influences on human behaviour has been a subject of scientific studies in recent yeary Wurtman a neuro endorinologist, working at Massachussette Institute of Technology, U S A, has been the pioneer in this field According to him it has been found that changes in behaviour is through neuro-transmitters, neuro modulating substances in the brain Their levels change according to the type of diet Thus diet influences the behaviour pattern of brain

Role of Neuro Transmitters

These are endogenous opiate like substances which are abundantly found in basal ganglia, thalami and brain stem These substances have pain relieving properties similar to opiates Certain food substances like curd

carbohydrate rich substance have high concentration of these opiates rise in the brain.

Neuro-Modulators

Cyclic AMP, melatonin, tyramine, putative neuro-transmitters, substance P are other substances which also modify the brain behaviour. Tyramine, immediately after ingestion, produces tachycardia, flushing headache, restlessness, apprehension, excitement. Tyramine is found in abnndant amount in cheese, tinned food meat, pickles etc. Cyclic AMP Is the terminal messanger of any pharmacological or physiological activity. Its levels are influenced by A. T. P.

Melatonin is secreted through pineal gland. It resembles its activity and chemical structure to A. C. T. H It has been found to regulate the sleep pattern, awake sleep cycle. It maintains the circadian rhythm (Biological clock). Its levels if changed, can lead to insomnia or changes in Biological behaviour.

Evidences which support that diet does influence the brain behaviour are varied. Physiological, pharmacological, clinical epidermiological studies strongly support that behaviour modifies by type of diet.

Pharmacological Evidences

It has been of daily observation that immediately after administration of catecholamines-excitatory response can be seen. Person becomes apprehensive. Tachycardia, flushing, sweating takes place similar to aggressive behaviour pattern In contrast to it the hyperactivity of Cerebral neurones can be suppressed by administration of GABA.

Physiological Evidences

Hyperactive and Aggressive individuals have blood levels of excitatory neuro-transmitter especially catacholamines. However no study till date is available to demonstrate positive co-relation to tranquilized states.

Dietary Evidences

It is a common observation that in summers taking of curd mixed with sugar (Lassi) produces sleepiness. Similar betel nut produces excitement. Tea, coffe after intake, produce neuronal excitement. Meat diet produces excitement.

In psychiatry practices illnesses like schizophrenia, depression and Mania it has been found that neuro-transmitters levels are modified. In Mania,

and schizophrenia catecholamine levels are found to be high, whereas in depression their levels are found to be low Various therapeutic agents used for the treatment of these disorders alter the levels of CA in the brain. In Schizophrenia drugs which causes depletion of CA in the brain, like Phenothiazines are used This observation strongly support that the behaviour modifies with the type of neuro transmitters present in the diet However, no clinical double blind control trail has been undertaken to support this hypotheses

Epidemiological Evidences

Epidemiological survey conducted in carnivorous and herbivorous animals suggest that herbivorous animals are non-aggressive whereas carnivorous animals are aggressive in nature Carnivorous animals in acute hunger particularly after delivery eat their own new borns to satisfy the hunger To be more specific cat after delivery eats her own kitten Herbivorous animals are exceptional in tolerance to hunger and are never aggressive In human beings such behaviour is not so clearly evident but in a study conducted in U S on 7th day Adventist it has been found that vegans havs more tolerance Their judgement are more accurate, and balanced Their intelligence is high as compared to non vegans

Carnivorous animals have nocturnal restlessness They come out during nights and attack the animals Their general behaviour is unpredictable No herbivorous animal kills other animals for food purposes Studies carried out in Central Jail, Gwalior show that diet could modify the aggressive behaviour of prisoners Double blind control trials showed that criminals become amenable to reasons Their sleep pattern changed and they could feel guilty of the crimes committed by them

In a study done in U S A on insomniacs (Neal Bernard 1985) that carnivorous animals had difficulty in getting sleep after eating meat whereas dietary modification to vegan diet induced early sleep Extending this observation to human beings, similar observation has been found Diet rich in carbohydrates particularly sweet dish could induce the sleep very effectively It could reduce the amount of drugs used for inducing sleep

Review of Indian Literature

On reviewing Medical Literature in India—no report is available However, in religious texts, Bhagwat Gita Chapter 3 diet has been classified as Tamsic, Rajsic and Satwic diet This classification is based totally on the basis of behavioural relationship to food Tamsic diet consists of rotten

food—induces feeling of dullness. Rajsic diet consisting of alcohol, spices, tea, coffee excites the nervous system, whereas Satwic Ahar, consistings of sweets, curd, milk, butter induces tranquillizing actions. Whatsoever might be the basis of such tranquillizing actions, it is clear that a thought was amongst the people to classify the food on the basis of behavioural changes.

Conclusion

The violence in the mind of men and animals is due to particular type of diet. Meat, alcohol, tea, coffee produces aggression, whereas vegetarian diet full of vegetables and fruits has tranquillizing action. It is hoped that many criminals would turn non-violent, if their diet is modified. The search of peace lies within and not outside and it lies in the type of food, one eats.

* To believe in the unreal as the real is to lay the foundation of life after life.

* They who, free of doubts, achieve wisdom, are nearer heaven than earth.

* Even if your five senses function well enough, they yield you nothing real, unless you have insight born of true knowledge.

* Whatever the thing, whatever the kind of thing, to know it in its true nature, is knowledge.

* The ills of life are cured if you root out lust, anger and delusion.

Kural : On true knowoldge
edition by Ka Naa Subramanyam
P. 140

The Sarasvati-bhakt-amara-stotra

Acharya Gopilal Amar

Also known as **Brahmi stotra** this eulogy was published by Principal Kundan Lal Jain of Delhi in the Hindi periodical **Anekanta**, year 37, number 1, taken from an undated manuscript which is there in his own collection At both the places the text is too incorrect to make any sense An attempt to correct it has been made here without any claim of complete success

This eulogy belongs to a peculiar type formed of more than a dozen of eulogies Generally known as the **Bhakt amara-stotra samasya-purti-kavya**, this type has each verse repeating one of the fourths from the corresponding verse of the **Bhakt-amara-stotra** alias **Adi-natha stotra** of Mana-tung-acarya, who is placed by some with Bana bhatta in the seventh century and by some with Bhoja in the eleventh

Subjects of such eulogies are different, that of this one being Sarasvati Here repeated is the last fourth in each verse The repeated portion is made fit in the whole construction of the sentence with such a skill that it looks like an original one in the present case, however, in some of the verses it looks patchy

The author of this enlogy Guru-Dharma simha of fifteenth century, was a disciple of Guru Khema-Karna, as tells the concluding verse He takes up the Svetambara fortyfour-verse tradition and not the Digambara fortyeight verse tradition in the context of the **Bhakt-amara stotra** the questionable four verses beginning as **gambhira-tara-rava**, are the thirtysecond to thirtyfifth once of the Digambara version

Hardly a quality work of poetry this eulogy is full of devotional expressions and philosophic suggestions, but exceptionally with the least hint of Tantra Some of the verses are worth special mention

The seventh one uses twice the name Bharata almost in the present sense of the word, i.e., India : **Bharata-sambhavanam** and **Bharata-visam.** The verse, as literally translated, reads : (The ignorance) of those born in Bharata and of those settled in Bharata, repeating with great devotion the unfailing incantation of your (Sarasvati's) name, is dispelled like the nightls darkness broken through by the rays of Sun; the ignorance like the darkness, covering the globe of earth and the space.

Almost the same type of reference to Bharata (**Yatr-arhatamgana-bhrtam sruti-para-ganam, nirvana-bhumir iha Bharata-varsa- janam**) is seen in one of the verses of the **Nirvana-bhakti** which is ascribed to Acarya Pujya-pada of fifth century A. D. The twelve verses, including the one in question, from that enlogy, are also seen in one of the inscriptions from the Chittorgarh (Rajasthan) pillar of fame, called Kirti-stambha. Apart from this reference, there are many more points in the **Sarasvati-bhakt-amara-stotra** and the Chittorgarh inscriptions, which, when compared, are likely to throw fresh light on the date and other problems related to the Kirti-stambha

The eighth verse, likewise reads : as a drop of water wins the glitter of gem, so the one resorted to your (Sarasvati's) lotus-like feet equals the great poets Sri-harsa, Magha, Bharavi, Kali-dasa, Valmiki, Panini and Mammata (Mamatta).

The first half of the eleventh verse (**Ye tvat-kath-amrta-rasam sarasam nipiya medhavino nava-sudham api n-adriyante**) is just the shadow of first half of the opening verse (**nipiya yasya ksiti-raksinah katham tath-adriyante na budhah subham api**) of Sri-harsa's epic **Nisadha-carita.**

The text of the eulogy, duly edited, is as follows.

सरस्वती-भक्तामर-स्तोत्रम्

श्री धर्मसिंह कृतम् (सम्पादन : गोपीलाल अमर)

भक्तामर-भ्रमर-विभ्रम-वैभवेन लीलायते क्रम-सरोज-युगं यदीयम् ।
निघ्नन्-नरिष्ट भय-भित्तिमभीष्ट-भूमावालम्बनं भव-जले पततां जनानाम् ।।1।।

मत्वैव यं जनयितारमरंस्त हस्ते या संश्रिता विशद-वाग्-वलिभिः प्रसूता ।
ब्राह्मीमजिह्म-गुण-गौरव-गौर-वर्णा स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ।।2।।

मातर्-मयि श्रुत-सहस्र-मुखि प्रसीद वाल मनीपितमय-स्वर-भक्ति-वृत्तौ ।
वक्तु स्तव सकल-शास्त्र-नय भवत्या अन्य क इच्छति जन सहसा गृहीतुम् ।।3।।

ते स्तोत्रमत्र शत-चारु-चरित्र पात्र कर्तुं स्वय गुरु-दरी-जल-दुर्विगाह्यम् ।
वीत-त्रप विड्डपगूहयितु सुराद्रि को वा तरीतुमलमम्बु-निधि भुजाभ्याम् ।।4।।

त्वद्-वर्णना-वचन-मौक्तिक-पूर्णमीक्ष मातर्-न भक्ति-परता (?) तव मानस मे ।
प्रीतिर्-जगत्-त्रय-जन-ध्वनि-सत्य-ताया नाभ्येति किं निज-शिशो परिपालनार्थम् ।।5।।

वीणा-स्वन स्व-सहज यदवाप मूर्छा श्रोतुर् न किं सुवसु-वाक्-पथ-जल्पितायाम् ।
जातो न कोकिल रव प्रतिकूल-भाव तच्-चारु चाम्र-कलिका-निकरैक-हेतु ।।6।।

त्वन्-नाम-मन्त्रमिह भारत-सभवाना भवत्याति-भारत-विशा जपताममोघम् ।
सद्य क्षय स्थगित-भू-वलयान्तरीक्ष सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ।।7।।

श्रीहर्ष-माघ-वर-भारवि-कालिदास-वाल्मीकि-पाणिनि-ममट्ट-महाकवीनाम् ।
साम्य त्वदीय-चरणाब्ज-समाश्रितो य मुक्ता-फल-द्युतिमुपैति ननूद-विन्दु ।।8।।

विद्या-विभा-रसिक-मानस-लालसाना चेतासि यान्ति सुदृशा धृतिमिष्ट-मूर्ते ।
त्वय्यर्थमत्विपि तथैव नवोदयिन्या पद्माकरेषु जलजानि विकास-भाञ्जि ।।9।।

त्व किं करोपि न शिवेन समान-मानान् त्वत्-सम्स्तव ह्व-मुपो विदुपो गुरुह ।
किं सेवयन्नुपकृते मुकृतैक-हेतु भूत्याश्रित य इह नात्म-सम करोति ।।10।।

ये त्वत्-कथामृत-रस सरस निपीय मेधाविनो नव-सुधामपि नाद्रियन्ते ।
क्षीरार्णवाम्बुमुचित मनसाप्यवाप्य क्षार जल जल-निधे रसितु क इच्छेत् ।।11।।

जैना वदन्ति वरदे सति साधु-रूपा त्वामामनन्ति नितरामितरे भवानीम् ।
सारस्वत मत-विभिन्नमनेकमेक यत् ते समानमपर नहि रूपमस्ति ।।12।।

मन्ये प्रभूत-किरणौ श्रुत-देवि दिव्यौ त्वत्-कुण्डलौ किल विडम्बयतस्तरा या ।
मूर्तेर्-दृशामविपय भुवि भाश्-च पूष्णोर् यद् वासरे भवति पाण्डु-पलाश-कल्पम् ।।13।।

ये व्योम-वात-जल-वह्नि-मृदा चयेन काय प्रहर्ष-विमुखास्-त्वदृते श्रयन्ति ।
जाता नवाम्बु-जडताद्यगुणानणून् मा कस्-तान् निवारयति सचरतो यथेष्टम ।।14।।

अस्मादृशा वरमवाप्तमिद भवत्या सत्यावृतोरु-विकृते सरणि न यातम् ।
किं चाद्यमिन्द्रमनघे सति मारदेश्र किं मन्दराद्रि-शिखर चलित कदाचित् ।।15।।

निर्माय शास्त्र-सदन यतिभिर्-जयैक प्रादुष्कृत प्रकृति-तीव्र-तपो-मयेन ।
उच्छेदितेहनि लये सति गीयसे चेद् दीपोपरस्-त्वमसि नाथ जगत्-प्रकाश ।।16।।

यस्या अतीन्द्रिय-गिरो गिरि सप्रशस्यस्-त्वा शाश्वती स्व-मत-सिद्धमहो मदीयम् ।
ज्योतिष्मती च वचसा तनु-तेज आस्ते सूर्यातिशायि महिमासि मुनीन्द्र लोके ।।17।।

स्पष्टाक्षरं सुरभि-शुभ्र-सम-द्वि-शोभं जेगीयमान-रसिक-प्रिय-पंचमेष्टम् ।
देदीप्यते सुमुखि ते वदनारविन्दं विद्योतयज्-जगदपूर्व-शशांक-विम्बम् ।।18।।

प्राप्नोस्यमुत्र सकलावयव-प्रसंग-निष्पत्तिमिन्दु-वदने शिशिरात्मिका त्वम् ।
शक्ति जगध्यदधरामृत-वर्षणेन कार्यं कियज्-जल-धरैर्-जल-भार-नम्रैः ।।19।।

मातर्-यथा मम मनो रमते मनीषे मुग्धांगने नहि तथा नियमाद् भवत्याम् ।
तस्मिन्-नमेय-गुण-रोचिषि रत्न-जाते नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेपि ।।20।।

चेतस्-त्वयि श्रमणपा तयते मनस्वी स्याद्-वाद-निम्न-नयतः प्रयते यतोहम् ।
योगं समेत्य नियम-व्यय-पूर्वकेन कश्चिन्-मनो हरति नाथ भवान्तरेपि ।।21।।

ज्ञानं तु सम्यगुदयस्यनिश त्वमेव व्यत्यास-सशय-धियो मुखरा अनेके ।
गौरांगि सन्ति बहु-भाक् ककुभोर्कमन्याः प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदशु-जालम् ।।22।।

यो रोधसो मृति-जनी गमयत्युपास्य जाने स एव सुतनुः प्रथितः पृथिव्याम् ।
पूर्वं त्वयादि-पुरुष सदयोस्सितिसाध्वि नान्यः शिवः शिव पदस्य मुनीन्द्रपन्थाः ।।23।।

दीव्यद्-दया-निलयमुन्मुखि दक्षि-पद्मं पुण्य-प्रपूर्ण-हृदय वरदे वरेण्यम् ।
त्वद्-भू-घनं सघन-रश्मि-महा-प्रभावं ज्ञान-स्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ।।24।।

कैवल्यमात्म-तपसाखिल-विश्व-दर्शी चक्रे ययादि-पुरुषः प्रणय प्रमायाम् ।
जानामि विश्व-जननीति च देवते सा व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुपोत्तमोसि ।।25।।

सिद्धान्त एधि फलदो बहु-राज्य-लाभो न्यस्तो यथा जगति विश्वजनीन-पन्थाः ।
विच्छित्तये भवति तैरिव देवि मान्ये तुभ्य नमो जिन भवोदधि-शोपणाय ।।26।।

मध्याह्न-काल-विसृतां सवितुः प्रभ ये सेवेदिरे गुणवति त्वमतो भवत्या ।
दोपांस इष्ट चरणैरपरैरभिज्ञैः स्वप्नान्तरेपि न कदाचिदपोक्षितोसि ।।27।।

हारातरस्थमपि कौस्तुभमत्र गात्र-शोभां सहस्रगुणयत्युदयास्त-गीर्-या ।
विद्यास्यतस्तव सतीमुपचारि-रत्न विम्ब रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ती ।।28।।

अज्ञान-मात्र-तिमिर तव वाग्-विलासा विद्या-विनोदि-विदुपां महतां मुखाग्रे ।
निघ्नन्ति तिग्म-किरणा निहिता निरीहे तु गोदयाद्रि-शिरसीव सहस्र-रश्मेः ।।29।।

पृथ्वी-तल-द्वयमपायि पवित्रयित्वा शुद्ध यशो धवलयत्धुनोर्ध्व-लोक ।
प्राग्-लङ्घवेत् तेथ विद महिम्नाम् उच्चैस्-तट सुर-गिरेरिव-शातकौम्भम् ।।30।।

रोमोर्मिभिर्भुवन-मातर्गिव त्रिवेणी-संगः पवित्रयति लोकमदोङ्गवर्ति ।
विभ्राजते भव-गति त्रि-वली-पथ ते प्रख्यापयत्-त्रि-जगतः परमेश्वरत्वम् ।।31।।

भाष्योक्ति-युक्ति गहनानि च निर्ममीशे यत्र त्वमेव सति शास्त्र-सरोवराणि ।
जानीमहे खलु सुवर्ण यानि वाक्य-पद्मानि तत्र विबुधा परिकल्पयन्ति ।।32।।

प्राग्-वैभव विजयते न यथेतरस्या ब्राह्मि प्रकाम-रचना-रुचिर तथा ते ।
ताटङ्कयोस्तव गभस्तिरतीन्दुभान्वोस्-तादृक् कुतो ग्रह-गणस्य विकासिनोपि ।।33।।

कल्याणि सोपनिषदप्रसभ प्रगृह्य वेदानतीन्द्रज दरो जलधौ जुगोप ।
भीष्म विधेरसुरमुग्र-रुपापि यस्-त दृष्ट्वा भय भवति नो भवदाश्रितानाम् ।।34।।

गर्जद्-घनाघन-समान-तनुर्गजेन्द्र-विष्कुम्भ कुम्भपरिरम्भ-जयाधिरुढम् ।
द्वेष्योपि भूप्रसरदश्च-पदाति सैन्यम्-आक्रामति क्रम-युगाचल सश्रित ते ।।35।।

मामासृगस्थि-रस-शुक्र-सलज्ज-सज्जा-स्नायूदिते वपुषि पित्त-मरुत्-कफाद्यै ।
रोगानल चपलतावयव विकारैम्-त्वन्नाम-कीर्तन-जलशमयत्यशेषम् ।।36।।

मिथ्या प्रवादि निरत विधिकृत्यसूर्यम् एकात-पक्ष-कृत-कक्ष-विलक्षतास्यम् ।
चेतोस्त-भी स परिमर्दयते द्वि-जिह्व त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पु स ।।37।।

प्राचीन कम-जनताचरण जगत्-सू-मौढय मदाढ्य दृट-मुद्रित-सान्द्र-तन्द्रम् ।
दीपाशु-यष्टि-मय-सद्म सुदेवि पु सा त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ।।38।।

साहित्य शाब्दिक-रसामृत-पूरिताया सत्तर्क-कर्कश-महोर्मि-मनोरमायाम् ।
पार-निरतरमशप-कलिदिकाया त्वत्पाद-पकज-वनाश्रयिणो लभन्ते ।।39।।

सस्थैरुपर्यु परि-लोकमलोकमज्ञा व्योम्नो गुरुज्ञ-कवि-नि सह-सत्यमुच्चै ।
अन्योन्य मान्यमिति ते यदवैमि मातस्-आस विहाय भवत स्मरणाद् व्रजन्ति ।।40।।

देवा इयन्त्यजनिमम्ब तव प्रसादात् प्राप्नोत्यहो प्रकृतिमात्मनि मानवीयाम् ।
व्यक्त त्वचिन्त्य-महिमा प्रतिभाति तिर्यग् मर्त्या भवन्ति मकर-ध्वज-तुल्य-रुपा ।।41।।

ये चानवद्य-पदवी प्रतिपद्य पद्यै त्वच्छिष्यता-वपुषि वास-रति लभन्ते ।
नोऽनुग्रहात् तव शिवास्पदमाप्यते यत् सद्य स्वय विगत-बन्ध-भया भवन्ति ।।42।।

इन्दो कलेव विमलापि कलक-मुक्ता गगेव पावन-करी न जलाशयापि ।
स्यात्तस्य भारति सहस्र-मुखी मनीषा यस्-तावक स्तवमिम मतिमानधीते ।।43।।

योऽजयो कृत-जयो गुरु श्रेम-कर्ण पाद-प्रसाद-मुदितो गुरु-धर्म-सिंह ।
वाग्-देवि भूम्नि भवतीमिरभिज्ञ सधे त मान तु गमवशा समुपैति लक्ष्मी ।।44।।

On Locating Sruta-Knowledge

Dr. S. C. JAIN
Research Officer,
Bharatiya Jnanpith, New Delhi.

Jaina epistemology gives us five types of knowledge, enumerated as sensuous (mati), scriptural (sruta), clairvoyant (avadhi), telepathic (manah paryaya) and perfect (kevala) [1] All organisms are supposed to possess the capacity for one or the other type of sensuous knowledge along with a sensory apparatus to accomplish its function. The order of the appearance of such senses in the organisms has also been given a difinite formulation beginning from the sense of touch and ending with that of hearing, the intermediate senses being those of taste, smell and sight.[2] Sruta knowledge, considered etymologically. may appear to be connected with the fifth sense i. e. of hearing. When it has been contended that sruta knowledge requires for its emergence the sensuous knowledge[3], and their accompaniment is necessary and invariable one would likely feel like locating as many types of sruta knowledge as there may be in the sensuous one. To cover the whole situation under a common formula they have also defined sruta knowledge as an extension or construction on sensuous knowledge in general, thereby giving it a new type and also a new object for comprehension.[4] The etymological meaning of the term sruta i.e. 'heard' is extended to include, for providing ground for sruta knowledge, all other types of sensuous knowledge. Thus 'sruta' (heard) is only a token nomenclature intended to take the entire denotation of the term sensuous knowledge into its womb.

At the same place[5] the kinds of sruta knowledge have also been given in terms of Jaina literature and fields of study as preached by the Omniscient Lord and the saints coming after Him. This is like limiting the field of sruta knowledge with reference to a particular context which requires minute perception and understanding. Such sruta knowledge will be possible only in the case of human beings of high intellect capable of deep thinking and understand-

ing For this, it is supposed that one more sense called the mind (manas), not the mind of psychology, comes into existence to facilitate these higher functions of the soul This sense of mind is supposed to be located in the human organism at some central place [6] or also as inhabiting the entire human body[7], but is not spaceless like the mind in Psychology This concept of the sense of mind or manas is unique in Jaina philosophy and plays a very importsnt part, as it helps the attainment of philosophical knowledge

We come across another division of living beings into those that have a mind and those that do not possess a mind, the terms to donate them being samanaska —with mind and 'amanaska —without mind [8] Jaina philosophy also holds that only a part of the five sensed organism are with mind and the rest beginning from the one-sensed ones are without mind [9] When Devanandi, introducing the aphorism (II 21) of the Tattvarthasurta regarding the subject-matter of sruta knowledge, mentioned that the function of the various senses would not be possible without the aid of the sense of mind,[10] the question arises that existence of this sense of mind (manas) must be admitted in organisms which are held to be without mind to make the function of the senses possible in them To reconcile these positions it has been contended that an unevolved or to de consonant with the situation, partially evolved mind should be supposed to exist in all such organisms, and the implication of the prefix 'a in the term amanska should be taken to imply an unevolved mind The attempt may be appreciated in the direction of reconcilation but is very likely to place us in other difficulties

Actually speaking the process of knowledge consists of sensuous knowledge and extension on it To, quote from Western philosophy, B Russell draws a distinction between knowledge by acquintance and knowledge by description which may be seem to run parallel to sensuous and sruta types of knowledge of Jaina philosophy [11] A similar view is given by W T Stace as 'The mind starts from a certain fundamental data which we call the given and it builds upon these data the whole fabric of knowledge by means of construction and inferences between constructions' [12] He again emphacises the fact as knowledge is everywhere tied to the given That is the first principle of epistemology [13] The correspondence between the Jaina way of thinking and the views of these Western philosophers may not agree in all details, but we are able to note the distinction between the two types of knowledge After acquiring sensuous knowledge through various senses, the mind with its manipulating capacity starts to work, and supplements the process of knowledge so as to make it useful in practical life As we recognize a capacity for sensuous knowledge or rather various types of sensuous knowledge in the from of dest-

ruction-subsidence (ksayopasama) of the barring karma-forces in Jain philosophy, so the capacity for extension of and construction on sensuous knowledge has also been recognised in Jaina works in the form of destruction-subsidence of the barring karmas of sruta knowledge.[14] This state of destruction-subsidence of karmas does not only give a start to such knowledge but is also responsible for its continuance. This would mean that no mind is required for giving a start to the process of sensuous knowledge, as Devanandi has been taken to propound, neglecting the context in which he has given the statement. But at the same time if we keep the kinds of sruta knowledge as enumerated by Umasvami, we certainly agree that knowledge of Jaina literature will be possible only where there is the emergence of the sense of mind (manas) to extend what we get from hearing the holy words of the scriptures. Perhaps it is in this context that sruta knowledge has been equated with scriptural knowledge, and its nomenclature borrowed.

It is also mentioned that there is kind of sruta knowledge termed as 'paryaya', possessed by a least developed one-sensed organism.[15] This life, being least developed and having only one sense i. e. of touch as means of acpuiring sensuous knowledge, we must take it the least of sensuous knowledge upon which it is able to give rise to sruta knowledge called 'paryaya'. The devolution of life in respect of its faculty of knowledge is not possible below this stage of minimum acquirement; and, for this reason, it has been called 'uncovered' knowledge. It will not be consistent to hold that this minimum knowledge does not require the destruction-subsidence of the karmas barring the emergence of sensuous and sruta types of knowledge in a least developed organism. In fact all imperfect (destrucrive-subsidential) types of knowledge are the result of the interaction between the soul's faculty of knowledge and the barring forces of karmas. If such is the position, coming to our theme, what type of partially evolved mind we can think of to exist in such organisms. As regards the genesis of sensuous knowledge in all its four stages i e. the first cognitive menifestion after the contact between the object and the sense-organ (avagraha), inclination towards further knowledge (iha), conclusive knowledge (avaya) and retention of such knowledge (dharana)[18], we note that the function of the physical senses terminates in the first stage, and further stages are impelled by the knowing capacity (ksayopasama) of the soul. Similarly the sixth sense of mind will make the mental sensuous knowledge alone possible, after which its function will be over. The other stages of the mental sensuous knowledge will follow the way as seen in case of the other senses. With this data as obtained through the instrumentality of the six senses, the capacity for sruta knowledge begins to function by way of extension and construction. The position so far explained does not allow scope for a sense

of mind for the process of extension and construction The sense of mind, being a highly developed one, will certainly lead to a high type of mental sensuous knowledge, and the sruta knowledge based on it will certainly be of a high order This is truly the philosophic knowledge of Jaina tenets expounded in the Jaina scriptures This is the sruta knowledge of Umasvami, and it should be distinguished from sruta knowledge in general

References —

1 Umasvami Tattvarthasutra, I, 9
2 Ibid , II 19
3 Ibid , I-20
4 Nemicandra, Gommtasara, Jivakanda, verse 315
5 Umasvami Tattvarthasutra, I, 20
6 Tattvarthasutra (Hindi), Pt Sukhlal Sanghvi, p 86
7 C R Jain Jain Psychology, p
8 Umasvami Tattvarthsutra, II, 11
9 Akalanka Tattvarthavartika, II, 11 3
10 Devanandi Sarvarthasiddhi, p 98
11 B Russell Analysis of Mind, p 81
12 W T Stace The theory of knowledge and Existence, p 45
13 Ibid , p 47
14 Devanandi Sarvarthasiddhi, pp 61 and 67
15 Nemicandra Gommatasara, verse 319
16 Umasvami Tattvarthasutra, I 15

The Supra-rational in Jainism

Gyan Chand Biltiwala

Every religious and cultural system has an important portion of the extra-rational in its framework. In Buddhism, the Buddha takes one after the other births to liberate men and he himself would go to Nirvana in the end. Krishna says in the Gita that he comes when the Dharma is threatened in the world. Hindu Vedas and Puranas fill their conceptual framework with many extra-rationalities e. g., stories regarding the creation of the Universe, the creation of the varnas from the mouth, hand, feet etc., of the Brahma, that Sugrïva etc., were monkeys, and bear and so on.

Here we will discuss some of the extra-rationalities integratad in the Jaina framework. Let us first state what we mean by the extra-rational. It is that like which we have no experience and so cannot explain rationally. It may be both supra and infra. We find Jain Puranas studded with the supra ones.

The Jain Puranas give us man's age as of lacs of years and his body's stature as 500 bows and more This we do not take as particularly extra-rational. There are men both big in body and age as well as small ones, and modern investigations avouch that there were animals really with enormous size in the past

The talk about riddhies (रिद्धी) earned by munis through tapasya are indeed extra-rational to us For example, a small room where a muni possessing Akshina-mahanas-riddhi (अक्षीण महानस ऋद्धि) is sitting may accomodate a full horde of Chakravarti's army with all his elephants, horses etc., the pot from which he has been served food may not be emptied that day even after serving food to the Chakravartin's army. Muni Vishnu Kumar with Vikriya-riddhi (विक्रिया-ऋद्धि) could cover the whole of man's earth in two steps, placing one on the mountain Sumeru and the other on the Manushottara mountain. Not only munis but the Shalakapurashas (शलाकापुरुष) like the Charavartins and Narayanas

do possess miraculous powers A Charavartin can make 96000 thousad persons of himself at one and the same time with his Vikriya shakti Again Rishabhdeva as a mun puts his foot on the Earth lightly as it may not descend to the bottom of the Universe Bali muni just prosses his thumb that Rawan the Prati-Narayan, begins to weep under the mount Kailash which he was shaking from below with his Vioyabala (विद्यावल) The Tirthankara sits in the air four fingers above his seat, he speaks without opening his lips from all his body, his speech is heard by all the listeners in their different languages without being translated by any divine or human agency Chakravartin Bharat takes food but does not make nihara (passes urine or excreta), so do Tirthankara in thair household period An omniscient takes no food, is not tired and does not sleep for whole of his life

Tirthankaras Chakravartins, Narayans, Baladevas etc, are persons having miraculous powers and so have been accepted as persons singing in whose praise binds one with the auspicious karmas and destroy the inauspicious ones

Our experience of man and his abilities today and as we have known through the historical past does not make us belong to the culture of the Jaina Puranic gaints who had miraculous powers from their birth obtained through their tapasya and in the end became omniscient Parmatamans

Man in the past in our modern reckoning was miserable born and died suffered illnesses was exploited and killed and is so miserable today Again, what is our future picture ? The same Individually, death is our destiny or a new birth somewhere but no hope of birthlessness there is really no such idea in our minds and no attempts on our part to actualise it Collectively, more or less the same as at present

Indeed if we feel dissatisfied with the historical past of man and his present miserable state and want to have a brighter, happier future, both individually and collectively, we should be conscious of our dwarfness in comparison with the Tirthankaras, Chakravartins Narayanas Mahamunis of Jaina Puranic lore and try to understand the secrets of their giant stature The road to full growth and salvation lies in their direction and in no other

Interest in Jaina studies have grown in scholars in some past decades However caution should be borne in mind that they do not clip the supra-rational element in their zeal for the rational explanation Like the poet Kaladhar in Bharatesh Vaibhava of Ratnakar Varni they should know that they

are ordinary human beings, while the Tirthankaras, Chakravartins were extra-ordinary ones with miraculous powers. Like Procrustes if they tried to fit the spiritual giants of Jaina tradition into the bed of their ordinary rationality, reason in their case would also be called 'Satan's whore', 'a hodgoblin of the little minds'. The name of these great personages is 'Mantra' to us ordinary people only because of their miraculous powers. Without these powers they are as ordinary as we are and so not so meaningful, in fact, for us. The present Ayodhya and Sammed Shikhar are sacred to us no doubt, but they do not compare with their descriptions at the times of Rishabhdeva and other Tirthankaras. This fact does not in any way reflect adversely on their description in Puranas. What can we argue in favour or against the decsription of Ayodhya of crores of years on the basis of the present Ayodhya ?

H. No. 1318
Behind School of Arts,
Jaipur-3

* A desire of great achievement is itself greatness, the desire to live without achieving anything is smallness indeed.

* Birth is the same for all, men become distinguished by their actions in their lives.

* The high, even not high, may not be high; the low, even when low, may not be low.

* That man is truely great who can do rare and great things.

* The base among men do not desire the company of great men and carefully avoid partaking of their nature.

Kural, Chapter, 98
Translated by Ka Naa Subramanyam.

Horror of Extinction of Jain Samskras

□ RAMESH JAIN

Every body born and brought up in a Jain family writes ' JAIN ' after his/her name This is a healthy symptom, but this is only superficial and not intrnisic at all for the simple reason that one is by and large unable to explain why he or she writes Jain and that what does he or she know about Jainisim

The present system of education below the college level is mainly responsible for the aforesaid ignorance amongst youth Wherever they take education including Jain secondary or Higher secondary schools, they are not taught principles of Jain religion at all On the contrary, if they take education in a Christian Mission School they learn a lot about christianity and Christian religion St Xaviers St Angela Sophias, all Christian Mission Schools do not depend on Government aid at all and therefore they are not bound to abide by the Govt rule of not imparting religious education From this angle, they are free But alas, our Jain schools are Jain school only by name and not in spirit at all They fear to lose Govt aid in case Jain religion is taught to children How ridiculous ?

How long the senior persons will survive ? Ultimately the younger generation will replace them But they will not know even ABC of Jainism At least the basic principles and importance of Namokar Mantra to be recited every morning should be brought home to them

If need be even special summer vacation classes with incentive should be held and organised sectorwise to attract as many youth as possible to breathe under this canopy of universal religion

We know that only two types of persons can survive in the world Number one who change themselves according to the society prevalent around them

Number two, those who can change the society itself by their chtulence.

Such persons are rare and known as great persons like Lord Mahaveer, Mahatma Gandhi etc.

Jains are a small community in India, and in the world at large. If it is not capable of influencing others and teach its ways of non-violence, vegetarianism etc., its phliosophy, Its values, it will have to love its life in the ways others are living even though those may be quite contary to Jain philosophy and ethics. It is so happening now, and is a great mistfortune not only for the community but for the whole of humanity. Jains becoming so non-Jain, Mahavir's teachings of Ahimsa and Aparigraha will get lost leaving the world fiercely violent and self-doomed. Hence, teaching Jain principles in schools, at least to Jain children, is not necessary only for the existence of Jain community as such, but is also good for the whole of humanity.

MADHUVAN
Krishna Marg, C-scheme,
Jaipur.

* He who has arrived at truth by meditation of the true nature of things, will not be subject to rebiriths.

* To be born is to wallow in many delusions; escape from this is to be achieved by knowing the red flower of truth.

—Kural

'मास खाकर अपने पेट को कब्रिस्तान मत बनाओ" —जार्ज बर्नाडशा

दुनिया के प्रत्येक प्राणी पर रहम करो
क्योंकि खुदा ने तुम पर बडी मेहरबानी की है। —पैगम्बर मोहम्मद साहब

यह अच्छा है कि कभी मास न खाओ, शराब न पीओ न ऐसा कोई काम करो जिससे तुम्हारा भाई दु खी हो या निर्बल हो । —महात्मा लुकस

विज्ञापन

Advertisement

राजस्थान जैन सभा उन सभी विज्ञापन दाताओं की आभारी है जिन्होंने इस स्मारिका मे अपने प्रतिष्ठान का विज्ञापन देकर अपना सहयोग प्रदान किया है ।

अरकतिया (करोत) के मुख नहीं, नहीं गौचके दांत ।
जै नर धीरे बोलते, इनसे बचिये सन्त ।।

मिथ्या भाषी साच हू, कहे न माने कोय ।
भाड पुकारे पीर वश, मिस समझे सब कोय ।।

जोलोग मांस और शराब का सेवन करते हैं
उनके शरीर, वीर्य आदि धातु दुर्गन्ध के कारण दूषित हो जाते हैं।

कहता है यहाँ बचपन हस हस के जवानी से
वाकिफ है नहीं क्या तू उस बीती जवानी से ।
यौवन की भरी गागर छलकेगी तेरी इक दिन
बदलेगा समाँ सब ही ये वक्ते खानी से ॥

भगवान महावीर की पावन जयन्ती के अवसर पर

शुभकामनायें

मै० सी० कान्ता ट्रेडर्स

जयपुर

जो धन पाप रहित निष्कलंक रूप से प्राप्त किया जाता है,
उससे धर्म और आनन्द का स्रोत बह निकलता है।

मन की पवित्रता और कर्मों की पवित्रता आदमी की संगति पर निर्भर है ।

विनय बिना विद्या नही विद्या बिन नहीं ज्ञान ।
ज्ञान बिना सुख नही मिले, यह निश्चय कर जान ।।

East India Udyog Limited

(Transformer Division)
145 G T Road Sahibabad, Ghaziabad-201005

Manufacturers of Power & Distribution Transformers

Phone 8-61205
8-61207
8-61208

Telex 31-75341 ETS IN
Gram TRANSWITCH, GHAZIBAD

दिन दश आदर पायक, करले आप बखान ।
जब लग काक श्राद्ध पक्ष, तब लग तुम्ह सम्मान ।।

With best compliments from ·

For a healthy Cooking medium
Always insist on

PARAS
Double Refined Rapeseed
Oil

RAJNI
Double Refined Groundnut
Oil

Kesri Vanaspati Products Ltd.

works
Village Maharajpura
Newal Distt Tonk

Tel Nos 149 & 139

Redd Office
P-14, Sahdev Marg
C Scheme, Jaipur-302005

Phone 520019, 520717, 520927

"संसार की तृष्णा विष बेल कही गई है"

भगवान महावीर की पावन जयन्ती के अवसर पर

शुभकामनायें :
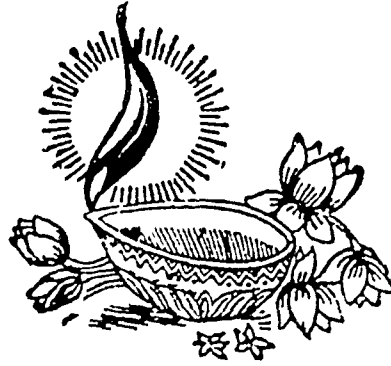
इलेक्ट्रो सिन्डीकेट

पेनल बोर्ड निर्माता :

12, तिवाड़ीजी की बगीची, पोलोविक्ट्री के सामने

जयपुर (राजस्थान)

ARCO R

मिला मनुष्य जन्म नाजुक तन, इस पर तु कभी न इतराना
इक दिन जाना है जग वालो इसमें तू न हो दीवाना

विनय बिना विद्या नहीं, विद्या बिन नही ज्ञान ।
ज्ञान बिना सुख नही मिले, यह निश्चय कर जान ।।

Shree Deepak Industries

Galvanizers & Manufacturers of :

"Deepak" & "Flower" Brand G. I. R. Buckets and
Agricultural Impliments

Factory :
110, Industrial Area Jhotwara.
JAIPUR-302012

Office :
Inside Hathi Babu Ka Bagh
JAIPUR-302006

दिन दश आदर पायके, करले आप बखान ।
जब लग काक श्राद्ध पक्ष, तब लग तुझ सम्मान ।।

With best compliments from :

Ganeshdas Bherulal Pungalia

Jewellers
2372, Pungalia House, M. S B. Ka Rasta
JAIPR-302003 (Rajasthan)

Tel. No 45065
Resi 565065
Offi. 565397

किसी की टीका या निन्दा करके उसको सुधारने की आशा करना कीचड से कीचड धोने के समान है।

रागी के उपदेश मे स्वार्थ का अश अवश्य रहता है किन्तु वीतरागी का उपदेश परमार्थोपदेश है।

"वस्तु का स्वभाव ही धर्म है,
जो जिस पदार्थ का स्वभाव है वही उसका धर्म है।"

पापियों से परहेज रखने के बजाय अधिक हित पापों से परहेज करने में है ।

मनुष्य कहलाने योग्य वही है जिसने इन्द्रिया और मन वश किया है।

संसार में सभी को जान प्यारी है, मरना कोई नहीं चाहता,
अतः किसी प्राणी की हिंसा मत करो। —भगवान महावीर स्वामी

अहिंसा परमोधर्म:

पराधीन दृष्टि वाला हमेशा पराधीनता ही ढूँढता है
और स्वाधीन दृष्टि वाला स्वाधीनता को ढूँढता (देखता) है।
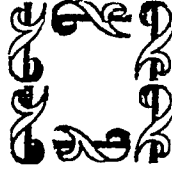
निष्ठुर, कर्कश आदि वचनों को छोड़ने से वचन शुद्धि होती है।

दहेज, परदा प्रथा, मृत्यु भोज, आडम्बर आदि कुरीतियां
जैन समाज और जैन संस्कृति के लिए अभिशाप है।

केवल गुणियों की सेवा पूजा करने से गुणी नहीं बन सकते
किन्तु गुणों की सेवा से अवश्य बन सकते हैं।

कहता है यही बचपन हस हस के जवानी से वाकिफ है नहीं क्या तू उस बीती जवानी से ।
यौवन की भरी गागर छलकेगी तेरी इक दिन, बदलेगा समां सब ही ये वक्ते खानी से ॥

रहे उलफत में अक्सर दोस्त ऐसे मोड़ आते हैं ।
अजी गैरों की क्या अपने भी उस क्षण छोड़ जाते हैं ।।
मगर बेमहर दुनियां जब दिलों को तोड़ देती है ।
तभी भूले हुए कुछ दोस्त अक्सर याद आते हैं ।।

Cymex Time Pvt. Ltd.

19, Outside, Surajpole,
Udaipur

सोना चांदी इन्सां ने कमाए है,ये फूल मौहब्बत के इन्सा ने खिलाए है ।
कहते है फरिश्ते भी दौलत की दीवानी सुन ये महलो मकां सारे इन्सां ने बनाए हैं ।
रीता होगा जीवन अगर प्यार नही होगा, बिना प्यार के जीवन का श्रृंगार नही होगा ।

With best complimets from :

Indo German Electronics

613, Vidyadhar Ka Rasta,
Jaipur

मनुष्य कहलाने योग्य वही है जिसने इन्द्रिया और मन वश किया है।

Phone 77812
Telex No 0365-2646

Ganpati Plastfab Limited

Manufacturer of Hope/PP Woven Sacks

Regd. Office :

D-157/A, Kabir Marg, Bani Park
Jaipur-302 016

Works :

Itarava Road, Alwar-310001

Phone 21290
23362

एक वोल और सच्चा तोल यह व्यापारिक उन्नति के लिए सच्चा साधन है।

With best compliments from :

Citizen Silk Mills Limited

Leading Processors of Exquisite Quality
and
Manufacturers of Synthetic Suiting & Shartings

Factory :
Sp. 1, Industrial Area,
Banswara

Tel. 2227

Sales Office :
27-29, Dr. M. B. Valkar Street
Bombay-400 002
Tel. : 250353
292595
292822
Cable : CITYFAME

"परिग्रह दुख का कारण है" —भगवान महावीर

With best compliments from :

Sushil Auto Stores

Automobile Dealers and Government Order Suppliers

Authorised Distributors for :
Hindusthan Trucks, Ambassador, Trekker & Contessa Parts

Branch Office :
B-85/86, Kalwar Scheme
Near Gopal Bari,
Jaipur-302 006

M. I. Road, Near Deluxe Hotel
Post Box No. 206
Jaipur-302 001

Phone : 68418 Shop 6783 Resi., 702550 Branch Office

रहे उलफत में अक्सर दोस्त ऐसे मोड़ आते हैं।
अजी गैरों की क्या अपने भी उस क्षण छोड़ जाते हैं।।
मगर बेमहर दुनिया जब दिलों को तोड़ देती है।
तभी भूले हुए कुछ दोस्त अक्सर याद आते हैं।।

शास्त्र ज्ञान और बात है और भेद ज्ञान और बात है। त्याग भेद ज्ञान से भी भिन्न वस्तु है। उसके बिना परमार्थिक लाभ होना कठिन है।

शान्ति विजय ज्वैलर

दी ऑबेरॉय, न्यू देहली-110003

(इण्डिया)

वास्तविक सुख बाह्य पदार्थों में नहीं है। सुख तो आत्मानुभूति में है। किन्तु उस निराकुल सुख का आत्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध होते हुए भी मोहवश हम उसे अन्यत्र खोजने में ही लगे हुए हैं।
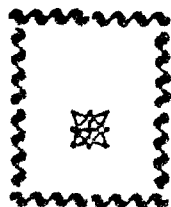
पहले तो राग करना ही नही, यदि करना ही हो तो सत्यपुरुष पर करना; इसी तरह पहले तो द्वेष करना ही नही और यदि करना हो तो कुशील भाव पर करना ।

क्रोध, मान माया और लोभ ये वास्तविक पाप हैं। इनसे बहुत कर्मों का उपार्जन होता है। हजार वर्ष तप किया हो परन्तु यदि एक बार दो-एक घडी भी क्रोध कर लिया तो सब तप निष्फल हो जाता है।
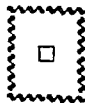
"तृष्णा प्राणी को नदी की तरह पतन की ओर ले जाती है"
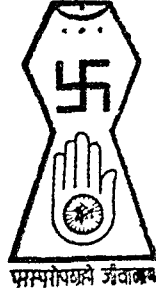
With best compliments from :

Sobhagmal Gokalchand

Jewellers

Poonglia Building, Johari Bazar
JAIPUR (India)

Gram . "SHIKHAR"
FAX : 561644
Telex : 365-2213 EMRU IN
Phones : 563030, 561042

स्वार्थ का चश्मा लगे हुए नैनों में झांका जाता हो,
हर क्षण क्षण का लेखा जोखा कागज पर टांका जाता हो।
क्या खाक करेगा ज्ञान और विज्ञान तरक्की इस भू पर
मानव का मूल्य जहां केवल पैसे में आंका जाता हो ॥

Pragati Enterprises

INDUSTRIAL ORDER SUPPLIERS

Dhula House Bapu Bazar, JAIPUR

शास्त्र ज्ञान और बात है और भेद ज्ञान और बात है। त्याग भेद ज्ञान से भी भिन्न वस्तु है। उसके बिना परमार्थिक लाभ होना कठिन है।
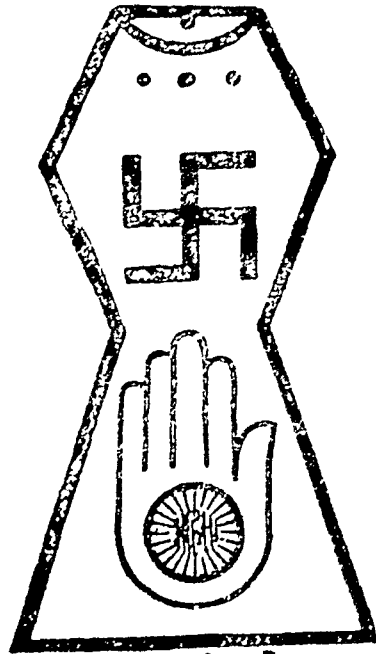
वास्तविक सुख बाह्य पदार्थों मे नहीं है । सुख तो आत्मानुभूति में है । किन्तु उस निराकुल सुख का आत्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध होते हुए भी मोहवश हम उसे अन्यत्र खोजने मे ही लगे हुए हैं ।

घर छोड़ने, मौन धारण करने और देशवृत्ति-महावृत्ति का भेष धारण कर लेने मात्र से कल्याण नहीं, कल्याण का कारण तो अन्तरंग की निर्मलता से है।

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित :

रामसुख चुन्नीलाल

A-5, अनाज मण्डी, चाँदपोल

जयपुर

फोन **74931**

जो धन पाप रहित निष्कलंक रूप से प्राप्त किया जाता है,
उससे धर्म और आनन्द का स्रोत बह निकलता है।

GLAVES CORPORATION

A-406 A, ROAD No. 14, V. K. I AREA,
JAIPUR-302013

Phones : Office 832324
Resi. 65562

बाह्य पदार्थ कल्याण के न बाधक है न साधक है।
साधक बाधक तो अपनी ही शुद्धा शुद्ध परिणति है।

हार्दिक शुभ कामनाओ सहित

परनामी परफ्यूमरी वर्क्स

आदर्श नगर, जयपुर

सदा न फूले केतकी, सदा न श्रावण होय,
सदा न यौवन थिर रहे, सदा जियत नही कोय ।

'लोभी व्यक्ति सदा दुखी रहता है"
—भगवान महावीर

"तृष्णा प्राणी को नदी की तरह पतन की ओर ले जाती है"

स्वार्थ का चश्मा लगे हुए नैनो से झांका जाता हो,
हर क्षण क्षण का लेखा जोखा कागज पर टांका जाता हो।
क्या खाक करेगा ज्ञान और विज्ञान तरक्की उस भू पर,
मानव का मूल्य जहां केवल पैसे में आंका जाता हो॥

"महावीर के गुण-गान शब्दों में नहीं आचरण में उतारो,
उनको मन्दिर में नहीं अन्दर में निहारो"

VARDHAMAN UDYOG

Dealers in :

Silicon Steel Sheet & All Types of Sheet Cutting

K 15/5-E Block J J. Colony Khyala, New Delhi–110018

Phone : Resi. : 5588242
Fac. : 5435587

Phone : Off. : 5709315
5700671
5702679

जिसे क्षमा का स्वाद आ गया वह क्रोधाग्नि में नहीं जल सकता।
पुस्तक अभ्यास का फल आभ्यान्तर शांति है, यदि आभ्यान्तर
शांति न आई तब पुस्तक अभ्यास केवल क्लेश ही है।
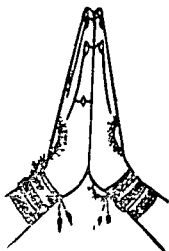
जो धन पाप रहित निष्कलंक रूप से प्राप्त किया जाता है,
उससे धर्म और आनन्द का स्रोत बह निकलता है।
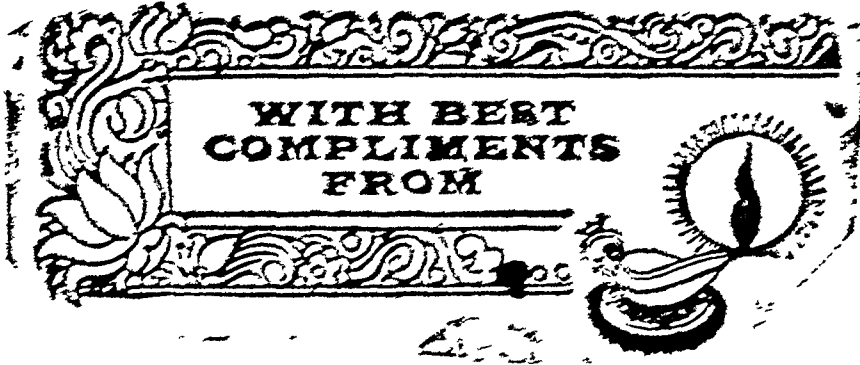
RATI STEELS

(Iron & Steel Merchants & General Order Suppliers)
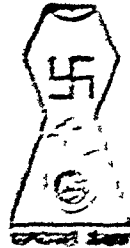
Z-222, LOHA MANDI, NARAINA,
NEW DELHI-110 028

Phones : 5700148

जब तक अन्तरग परिग्रह न हटेगा तब तक बाह्य वस्तुओ के समागम मे हमारी सुख दु ख की कल्पना बनी रहेगी। जिस दिन वह हटेगा, कल्पना नष्ट हो जायगी और बिना प्रयास के शान्ति का उदय हो जायेगा।

क्रोध, मान माया और लोभ ये वास्तविक पाप हैं। इनसे बहुत कर्मों का उपार्जन होता है। हजार वर्ष तप किया हो परन्तु यदि एक बार दो-एक घडी भी क्रोध कर लिया तो सब तप निष्फल हो जाता है।

शास्त्र ज्ञान और बात है और भेद ज्ञान और बात है। त्याग भेद ज्ञान से भी भिन्न वस्तु है। उसके बिना परमार्थिक लाभ होना कठिन है।

'अ' जिस प्रकार शब्द-लोक का आदि वर्ण है, ठीक उसी प्रकार आदि भगवान पुराण—पुरुषों—में आदि पुरुष है ।

वास्तविक सुख बाह्य पदार्थों में नहीं है। सुख तो आत्मानुभूति में है। किन्तु उस निराकुल सुख का आत्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध होते हुए भी मोहवश हम उसे अन्यत्र खोजने में ही लगे हुए हैं।

शास्त्र ज्ञान और बात है और भेद ज्ञान और बात है। त्याग भेद ज्ञान से भी भिन्न वस्तु है। उसके विना परमार्थिक लाभ होना कठिन है।

आख वही है जिसमें देखने की शक्ति हो, अन्यथा नही के तुल्य है । इसी तरह ज्ञान वही है जो स्व पर विवेक करा देवे अन्यथा उस ज्ञान का कोई मूल्य नही

राग द्वेष को बुद्धिपूर्वक जीतने का प्रयत्न करो, केवल कथा और शास्त्र स्वाध्याय से ही ये दूर नही हो सकते । आवश्यक यह है कि पर वस्तु मे इष्टानिष्ठ कल्पना न होने दो । यही राग-द्वेष दूर करने का सच्चा पुरुषार्थ है ।

धर्म के तीन चरण है अहिंसा, सयम और तप

महावीर संदेश

1 जगत मे सब जीवो की आत्माऐ समान है ।

2 किसी जीव का मारना, सताना और दुख देना तो हिंसा है ही दुख देने का विचार करना भी हिंसा है ।

3 यतार्थ के विरुद्ध वचन बोलना तो भूठ है ही, किन्तु किसी के हृदय को ठेस पहुचाने वाला वचन भी असत्य ही है ।

4 बिना आज्ञा किसी की वस्तु लेना तो चोरी है ही किन्तु राज्य नियमों के विरुद्ध चलना भी चोरी है ।

5 हृदय को सरल और वाणी को निमल रखो ।

6 सग्रह का फल क्लेश, चिन्ता और दुख ।

7 गुणो की पूजा करो, व्यक्ति को नही क्योकि गुणो से ही व्यक्ति पूज्य बनता है ।

8 खोटे साधनो से उपार्जित धन का परिणाम भी खोटा होता है ।

9 दूसरो के हिस्से पर अधिकार मत करो ।

10 ज्ञान समान न आन जगत मे सुख को कारण
यह परमामृत जन्म जरा मृत रोग निवारण

महावीर जयन्ति के शुभ अवसर पर शुभ कामना—

त्याज्य कहे भी शास्त्र में, जो वर करे अकार्य ।
शान्ती नहीं उसको मिले, यद्यपि हो कृतकार्य ।।

for your Sweet Parties
Always in Your Service

With best compliments from :

ICE CREAM

As Fresh asFlowers

Dial : 42224

मांस वृद्धि के हेतु जो, मांस चखे चाव।
उस नर में सम्मव नहीं, करुणा का सद्भाव ॥

भोगे मैंने दु.ख जो, होकर अति हैरान।
परको वे दूंगा नहीं, रखे मनुज यह ध्यान ।।

णाणी सिव परमेट्ठी सव्वण्हू विण्हु चउमुहोबुद्धो ।
अप्पो वि य परमप्पो, कम्मविमुक्को य होदि फुड ॥
—भावपाहुड १५०

अथ—कर्मों से मुक्त होने पर आत्मा परमात्मा हो जाता है । उसे ज्ञानी, बुद्ध शिव परमेष्ठी सर्वज्ञ विष्णु चतुर्मुख कुछ भी कह लें ।

वह मनुष्य धन्य है, जिसके बच्चों का आचरण निष्कलंक है
सात जन्म तक उसे कोई बुराई छू नहीं सकती।

'अहिंसा परमो धर्म'

With Best Compliments of

सोवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं ।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुह वा कदं कम्मं ॥

—नियमसार, 146

अर्थ—जैसे सोने की बेड़ी भी पुरुष को बांधती है और लोहे की बेड़ी भी बांधती है। इसी प्रकार शुभ या अशुभ किया हुआ कर्म जीव को बांधता है (दोनों ही बंध स्वरूप है)।

शास्त्र ज्ञान और बात है और भेद ज्ञान और बात है। त्याग भेद ज्ञान से भी भिन्न वस्तु है। उसके बिना परमार्थिक लाभ होना कठिन है।

सुनो—जब तक राग-रूपी आग देह-रूपी कुटिया को भस्मीभूत नहीं करती अर्थात् जब तक इन्द्रियों की शक्ति अक्षीण है तब तक आत्म-कल्याण करलो अन्यथा पछताने के अलावा कुछ और बचा नहीं रहेगा।

आचार्य कुन्दकुन्द

जीव और अजीव का ज्ञान, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से भले प्रकार हो सकता है।
इनकी भिन्नता व स्वतन्त्रता को समझना मोक्षमार्ग का साधन है।

जो पूरी शिक्षा बिना, भाषण दे चढ़ मंच ।
पट बिन चौपड़ खेल का, मानों रचे प्रपंच ॥

लाखों शत्रुओं से जो हानि नहीं हो सकती उससे अनन्त गुणी हानि एक क्षण भर के अशुद्ध (क्रोधादि) परिणामों से होती है।

जिस अवसर पर जो प्राप्त हो जाय उसी में सन्तोषपूर्वक रहना ।
यह सत्पुरुषों का बतलाया हुआ कल्याण का मार्ग है ॥

With best compliments from :

M/s. GEMINI ENTERPRISES

1307, Kedia Bhawan, Gopalji Ka Rasta,
JAIPUR
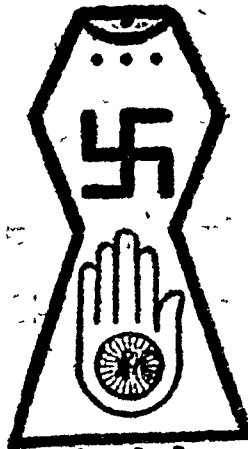
Exporter-Importer of Precious/Semi Precious Stones

जगत की ओर जो दृष्टि है, वह आत्मा की ओर करदो यही श्रेय मार्ग है।
मन, वचन और काय के साथ जो कषाय वृत्ति है, वही अनर्थ की जड़ है॥

मोही साधु से निर्मोही गृहस्थ अच्छा है।

वह मनुष्य धन्य है, जिसके बच्चो का आचरण निष्कलंक है
सात जन्म तक उसे कोई बुराई छू नहीं सकती।

शुद्ध आत्मा तो मात्र ज्ञायक ही है

With best compliments from

Shakun Textiles

B—35 Bajaj Nagar, Jaipur

P No 512085

Manufacturer of Industrial Yarn

द्रव्य, गुण पर्याय का भेद भी व्यवहार नय से है।
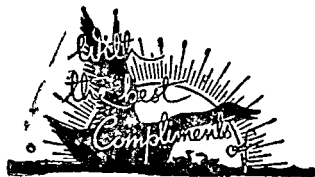
M/s **Shrikishan GovindGopal**

Manufacturer of Industrial Salt

SAMBHAR LAKE

ज्ञान ही प्रत्याख्यान है।
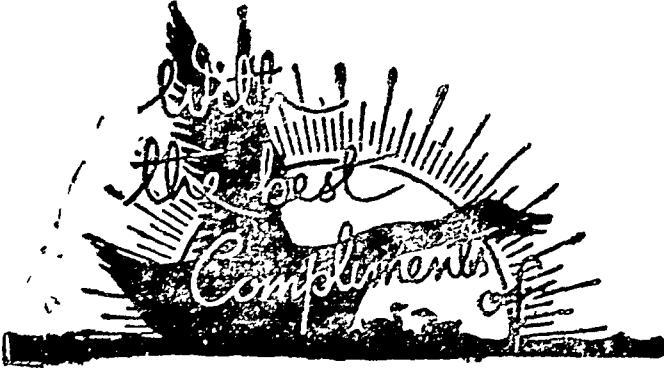
Kasliwal Sanitary Stores

Distributors : International Ceramic Tiles

* **Falcon Gulf Ceramics Limited**
* SKF C. I. Pipe & Fitting (ISI)
* Crown A. C. Pipe & Fitting (ISI)
* Cosmo, Rajko, Camel, Kingston C. P. Bathroom Fitting.
* G. I Pipe & Fitting (ISI)

18-A. M. G. D. Market, JAIPUR-302002

Phone Office 73394
Resi. 69728
78587

जो गृहस्थ उसी तरह आचरण करता है जिस तरह कि उसे करना चाहिए, वह मनुष्यों मे देवता समझा जाता है।

कड़वा मजाक दोस्ती के लिए जहर है।

मुश्किल से मानव तन पाया, इसका लाभ उठालो।
महावीर के पथ पर चल कर जीवन सफल बनालो ॥

मास वृद्धि के हेतु जो, मास चले खाव।
उस नर में सम्भव नहीं करुणा का सद्भाव॥

शुभ कामनाओं सहित :

पारस मेडिकल डिपो

136, जौहरी बाजार, जयपुर

फोन निवास 78851 □ दुकान 560484

प्रोपाईटर

शान्ति कुमार जैन

नोट कृपया महावीर जयन्ती स्मारिका, 1990 मे श्री शाति लाल जैन की जगह शाति कुमार जैन ही पढे ।

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित :

खादी ग्रामोद्योग सघन विकास समिति

बस्सी [जयपुर]

खादी ग्रामोद्योग का लक्ष्य क्षेत्र ये गरीबी निवारण और
रोजगार देने का है। इसमें सफलता मिलना
तब तक सम्भव नहीं जब तक गांव-गांव
से वैध ओर अवैद्य शराव जड़ मूल
समाप्त न हो जाये।

फोन : 63495

खादी ग्रामोद्योग सघन विकास समिति
बस्सी [जयपुर]

(छीतरमल गोयल)
अध्यक्ष

(लक्ष्मीचन्द भण्डारी)
मंत्री

सोवण्णिय पि णियल बंधदि कालायस पि जह पुरिस ।
बंधदि एव जीव सुहमसुह वा कद कम्म ॥

—नियमसार, 146

अर्थ—जैसे सोने की बेडी भी पुरुष को बाधती है और लोहे की बेडी भी बाधती है। उसी प्रकार शुभ या अशुभ किया हुआ कर्म जीव को बाधता है (दोनो ही बंध स्वरूप हैं)।

जो गृहस्थ उसी तरह आचरण करता है जिस तरह कि उसे करना चाहिए, वह मनुष्यो मे देवता समझा जाता है।

जगत की ओर जो दृष्टि है, वह आत्मा की ओर करदो यही श्रेय मार्ग है ।
मन, वचन और काय के साथ जो कषाय वृत्ति है, वही अनर्थ की जड़ है ।।

Kalindee Rail Nirman (Engineers) Ltd.

Head Office :

F-56, Kalidas Marg, Bani Park, JAIPUR-302016

Works :

Signalling Division
C-148-49, Road No. 9,
V. K. I. AREA.
JAIPUR-302013

Electronics Division
E-177-78, Jaitpura
Industrial Area, Jaitpura.
Tehsil CHOMU
Distt. JAIPUR

Pioneer Contractors for various Railway Signalling works such as Route Relay Interlocking, Panel Interlocking, 'MAUQ' Signalling, Manufacturer and erectors for Microwave/UHF Towers, Manufacturers of 'DOMINO' Control Panel to latest design and specifications; Manufacturer of Electronic PABX System and Micro Computers.

KALINDEE

Cable : KARNIRMAN

Phone : Office 74992, 79733
Works 832646, 41 & 42

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती में सव्वभूएसु, वेरं मज्झं ण केणवि ।।

—नियमसार, 104

अर्थ— मैं सब जीवों से क्षमा चाहता हूं। सब जीव मुझे क्षमा करे। सब प्राणियों के प्रति मेरी मैत्री है। किसी जीव के साथ मेरा वैर नहीं है।
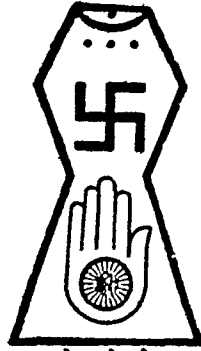
सुखी वही है जिसकी वासना छूट गई है ।

"संसार में जीव अकेला ही आता है और जाता भी अकेला ही है"

—भगवान महावीर
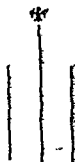
"पापी से नहीं, पाप से घृणा करो"
—भगवान महावीर

"क्रोध से साधु की भी अधोगति निश्चित है"

With best compliments from :

Roshan Lal Harak Chand

Katra Shan Shai, Chandni Chowk
DELHI

Harak Chand Prem Chand

Maha Laxmi Market, Chandni Chowk
DELHI

Dealer of :

* Nanag Ram Shobraj Mills Pvt. Ltd.
* Ashok Fabrics, Surat & All Kind of Lining Materials.

सुखी वही है जिसकी वासना छूट गई है।